JOTI JOURNAL

Silver Jubilee Edition (BI-MONTHLY)

AUGUST 2019

Silver Jubilee Year 1994-2019

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY
HIGH COURT OF MADHYA PRADESH, JABALPUR - 482 007

TRAINING COMMITTEE
MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY

1.	**Hon'ble Shri Justice R.S. Jha**	Acting Chief Justice & Patron
2.	**Hon'ble Shri Justice Rohit Arya**	Member
3.	**Hon'ble Shri Justice Atul Sreedharan**	Member
4.	**Hon'ble Shri Justice Rajeev Kumar Dubey**	Member
5.	**Hon'ble Shri Justice Subodh Abhyankar**	Member

●

FOUNDER OF THE INSTITUTE AND JOTI JOURNAL
Hon'ble Shri Justice U.L. Bhat
Former Chief Justice,
High Court of M.P., Jabalpur

●

ASSOCIATE EDITOR
Sudeep Kumar Shrivastava
Additional Director

EDITOR
Pradeep Kumar Vyas
Director

JOTI JOURNAL JUNE - 2019

SUBJECT- INDEX

संपादकीय 111

PART-I
(ARTICLES & MISC.)

1. Photographs 189
2. Hon'ble Shri Justice S.K. Seth, Chief Justice of Madhya Pradesh demits office 192
3. Appointment of Judges in High Court of Madhya Pradesh 193
4. बेल नॉट जेल 195
5. मोटर यान अधिनियम के अधीन मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण 253

PART-II
(NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS)

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.

ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.)

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.)

Sections 12 and 13 – (i) Once defendant's right to defence has been striked out due to non-compliance of Section 13 (1), decree under Section 12 (1)(a) ought to be passed by the Court.
(ii) Accommodation in question given on rent to father without describing nature of business in which father was conducting business of furniture and permitted his son to open mobile shop in a part of the shop – Held, in absence of description of nature of business, it cannot be said that father has sub-let the part of accommodation.
(iii) *Bonafide* denial of title of landlord by the tenant due to pendency of title suit in Court does not come under the category of nuisance.

धाराएं 12 एवं 13 - (i) जब एक बार धारा 13 (1) के अननुपालन के कारण प्रतिवादी की प्रतिरक्षा काट दी गई है, तब न्यायालय को धारा 12 (1)(क) के अंतर्गत आज्ञप्ति पारित करना चाहिए।
(ii) व्यवसाय की प्रकृति का उल्लेख किये बिना प्रश्नगत स्थान पिता को भाडे पर दिया गया था जिस पर पिता द्वारा फर्नीचर का व्यवसाय चलाया जा रहा था और उसने अपने पुत्र को दुकान के एक भाग में मोबाइल की दुकान खोलने की अनुमति दी - अभिनिर्धारित, व्यवसाय की प्रकृति के उल्लेख के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि पिता ने स्थान के भाग को उपभाडे पर दिया है।

(iii) स्वत्व से संबंधित वाद के न्यायालय में लंबित रहने के कारण अभिधारी द्वारा भू-स्वामी के स्वत्व को सद्भाविक रूप से इंकार करना न्यूसेंस की श्रेणी में नहीं आता है।

151* **269**

CIVIL PROCEDURE CODE, 1908

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

Order 1 Rule 10 – (i) Plaintiffs cannot be compelled to add a stranger to the suit where he is not a necessary party.

(ii) Test to determine a necessary party; explained.

(iii) A stranger making his claim independently and adversely to the title of landlord is neither a necessary nor a proper party in eviction suit.

आदेश 1 नियम 10 -(i) वादीगण को एक अजनबी को उसके वाद में संयोजित करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है जहां वह आवश्यक पक्षकार नहीं है।

(ii) आवश्यक पक्षकार निर्धारित करने के लिए परीक्षण समझाया गया।

(iii) एक अजनबी, जो भवन स्वामी के स्वत्व के विरूद्ध स्वतंत्र रूप से अपना दावा करता है, निष्कासन के वाद में न तो आवश्यक पक्षकार है और न ही उचित पक्षकार।

152 **270**

Order 6 Rule 17 – Faulty description of plaintiff in plaint due to incorrect drafting by the counsel cannot be refused to be corrected when such mistake is apparent from reading the plaint.

आदेश 6 नियम 17 - अधिवक्ता द्वारा किए गए गलत प्रारूपण के कारण वादपत्र में वादी के त्रुटिपूर्ण वर्णन को सुधारने से इंकार नहीं किया जा सकता, जब ऐसी त्रुटि वादपत्र को पढ़ने से दर्शित हो।

153* **271**

Order 6 Rule 17 – Belated amendment, which is not necessary for determining the issue, cannot be allowed when trial is over and the case is fixed for final arguments.

आदेश 6 नियम 17 - विलंबित संशोधन, जो कि विवाद्यक निर्धारण हेतु आवश्यक नहीं है, तब अनुमत नहीं किया जा सकता है जब विचारण समाप्त हो चुका है एवं प्रकरण अंतिम तर्क हेतु नियत है।

154* **272**

Order 7 Rule 11 – If suit is clearly barred by limitation but cleverly drafted to overcome limitation, suit can be rejected under Order 7 Rule 11(d).

आदेश 7 नियम 11 - यदि वाद स्पष्टतः परिसीमा द्वारा बाधित है किन्तु परिसीमा के भीतर लाये जाने के उद्देश्य से चातुर्यपूर्ण तरीके से प्रारूपित किया गया हो, तो वाद आदेश 7 नियम 11(घ) के अंतर्गत नामंजूर किया जा सकता है। **155*** **272**

Order 21 Rule 15 and Order 1 Rule 9 – Execution of decree for partition without impleading necessary parties i.e. judgment debtor or even Collector, amounts to non-joinder of parties.

आदेश 21 नियम 15 एवं आदेश 1 नियम 9 - आवश्यक पक्षकार अर्थात निर्णीत ऋणी या यहां तक कि कलेक्टर को संयोजित किये बिना विभाजन आज्ञप्ति का निष्पादन, पक्षकारों के असंयोजन की कोटि में आता है। **156*** **272**

Order 21 Rule 90 – Dismissal of an application filed under Order 21 Rule 90 CPC operates as a bar for subsequent filing of fresh suit.

आदेश 21 नियम 90 - आदेश 21 नियम 90 के अधीन संस्थित आवेदन का खारिज किया जाना, पश्चात् में नया वाद संस्थित करने पर वर्जन के रूप में लागू होता है। **157*** **273**

Order 39 Rule 1 and 2 – At the stage when electricity sub-station had already been constructed and was being energized for supply of electricity, granting an injunction against construction of electricity sub-station would seriously affect public interest and welfare scheme for providing electricity to people in locality – No irreparable loss or injury shall be caused by denial of injunction as compensation shall be granted under Section 67 of Electricity Act, 2003, if found entitled.

आदेश 39 नियम 1 एवं 2 - उस प्रक्रम पर जब बिजली उपकेन्द्र का निर्माण लगभग पूर्ण हो चुका था और बिजली आपूर्ति हेतु परिदत्त किया जा रहा था, बिजली उपकेन्द्र के निर्माण के विरूद्ध निषेधाज्ञा जारी करना लोकहित तथा आसपास के लोगों को बिजली उपलब्ध कराने की जन कल्याणकारी योजना को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा - निषेधाज्ञा जारी करने से इंकार करने पर कोई अपूर्णीय क्षति या हानि कारित नहीं होगी क्योंकि यदि हकदार पाया जाता है, तो धारा 67 विद्युत अधिनियम के अंतर्गत प्रतिकर प्रदान किया जायेगा। **158*** **274**

Order 39 Rule 2A – When power of attorney holder executed sale deed in good faith without having knowledge of order of the Court, principal is not criminally liable for acts of his agent.

आदेश 39 नियम 2क -जब मुख्तारनामा धारक द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन न्यायालय के आदेश के ज्ञान के बिना सदभाव में किया गया, तब मालिक उसके अभिकर्ता के कृत्यों के लिये आपराधिक रूप से दायी नहीं है। **159*** **274**

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973

Section 125 – (i) Delay in reporting cruelty is due to the fact that generally the wife does not lodge a report so that the situation does not get aggravated, but when things go out of control and became intolerable, the wife takes the drastic step of lodging the report against her husband.

(ii) Maintenance – Fundamental principles behind Section 125 CrPC – Explained.

(iii) Wife suffering from disease of fits but husband not providing her any maintenance, amounts to desertion and cruelty by husband which is a ground for wife to live separately.

धारा 125 - (i) क्रूरता की रिपोर्ट में विलंब इस तथ्य के कारण होता है कि सामान्यतया पत्नी क्रूरता की रिपोर्ट नहीं करती है ताकि स्थितियां और गंभीर न हों, परंतु जब परिस्थितियां नियंत्रण से बाहर और असहनीय हो जाती हैं, तब पत्नी अपने पति के विरूद्ध रिपोर्ट लेखबद्ध कराने का कठोर कदम उठाती है।

(ii) भरण-पोषण - धारा 125 दं.प्र.सं के पीछे के मौलिक सिद्धांत - समझाए गए।

(iii) पत्नी का मिर्गी के रोग से पीड़ित होना परंतु पति द्वारा उसे कोई भी भरण-पोषण न देना पति द्वारा परित्याग एवं क्रूरता की श्रेणी में आता है जो पत्नी का उससे पृथक रहने का आधार है।

160 275

Section 125 – (i) Once the fact of execution of document is admitted by both the parties, there is no legal necessity for the applicant to establish such document by leading evidence.

(ii) Where applicant and respondent entered into marriage and started living as husband and wife for considerable period of time, respondent had complete knowledge of previous marriage of the applicant, then the respondent husband cannot be permitted to challenge the validity of marriage – A party to a marriage cannot take advantage of one's own wrong – It is his legal obligation to maintain his wife.

धारा 125 - (i) जब एक बार दस्तावेज के निष्पादन के तथ्य को दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, वहां आवेदक को ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य द्वारा स्थापित करने की कोई विधिक आवश्यकता नहीं है।

(ii) जहां आवेदिका और प्रत्यर्थी ने विवाह किया और काफी समय तक पति-पत्नी के रूप में रहने लगे थे, प्रत्यर्थी को आवेदिका के पूर्व विवाह का पूर्ण ज्ञान था, वहां प्रत्यर्थी-पति को विवाह की वैधता को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती - विवाह का एक पक्ष स्वयं के दोष का लाभ नहीं उठा सकता है - अपनी पत्नी का भरण-पोषण करना उसका विधिक दायित्व है।

161 277

Section 177 – See Section 498A of the Indian Penal Code, 1860.

धारा 177 - देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 498क। **193 320**

Sections 195 (1)(b) and 340 – (i) To invoke Section 340 read with 195 (1)(b) CrPC, questionable statement should have been made deliberately and consciously and should have been found to be false comparing it with unimpeachable evidence, documentary or otherwise.

(ii) Statements made in anticipatory bail application are yet to be tested as evidence is not yet led and preliminary investigation report submitted by investigating officer cannot be unimpeachable evidence to prove the statements to be false.

धाराएं 195 (1)(ख) एवं 340 - (i) दं.प्र.सं. की धारा 195 (1)(ख) सहपठित धारा 340 को लागू करने के लिए प्रश्नगत प्रकथन जानबूझकर और सचेत रूप से किया गया हो तथा इसे अचूक साक्ष्य, दस्तावेजी अथवा अन्यथा से, तुलना करने पर गलत पाया जाना चाहिए।

(ii) अग्रिम जमानत आवेदन में किए गए कथनों का परीक्षण किया जाना शेष रहता है क्योंकि तब तक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं हुई होती है तथा कथनों को असत्य साबित करने के लिए विवेचना अधिकारी द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक जांच रिपोर्ट स्पष्ट साक्ष्य नहीं मानी जा सकती है।

162* **279**

Sections 235 (2) and 354 – (i) Accused must be provided real and effective opportunity to adduce material relating to mitigating circumstances during pre-sentence hearing which may be provided on the same day after passing of judgment of conviction, if accused is ready to submit his arguments or Court may fix a separate date for hearing on sentence.

(ii) Where minimum sentence is proposed to be imposed, question of pre-sentence hearing does not arise.

(iii) Appellate Court can remedy the effect of non-compliance of Section 235(2) CrPC either by remanding the matter or by itself giving an effective opportunity to the accused.

(iv) Mental illness after conviction is a mitigating circumstance and 'Test of severity' for assessing mental illness propounded.

धाराएं 235 (2) एवं 354 - (i) दण्ड पूर्व सुनवाई के समय अभियुक्त को गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियों से संबंधित सामग्री प्रस्तुत करने के लिए वास्तविक और प्रभावी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए जो दोषसिद्धि के पश्चात उसी दिन भी प्रदान की जा सकती है, यदि अभियुक्त अपने तर्क प्रस्तुत करने के लिए तैयार है अथवा न्यायालय दण्ड पर सुनवाई के लिए एक पृथक तिथि भी नियत कर सकती है।

(ii) जहां न्यूनतम दण्ड प्रस्तावित किया जाता है, वहां दण्ड-पूर्व सुनवाई का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

(iii) अपीलीय न्यायालय धारा 235 (2) दं.प्र.सं के उल्लंघन के प्रभाव को मामले को प्रतिप्रेषित कर अथवा अभियुक्त को स्वयं एक प्रभावी अवसर देकर उल्लंघन के प्रभाव का निवारण कर सकती है।

(iv) दोषसिद्धि के पश्चात मानसिक बीमारी, गंभीरता कम करने वाली परिस्थिति है तथा मानसिक बीमारी का आंकलन करने के लिए 'गंभीरता का परीक्षण' के सिद्धांत प्रतिपादित किए गए।

163 **279**

Sections 235 (2) and 354 – See Section 302 of the Indian Penal Code, 1860.

धाराएं 235 (2) एवं 354 - देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 302। **184** **304**

Section 311 – (i) Factors of duration of a case or delay in trial are irrelevant when a prayer is made for examination of a material witness.

(ii) The determinative factor of whether a witness is a material witness is that whether summoning of said witness is in fact essential to the just decision of case.

धारा 311 - (i) जब एक महत्वपूर्ण साक्षी की परीक्षा के लिए प्रार्थना की जाती है तब किसी मामले की लंबित रहने की अवधि अथवा विचारण में विलंब के कारक अप्रासंगिक होते हैं।

(ii) एक साक्षी तात्विक साक्षी है, यह निर्धारित करने का कारक यह है कि क्या उक्त साक्षी को बुलाना वास्तव में मामले के सही निर्णय के लिए आवश्यक है। **164 284**

Section 311 – (i) Section 311 has two parts, first is discretionary while second is mandatory and imposes obligation on the Court and this power should be invoked by the Court only to meet the ends of Justice.

(ii) Courts should not encourage filing of successive applications for recall of a witness where reasons for non-examination in earlier stages of the case are not satisfactory.

धारा 311 - (i) धारा 311 के दो भाग हैं, पहला विवेकाधीन है जबकि दूसरा अनिवार्य है और न्यायालय पर दायित्व अधिरोपित करता है तथा यह शक्ति न्यायालय द्वारा न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ही उपयोग की जानी चाहिए।

(ii) न्यायालयों को साक्षी को पुनः आहूत करने के उत्तरोत्तर आवेदन प्रोत्साहित नहीं करने चाहिए जब प्रकरण के पूर्ववर्ती प्रक्रमों पर परीक्षण न कराने के कारण संतोषजनक नहीं हैं।

165 286

Section 315 – In ordinary course, since Section 315 of the Code does not prescribe any time limit for filing an application for examination of accused as defence witness, Court shall not reject permission to examine the accused as a defence witness unless convincing reasons are not available on record.

धारा 315 - सामान्य अनुक्रम में, चूंकि संहिता की धारा 315, अभियुक्त के बचाव साक्षी के रूप में परीक्षण हेतु आवेदन किये जाने हेतु कोई परिसीमा विहित नहीं करती, न्यायालय अभियुक्त को बचाव साक्षी के रूप में परीक्षण की अनुज्ञा को तब तक नामंजूर नहीं करेगा जब तक कि अभिलेख पर विश्वासप्रद कारण उपलब्ध न हों। **166* 288**

Section 319 – Mere disclosure of names by some witnesses during trial is not strong and cogent evidence to add such persons as additional accused, especially when complaint is filed against family members and where names or their identities are not disclosed at first opportunity, neither in FIR nor in the statement recorded under Section 161 of the Code.

धारा 319 -विचारण के दौरान कुछ साक्षियों द्वारा मात्र नामों का प्रकटन ऐसे व्यक्तियों को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में जोड़ने के लिये यह एक दृढ़ एवं अकाट्य साक्ष्य नहीं है, विशिष्टतः तब, जब परिवाद कुटुम्ब के सदस्यों के विरूद्ध संस्थित किया गया हो और जिसमें उनके नामों या पहचान को प्रथम अवसर पर, न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में और न ही संहिता की धारा 161 के अंतर्गत अभिलिखित कथनों में, उजागर किया गया हो। 167 288

Section 319 – (i) A person can be added as accused invoking Section 319 of the Code not only for the same offence for which accused is tried but for any offence and any such offence shall be such that in respect of which all accused could be tried together.
(ii) To summon an accused u/S 319 of the Code, there has to be *prima facie* evidence against such accused and complaint or testimony of the witnesses must indicate the role played by proposed accused in commission of an offence.

धारा 319 - (i) संहिता की धारा 319 का अवलंब लेते हुये किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में न केवल उस अपराध के लिये जोड़ा जा सकता है जिसके लिये अभियुक्त विचारित किया जा रहा है बल्कि किसी भी अपराध के लिये जोड़ा जा सकता है तथा कोई भी अन्य अपराध ऐसा अपराध होना चाहिए जिसके लिये सभी अभियुक्तगण विचारित किये जा सकते थे।
(ii) संहिता की धारा 319 के अंतर्गत किसी अभियुक्त को समन करने के लिए, ऐसे अभियुक्त के विरूद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य होनी चाहिए तथा परिवाद अथवा साक्षियों की परिसाक्ष्य से प्रस्तावित अभियुक्त द्वारा अपराध कारित करने में अदा की गई भूमिका इंगित होनी चाहिए।

168* **289**

Section 354 – See Section 376 (2) of the Indian Penal Code, 1860.
धारा 354 - देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 376 (2)। **191** **317**

Section 357A – Additional compensation of ` 1,50,000/- ordered to be paid by each accused person to acid attack victim aged 19 years in addition to the compensation payable by State under Scheme for acid attack victims.
धारा 357क - 19 वर्षीय अम्ल हमले की पीड़िता को राज्य द्वारा अम्ल हमले के पीड़ितांे को स्कीम के अधीन देय प्रतिकर सहित प्रत्येक अभियुक्तगण द्वारा अतिरिक्त प्रतिकर के रूप में रूपये 1,50,000/- अदा करने का आदेश पारित। **169*** **290**

Section 389 – Accused persons found in possession of "manufactured drugs" without any authorization have committed an offence both under the Drugs and Cosmetics Act, 1940 and NDPS Act.
धारा 389 -बिना किसी प्राधिकार के 'विनिर्मित औषधि' अभियुक्तगण के आधिपत्य में पाये जाने से उन्होंने औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 तथा एनडीपीएस अधिनियम दोनों के तहत अपराध कारित किया है। **170** **291**

Section 427 – Different sentences of imprisonment passed against accused in different cases registered under Section138 Negotiable Instruments Act cannot be directed to run concurrently under Section 427 CrPC where there are different transactions, different criminal cases registered and cases decided by different judgments – However, when the cheques dishonoured arise out of the same loan transaction, it may justify the direction of concurrent running of sentences.
धारा 427 -अभियुक्त के विरूद्ध धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत पंजीबद्ध विभिन्न मामलों में पारित विभिन्न कारावास के दण्डादेशों को समवर्ती चलाने के निर्देश धारा 427

दं.प्र.सं. के तहत नहीं दिए जा सकते हैं, जहां लेनदेन पृथक-पृथक हैं, पृथक-पृथक आपराधिक मामले पंजीबद्ध किए गए हैं और पृथक-पृथक निर्णयों द्वारा मामले निराकृत किए गए हैं - हालांकि, जब अनादरित चेक एक ही ऋण संव्यवहार से उत्पन्न हुए हों, यह दण्डादेशों के समवर्ती चलने के आदेश को सही ठहरा सकता है।

171 **293**

Section 439 – Conditions for bail should be proportionate to the nature and gravity of the offence and some more stringent conditions should be imposed in addition to general conditions when financial fraud of huge money is involved in the case.

धारा 439 - जब मामले में अत्यधिक धन का आर्थिक कपट अंतर्वलित हो तब जमानत की शर्तें अपराध की गंभीरता और प्रकृति के अनुपात में होना चाहिए तथा सामान्य शर्तों के अतिरिक्त कुछ अधिक कठोर शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिए। **172** **295**

CRIMINAL PRACTICE:

आपराधिक प्रथा:

– See Section 427 of the Criminal Procedure Code, 1973.

- देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 427। **171** **293**

CRIMINAL TRIAL:

आपराधिक विचारण:

– (i) Subsequent conviction and sentence of an eye witness in another case does not affect his credibility in present case.

(ii) In light of evidence of eye witnesses and other material adduced by prosecution, non-recovery or non-production of weapon need not materially affect the case of prosecution.

- (i) किसी अन्य मामले में एक चक्षुदर्शी साक्षी की पश्चातवर्ती दोषसिद्धि वर्तमान मामले में उसकी विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करती है।

(ii) चक्षुदर्शी साक्षियों की साक्ष्य एवं अभियोजन द्वारा प्रस्तुत अन्य सामग्री के प्रकाश में, हथियार की जप्ती या प्रस्तुति न होना, अभियोजन मामले को तात्विक रूप से प्रभावित नहीं करती।

173* **296**

– Accused and deceased living in same building – Access was highly probable – Presence of accused at the scene of the offence (house of deceased) proved by cogent evidence – Accused and his father were missing since the time of offence – Injuries on body of deceased indicate signs of struggle – Accused was unable to explain injuries on his face – Post-mortem report suggested that death was not suicidal, but deceased was hanged after she lost consciousness – Absence of enmity between accused and witnesses negate chance of false implication – Voluntary extra-judicial confession was also proved – Held, the chain of circumstances are sufficient to connect the accused with the death of the deceased.

- अभियुक्त और मृतक एक ही इमारत में रहते थे - पहुँच अत्यधिक संभावित थी - घटनास्थल (मृतक का घर) पर अभियुक्त की उपस्थिति ठोस साक्ष्य से साबित हुई - अभियुक्त और उसके पिता अपराध के समय से गायब थे - मृतक के शरीर पर लगी चोटें संघर्ष के संकेत देती हैं - अभियुक्त अपने चेहरे पर आई चोटों को स्पष्ट करने में असमर्थ था - पोस्टमार्टम रिपोर्ट से प्रकट हुआ कि मृत्यु आत्महत्या नहीं थी, अपितु मृतका को अचेत होने के बाद फांसी पर चढ़ाया गया था - अभियुक्त और साक्षियों के मध्य वैमनस्यता का अभाव, मिथ्या संलिप्तिकरण की संभावना को नकारता है - स्वैच्छिक गैर-न्यायिक संस्वीकृति भी साबित हुई - अभिनिर्धारित, परिस्थितियों की श्रृंखला अभियुक्त को मृतक की मृत्यु से संयोजित करने के लिए पर्याप्त है।

174* **296**

DOWRY PROHIBITION ACT, 1961

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961

Sections 3 and 4 – See Section 498A of the Indian Penal Code, 1860.

धाराएं 3 एवं 4 - देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 498क। **193** **320**

DRUGS AND COSMETICS ACT, 1940

औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940

– See Section 389 of the Criminal Procedure Code, 1973.

- देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 389। **170** **291**

ELECTRICITY ACT, 2003

विद्युत अधिनियम, 2003

Section 67 – See Order 39 Rules 1 and 2 of the Civil Procedure Code, 1908.

धारा 67 - देखे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 39 नियम 1 एवं 2।

158* **274**

EVIDENCE ACT, 1872

साक्ष्य अधिनियम, 1872

Section 3 – (i) Appreciation of evidence of injured witnesses.
(ii) Appreciation of evidence of defence witnesses.

धारा 3 - (i) आहत साक्षियों की साक्ष्य का मूल्यांकन।

(ii) बचाव साक्षियों की साक्ष्य का मूल्यांकन। **175*** **297**

Section 3 – (i) Appreciation of eye witnesses.
(ii) When delay in lodging FIR is fatal?

धारा 3 -(i) चक्षुदर्शी साक्षियों की साक्ष्य का मूल्यांकन।

(ii) प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब, कब घातक है? **176** **298**

Section 3 – See Sections 279 and 304A of the Indian Penal Code, 1860.

धारा 3 - देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धाराएं 279 एवं 304क। **182*** **303**

Sections 3 and 65B – See Sections 364A and 302 of the Indian Penal Code, 1860.

धाराएं 3 एवं 65बी - देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धाराएं 364क एवं 302।

189 **311**

Section 11 – Plea of *alibi* – Deceased died due to sustaining 100% burn injuries at her matrimonial home – Deceased implicated name of accused in her dying declaration – Accused not residing with deceased in matrimonial home – Medical certificate issued by Medical Superintendent which shows that the accused was admitted in hospital and underwent surgery few days before incident and unable to move out of house, is sufficient to accept the plea of *alibi* of the accused.

धारा 11 - अन्यत्र उपस्थिति का अभिवाक् - मृतक की मृत्यु उसके ससुराल में 100% जलने की चोटों के कारण हुई - मृतक ने उसके मृत्युकालिक कथनों में अभियुक्त का नाम आलिप्त किया - अभियुक्त मृतक के साथ ससुराल में नहीं रह रहा था - चिकित्सा अधीक्षक द्वारा जारी चिकित्सीय प्रमाण पत्र जो यह दर्शित करता है कि अभियुक्त अस्पताल में भर्ती था और घटना के कुछ दिन पूर्व उसका आॅपरेशन हुआ था तथा वह घर से बाहर निकलने में असमर्थ था, अभियुक्त की अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक् को स्वीकार करने के लिये पर्याप्त है। **177*** **298**

Sections 67 and 68 – See Section 125 of the Criminal Procedure Code, 1973.

धाराएं 67 एवं 68 - देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125। **161** **277**

Sections 68, 69 and 90 – (i) To attract the presumption regarding 30 years old document under Section 90 of Evidence Act it should be proved that (a) the document is more than 30 years old; (b) it is produced from proper custody; (c) it is on its face free from suspicion.

(ii) Proof of attestation of a document as per Section 68 of the Evidence Act is required only when the disputed document is required by law to be attested – Also since sale deed is not required by law to be attested, hence, proof of attestation as per Section 68 and 69 is not mandatory.

धाराएं 68, 69 एवं 90 - (i) 30 वर्ष पुराने दस्तावेज के संबंध में धारा 90 के अधीन उपधारणा करने के लिए यह प्रमाणित किया जाना चाहिए कि -(ए) दस्तावेज 30 वर्ष से अधिक पुराना है; (बी) वह उचित अभिरक्षा से प्रस्तुत हुआ है; (सी) वह प्रथम दृष्टि में संदेह से मुक्त है।

(ii) साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार दस्तावेज के अनुप्रमाणन का प्रमाण तब आवश्यक है, जब विवादित दस्तावेज विधि द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित हो - यह भी कि, चूंकि

विक्रय विलेख के विधि द्वारा अनुप्रमाणित होने की आवश्यकता नहीं है, अतः धारा 68 और 69 के अनुसार अनुप्रमाणन का प्रमाण अनिवार्य नहीं है। **178** **299**

Sections 90 and 114A – See Section 376 of Indian Penal Code, 1860.

धाराएं 90 एवं 114क -देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 376। **190** **315**

INDIAN PENAL CODE, 1860

भारतीय दण्ड संहिता, 1860

Sections 34, 149 and 302 – (i) Non-applicability of Section 149 is no bar in convicting the accused persons with the aid of Section 34.

(ii) Common intention may be developed at the spur of moment on the spot.

धाराएं 34, 149 एवं 302 - (i) धारा 149 की गैर-प्रयोज्यता धारा 34 की सहायता से अभियुक्त व्यक्तियों को दोषी ठहराने में कोई रोक नहीं लगाती है।

(ii) सामान्य आशय मौके पर क्षणिक उकसावे पर विकसित हो सकता है। **179** **301**

Sections 53 and 302 – Socio-economic factors particularly ground realities relating to access to justice and remedies to justice which are not easily available to poor and probability of reform or rehabilitation and social reintegration of accused into society must be considered while awarding death sentence.

धाराएं 53 एवं 302 - मृत्यु दण्डादेश पारित करते समय सामाजिक-आर्थिक कारक विशिष्टतः न्याय तक पहुँच से संबंधित वास्तविक आधार व न्यायिक उपचार, जो कि गरीबों को सहज उपलब्ध नहीं है एवं अभियुक्त के सुधार या पुनर्वास व समाज से पुनः जुड़ने की संभावना को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

180* **302**

Section 84 – Sentencing – Death sentence awarded to driver of State Transport for causing death of nine people due to denial of permission to change his duty – Plea of insanity not established by accused – Held, accused was under mental strain and stress which resulted into the incident – No criminal antecedents of accused – Accused not menance and threat to harmonious and peaceful co-existence of society – Conduct of accused satisfactory in jail – Possibility of reform cannot be denied – Death sentence modified to life imprisonment.

धारा 84 -दण्डादेश - राज्य परिवहन के चालक को उसके कर्तव्य को परिवर्तित करने से इंकार करने के कारण नौ लोगों की मृत्यु कारित करने के लिये मृत्यु दण्ड दिया गया - अभियुक्त द्वारा पागलपन के बचाव को स्थापित नहीं किया गया - अभिनिर्धारित, अभियुक्त मानसिक तनाव और अवसाद में था जिसके कारण घटना घटी - अभियुक्त का कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है - अभियुक्त समाज के सामंजस्यपूर्ण तथा शांतिमय सह-अस्तित्व के लिये खतरा या धमकी नहीं है - जेल में अभियुक्त का आचरण संतोषजनक रहा - सुधार की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता - मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया गया।

181* **302**

Sections 279 and 304A – (i) In case of rash and negligent driving even when the driver of the vehicle fled from scene with his vehicle, circumstance that accused was surrendered by his commandant is sufficient to prove the identity of accused as driver.

(ii) Appreciation of evidence in case of rash and negligent driving.

(iii) Benefit of probation cannot be granted to the accused, where death is caused due to rash and negligent driving.

धाराएं 279 एवं 304क - (i) उतावलेपन एवं उपेक्षापूर्ण तरीके से वाहन चलाने के मामले में यद्यपि वाहन का चालक अपने वाहन के साथ घटना स्थल से भाग गया था परंतु परिस्थिति कि अभियुक्त को उसके कमांडेंट द्वारा अभ्यर्पण करा दिया गया, चालक के रूप में अभियुक्त की पहचान साबित करने के लिये पर्याप्त है।

(ii) उतावलेपन एवं उपेक्षापूर्ण तरीके से वाहन चलाने के मामले में साक्ष्य का मूल्यांकन।

(iii) अभियुक्त को परीवीक्षा का लाभ प्रदान नहीं किया जाना चाहिए जहां कि मृत्यु उतावलेपन एवं उपेक्षापूर्ण तरीके से वाहन चलाने के कारण हुई हो। **182*** **303**

Section 295A – Picturization of folk song through winking does not amount to insult or attempt to insult religion or religious beliefs of class of citizens.

धारा 295क - आँखों के इशारों के जरिये लोकगीत का चित्रण करना नागरिकों के वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान या अपमान करने के प्रयत्न की श्रेणी में नहीं आता है।

183* **304**

Section 302 – (i) Death sentence; imposition of – Assessment of aggravating and mitigating circumstances – Law summed up.

(ii) Possibility of reformation is a guiding factor for assessing mitigating circumstances.

(iii) A bifurcated hearing for conviction and sentence is necessary and convict should be provided necessary time to furnish evidence relevant to sentencing and mitigation.

धारा 302 - (i) मृत्यु दण्ड अधिरोपित किया जाना - गंभीरता बढ़ाने वाली एवं कम करने वाली परिस्थितियों का आंकलन - विधि समेकित की गई।

(ii) गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियों का आंकलन करने में 'सुधार की संभावना' एक मार्गदर्शक कारक है।

(iii) दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के लिए एक द्विभाजित सुनवाई आवश्यक है तथा दोषी को दण्डादेश एवं गंभीरता कम करने वाली प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक समय प्रदान किया जाना चाहिए।

185 **304**

Sections 302 and 304 Part II – (i) Murder – Third clause of Section 300 explained.

(ii) Distinction between murder and culpable homicide explained.

धाराएं 302 एवं 304 भाग दो - (i) हत्या - धारा 300 के तृतीय खण्ड की व्याख्या की गई।

(ii) हत्या एवं आपराधिक मानववध जो हत्या नहीं है, में विभेद समझाया गया।

185 **307**

Sections 302 and 304 Part II – Section 302 IPC is not ruled out because of infliction of single blow when intention to cause death is clearly portrayed by circumstances.

धाराएं 302 एवं 304 भाग 2 - धारा 302 भा.दं.सं. को एकल प्रहार के आधार पर इंकार नहीं किया जा सकता है जब परिस्थितियों से स्पष्ट रूप से मृत्यु कारित करने का आशय दर्शित हो।

186 **309**

Section 306 – In abetment to commit suicide, abettor must have a positive role in facilitating commission of suicide, there must be proximity between act of abettor and suicide committed by deceased and mere single incident is not sufficient to hold an abettor responsible for instigating deceased to commit suicide.

धारा 306 - आत्महत्या के दुष्प्ेररण में, आत्महत्या को सुकर बनाने में दुष्प्ेररक की सकारात्मक भूमिका अवश्य होनी चाहिये, मृतक द्वारा आत्महत्या कारित करने एवं दुष्प्ेररक के कृत्य के मध्य सामीप्य होना चाहिये तथा एक मात्र घटना दुष्प्रेरक को मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने हेतु दायी ठहराने हेतु पर्याप्त नहीं है। **187*** **310**

Section 307 – Causing fracture of nasal bone and injuries upon nose of complainant does not come within the purview of intention of accused to cause death u/S 307.

धारा 307 - परिवादी की नाक की अस्थि भंग एवं नाक पर चोट कारित करना अभियुक्त द्वारा धारा 307 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत मृत्यु कारित करने के आशय की परिधि में नहीं आता है।

188* **311**

Sections 364A and 302 – (i) Evidentiary value of related witness.
(ii) Establishment of identity through call detail record (CDR).
(iii) Effect of delay in FIR.
(iv) Evidentiary value of electronic records.

धाराएं 364क एवं 302 - (i) संबंधी साक्षी की साक्ष्य का मूल्य।

(ii) कॉल डिटेल रिकॉर्ड (सीडीआर) से पहचान स्थापित करना।

(iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट में विलंब का प्रभाव।

(iv) इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड का साक्ष्यिक मूल्य। **189** **311**

Section 376 – (i) In rape cases, distinction between 'False promise of marriage' and 'mere breach of promise to marry' explained.
(ii) Rape or consensual sex – Accused, prosecutrix and their families were known to each other – Accused was set to marry another girl but continued to promise to marry the prosecutrix – Accused called the prosecutrix on the fateful day, received her on railway station and took to his residence – Prosecutrix initially refused but accused

allured her with promise to marry and had physical relation with her – Later both the families negotiated – Accused again expressed his willingness to marry prosecutrix and social function was also scheduled twice – On scheduled date, accused married the other girl in Arya Samaj – That other girl deposed that negotiations of her marriage with accused were going on since one year – Held, accused had no intention to marry prosecutrix since inception and it is a clear case of cheating and deception.

धारा 376 - (i) बलात्कार के मामलों में 'विवाह का मिथ्या वचन' एवं 'मात्र विवाह करने के वचन का भंग' में भेद समझाया गया।

(ii) बलात्कार या सहमतिपूर्ण यौन संबंध - अभियुक्त, अभियोक्त्री और उनके परिवार एक-दूसरे के परिचित थे - अभियुक्त का विवाह किसी अन्य लड़की से तय था फिर भी वह अभियोक्त्री से विवाह करने का वादा करता रहा - अभियुक्त ने प्रश्नगत दिन अभियोक्त्री को बुलाया, उसे रेलवे स्टेशन पर लिया और अपने आवास पर ले गया - अभियोक्त्री ने शुरू में इनकार किया परन्तु अभियुक्त ने विवाह करने का वचन कर उसे फुसलाया और उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए - बाद में दोनों परिवारों ने बातचीत की - अभियुक्त ने पुनः अभियोक्त्री से विवाह करने की इच्छा व्यक्त की और दो बार सामाजिक समारोह भी निर्धारित किए गए - निर्धारित तिथि पर, अभियुक्त ने आर्य समाज में दूसरी लड़की से विवाह कर लिया - उस दूसरी लड़की ने बताया कि अभियुक्त के साथ उसके विवाह की बातचीत एक वर्ष से चल रही थी - अभिनिर्धारित, अभियुक्त का प्रारंभ से ही अभियोक्त्री से विवाह करने का कोई आशय नहीं था और यह छल एवं प्रवंचना का एक स्पष्ट मामला है।

190 315

Section 376 (2) – (i) No previous criminal antecedent, tender age (19 years) during commission of crime, good jail conduct are mitigating circumstances which should be considered while awarding death sentence.

(ii) Death sentence – Accused convicted under Section 376 (2) IPC read with Section 5 read with Section 6 POCSO Act and Section 302 IPC for committing rape and murder of 7½ year old girl – He was awarded death sentence by trial Court which was affirmed by the High Court – Considering the above mitigating circumstances, his death sentence was commuted to life imprisonment.

धारा 376 (2) - (i) किसी पूर्व आपराधिक इतिहास का अभाव, अपराध के समय अल्प आयु (19 वर्ष), कारावास में अच्छा आचरण गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियां हैं जिन्हें मृत्यु दण्ड देते समय विचार में लेना चाहिए।

(ii) मृत्यु दण्ड - अभियुक्त भा.दं.सं. की धारा 376 (2) एवं पाॅक्सो अधिनियम की धारा 5 सहपठित धारा 6 और भा.दं.सं. की धारा 302 के अधीन एक 7) वर्षीय बालिका के बलात्कार और हत्या के आरोप में दोषी पाया गया - विचारण न्यायालय द्वारा उसे मृत्यु दण्ड से दंडित किया गया जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई - गंभीरता कम करने वाली उपरोक्त परिस्थितियों के आलोक में, उसके मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया। **191 317**

Sections 405, 406, 415 and 420 – (i) Criminal breach of trust – Loan transaction – Held, law recognizes difference between 'simple payment' and 'entrustment of money' – Advancement of loan is not entrustment of money – There cannot be a criminal breach of trust without clear case of entrustment.

(ii) Distinction between 'Cheating' and 'mere breach of contract' explained.

धाराएं 405, 406, 415 एवं 420 - (i) आपराधिक न्यासभंग - ऋण संव्यवहार - अभिनिर्धारित, विधि 'सामान्य भुगतान' और 'धन के न्यस्तिकरण' के मध्य विभेद करती है - ऋण दिया जाना धन का न्यस्तिकरण नहीं है - न्यस्तिकरण के स्पष्ट मामले के बिना आपराधिक न्यासभंग नहीं हो सकता है।

(ii) 'छल' एवं 'संविदा का उल्लंघन' में भेद समझाया गया। **192 318**

Section 498A – In cases of matrimonial offence with respect to demand of dowry, when part of crime is committed within the territorial jurisdiction of the Court where wife's paternal home is situated, then such Court has territorial jurisdiction.

धारा 498क - दहेज की मांग के संबंध में वैवाहिक अपराध के मामलों में, यदि अपराध का कोई भाग उस न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर घटित होता है, जहां पत्नी का पैतृक निवास है, तो ऐसे न्यायालय को विचारण की क्षेत्रीय अधिकारिता हाती है। **193 320**

JUVENILE JUSTICE (CARE AND PROTECTION OF CHILDREN) ACT, 2000

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000

Section 7A – Plea of juvenility can be raised at any stage before any Court by an accused, including Supreme Court, even after final disposal of the case.

धारा 7क - अभियुक्त द्वारा किसी भी प्रक्रम पर एवं किसी भी न्यायालय के समक्ष, जिसमें उच्चतम न्यायालय भी शामिल है, यहां तक कि प्रकरण के अंतिम निपटारे के बाद भी, किशोर होने का अभिवाक् लिया जा सकता है। **194* 322**

JUVENILE JUSTICE (CARE AND PROTECTION OF CHILDREN) RULES, 2007

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) नियम, 2007

Rule 12 – See Section 7A of the Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2000.

नियम 12 - देखें किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 7क।

194* 322

LAND ACQUISITION ACT, 1894

भू-अर्जन अधिनियम, 1894

Sections 18 and 23 – (i) Determination of compensation by 'Comparison method'.

(ii) Amended provisions of Section 23 (1A) and 23 (2) would apply to determine the amount of interest and solatium, where land was acquired before amendment.

धाराएं 18 एवं 23 - (i) 'तुलना विधि' द्वारा प्रतिकर का निर्धारण।

(ii) धारा 23 (1ए) और 23 (2) के संशोधित प्रावधान ब्याज और तोषण की राशि निर्धारित करने के लिए लागू होंगे, जहां संशोधन से पूर्व ही भूमि का अधिग्रहण किया जा चुका हो। **195** **322**

LIMITATION ACT, 1963

परिसीमा अधिनियम, 1963

Section 5 – Delay of 1942 days (i.e. 4 years 6 months) in filing appeal for the reason that the lawyer did not take timely steps to file an appeal is not sufficient cause to condone the delay because if a lawyer is not taking interest in attending Court on time, then party must take steps to engage another lawyer to ensure that appeal is filed on time.

धारा 5 - अधिवक्ता द्वारा अपील संस्थित करने के लिये समय पर आवश्यक उपाय न किये जाने के कारण अपील संस्थित करने में 1942 दिवस (अर्थात 4 वर्ष एवं 6 माह) का विलंब, विलंब क्षमा हेतु पर्याप्त कारण नहीं है क्योंकि यदि कोई अधिवक्ता समय पर न्यायालय में उपस्थित होने में रूचि नहीं ले रहा है तो पक्षकार को किसी अन्य अधिवक्ता को नियुक्त करने का उपाय करना चाहिए जिससे अपील समय पर संस्थित किया जाना सुनिश्चित हो सके।

196 **324**

Sections 5 and 14 – (i) Courts should adopt liberal view and justice oriented approach while deciding sufficient cause for condonation of delay.
(ii) Factors constituting sufficient cause explained.
(iii) An application under Section 5 of the Limitation Act cannot be rejected on the ground that applicant was not diligent while making application for certified copy of the order impugned and was not receiving the same when asked to receive.

धाराएं 5 एवं 14 - (i) विलंब क्षमा किये जाने हेतु न्यायालयों को पर्याप्त कारण तय करते समय उदार मत एवं न्याय उन्मुख दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

(ii) पर्याप्त कारण बनाने वाले घटक समझाये गये।

(iii) परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन प्रस्तुत आवेदन को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि आवेदक आदेश की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन करते समय तत्पर नहीं था और प्रति प्राप्त करने के लिए कहने पर भी उसे प्राप्त नहीं कर रहा था। **197** **325**

Articles 64 and 65 – (i) Pleading of 'acquisition of title through predecessor' as well as 'acquisition of title by adverse possession' being inconsistent are impermissible.
(ii) Plaintiff cannot claim relief on the basis of adverse possession – It is merely a defence to be used by defendant as shield.

अनुच्छेद 64 एवं 65 - (i) 'पूर्वजों के माध्यम से स्वामित्व के अर्जन' के साथ 'प्रतिकूल आधिपत्य द्वारा स्वामित्व के अर्जन' का अभिवाक् असंगत होने से अनुज्ञेय नहीं है।

(ii) वादी विरोधी आधिपत्य के आधार पर अनुतोष की मांग नहीं कर सकता - यह प्रतिवादी द्वारा ढाल के रूप में लिया जाने वाला मात्र एक बचाव है। **198*** **326**

NDPS ACT, 1985

स्वापक औषधि एवं मन: प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985

Sections 8, 22 and 68 – See Section 389 of the Criminal Procedure Code, 1973.

/kkjk,a 8] 22 ,oa 68 & देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 389। **170** **291**

Sections 8, 15, 42, 50 and 57 – (i) Section 50 of the Act does not apply when recovery of contraband does not involve personal search.

(ii) Testimony of police officials; evidentiary value of – Principles reiterated

(iii) When contraband was recovered from *verandah* annexed with houses – Revenue records show that house belongs to accused – Secretary of Gram Panchayat also proved that *verandah* is annexed with house and is in possession of accused – Cross-examination of witness remain intact – Held, contraband was recovered from exclusive and conscious possession of accused.

धाराएं 8, 15, 42, 50 एवं 57 - (i) अधिनियम की धारा 50 तब लागू नहीं होती है जब निषिद्ध वस्तु की जप्ती में व्यक्तिगत तलाशी शामिल नहीं होती है।

(ii) पुलिस अधिकारियों की साक्ष्य का साक्ष्यिक मूल्य - सिद्धांत दोहराए गए।

(iii) जब घर के साथ लगे बरामदे से निषिद्ध वस्तु जप्त की गई थी - राजस्व अभिलेख दर्शित करते हैं कि घर अभियुक्त का है - ग्राम पंचायत के सचिव ने यह भी साबित किया कि बरामदा घर से लगा हुआ है जो अभियुक्त के आधिपत्य में है - साक्षी का प्रतिपरीक्षण अक्षुण्ण रहा - अभिनिर्धारित, निषिद्ध वस्तु अभियुक्त के अनन्य और सजग आधिपत्य से प्राप्त की गई थी। **199** **327**

NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1882

Section 138 – See Section 427 of the Criminal Procedure Code, 1973.

धारा 138 - देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 427। **171** **293**

PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012

Sections 5 and 6 – See Section 376 (2) of the Indian Penal Code, 1860.

धाराएं 5 एवं 6 -देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 376 (2)। **191** **317**

TRANSFER OF PROPERTY ACT, 1882

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882

Section 54 – See Sections 68, 69 and 90 of the Evidence Act, 1872.

धारा 54 - देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 68, 69 तथा 90। **178** **299**

Section 122 – Mentioning of value of property for purpose of stamp duty and registration charges on first page of gift deed does not invalidate the same by saying that consideration has been received by donor for executing gift deed.

धारा 122 - दान विलेख के प्रथम पृष्ठ पर स्टाम्प शुल्क तथा पंजीयन प्रभारों के उद्देश्य से संपत्ति की कीमत का उल्लेख किया जाना दान विलेख को यह कहते हुए अमान्य नहीं करता है कि दान विलेख निष्पादित करने के लिये दाता द्वारा प्रतिफल प्राप्त किया जा चुका है। **200*** **330**

PART – IIA
(GUIDELINES)

1. Guidelines to be followed by Motor Accidents Claims Tribunals **331**

संपादकीय

प्रदीप कुमार व्यास
संचालक

सम्माननीय पाठकगण,

यह मेरे लिए अत्यंत सौभाग्य का विषय है कि मुझे आपके साथ विचारों के आदान-प्रदान का अवसर प्राप्त हो रहा है। इस संस्था के रजत जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में इस पत्रिका का मुख्य पृष्ठ नए रूप के साथ जून, 2019 के अंक में भेजा गया था जिसमें कुछ सुधार इस अंक में किए गए है। आशा है कि पत्रिका का यह नया रूप आपको पसंद आयेगा।

इन दो माहों में 6 एवं 7 जुलाई, 2019 को एक कार्यशाला Family Laws पर रखी गई है जिसमें प्रदेश भर के सभी परिवार न्यायालय के न्यायाधीशगण शामिल हो रहे हैं।दिनांक 08.07.19 से 11.07.19 में एक 4 दिवसीय कार्यशाला अभिभाषकगण के लिए रखी गई है। 13.07.19 और 14.07.19 को एक कार्यशाला लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम से संबंधित विशेष न्यायाधीशगण के लिए रखी गई है। 27 और 28 जुलाई, 2019 को एक कार्यशाला भूमि अधिग्रहण अधिनियम के संबंध में वहीं 3 और 4 अगस्त 2019 को एक कार्यशाला मोटर दुर्घटना दावा प्रकरणों के संबंध में रखी गई है। एक राष्ट्रीय स्तर का कार्यक्रम पर्यावरण संरक्षण के उद्देश्य से 17 एवं 18 अगस्त, 2019 को होना है, जिसमें न केवल इन प्रकरणों के संबंध में कार्य कर रहे न्यायाधीशगण शामिल होंगे बल्कि इन प्रकरणों से संबंधित अभियोजन अधिकारी, अनुसंधान अधिकारी, वन विभाग, प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, खनन विभाग, पुलिस विभाग के कई अधिकारीगण भी शामिल होंगे।

5 अगस्त, 2019 से 31 अगस्त, 2019 तक Induction Training का द्वितीय चरण रखा गया है और एक कार्यशाला घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम पर माह के अंत में रखी गई है। हमारे नव नियुक्त न्यायाधीशगण के Induction Training का प्रथम चरण 3 सितम्बर, 2019 से 28 सितम्बर, 2019 तक प्रस्तावित है और इसी कारण NI Act और NDPS Act की जो कार्यशालायें 7 एवं 8 सितंबर, 2019 और 21 एवं 22 सितंबर, 2019 को रखी जानी थी उन्हें आगामी माहों में आयोजित किया जायेगा।

उक्त कार्यक्रमों से ये स्पष्ट है कि संस्था के ये दो माह अतिव्यस्त रहने वाले हैं क्योंकि हमारे नव नियुक्त व्यवहार न्यायाधीशगण के दो बैच के Induction Training क्रमशः अगस्त और सितंबर माह में होना हैं और उनके साथ ही साथ अन्य विषयों पर भी कार्यशालाएं होना

हैं। परम पिता परमेश्वर के आशीर्वाद से ये कार्यक्रम सफल और सुफल होंगे ऐसी मुझे आशा है।

पत्रिका के अंक संबंधित माह में ही आपके पास पहुंचने का जो लक्ष्य हमारी टीम ने लिया था उसे हम प्रभु के आशीर्वाद से पूर्ण कर रहे हैं और आगे भी इसी प्रकार समय पर अंक आपके पास पहुंचते रहेंगे ऐसा हमारी टीम प्रयास करेगी।

हनुमान जी ने अपनी माता से पूछा कि, "मैं बड़ा होकर क्या बनूंगा।" माता जी ने उत्तर दिया कि 'चार बातों का ध्यान रखोगे तो जिसके लिए जन्मे हो वह बन जाओगे':-

(1) लक्ष्य को कभी मत भूलना।

(2) समय का सदुपयोग करना।

(3) ऊर्जा का दुरुपयोग मत करना।

(4) सेवा का कोई अवसर मत चूकना।

यदि मां अंजनी द्वारा दी गई उक्त चार शिक्षायें कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में उतार ले तो उसे सफल होने से कोई नहीं रोक सकता। मुझे आशा है कि हमारे न्यायाधीशगण इन चारों सिद्धांतों पर चलते हुए न्यायपालिका को सर्वोच्च शिखर पर ले जाने का हर संभव प्रयास करेंगे।

पत्रिका के बारे में आपके अमूल्य सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

"A guy says,
A man explains,
A gentleman aspires."
– Unknown

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY,
HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

Second Phase Foundation/Orientation Course for District Judges (Entry Level) directy appointed from the Bar
29.04.2019 to 09.05.2019

Induction/Refresher Course on – Law relating to Juvenile Justice and Emerging Trends
04.05.2019 & 05.05.2019

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY,
HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

Second Refresher Course for Civil Judges Class-II from 2016 Batch
13.05.2019 to 17.05.2019

Specialized Educational Programme on –
Professionalism at Work Place
27.05.2019 & 28.05.2019

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY,
HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

Specialized Accounts Training Programme for the Accountants of District & Family Courts of the State
03.06.2019 & 04.06.2019

Workshop on – Negotiable Instruments Act, 1881
22.06.2019 & 23.06.2019

HON'BLE SHRI JUSTICE SANJAY KUMAR SETH
CHIEF JUSTICE OF MADHYA PRADESH DEMITS OFFICE

Hon'ble Shri Justice Sanjay Kumar Seth has demitted office on His Lordship's attaining superannuation.

His Lordship was born on 10th June, 1957. After obtaining degrees in B.A. and LL.B, His Lordship was enrolled as an Advocate of M.P. State Bar Council in

the year 1981 and joined the chamber of Late Shri K.K. Adhikari. Therafter, started independent practice on Constitutional and Civil sides from 1983. His Lordship was Sub-Editor and Editor of ILR (M.P. Series) during 1988-89 and again from 1998-99, respectively. His Lordship was Government Advocate from 1989 to June 1996 and went on to work as Deputy Advocate General from July 2000

till His Lordship's elevation as Additional Judge of the High Court of

Madhya Pradesh.

His Lordship was sworn in as 24th Chief Justice of Madhya Pradesh High Court on 14th November, 2018 and took charge of the High Court on

15th November, 2018.

During His Lordship's tenure as Chief Justice of Madhya Pradesh in the capacity of Patron of Judicial Education, His Lordship took keen interest in the academic activities of the Academy and provided wholesome motivation, support and guidance for diversifying the academic activities of the Academy. The Academy is deeply indebted for His Lordship's kind support and benevolent guidance.

During His Lordship's tenure in the High Court, rendered invaluable services as Acting Chief Justice, Administrative Judge, Judge In-charge, Judicial Education and also Executive Chairman, Madhya Pradesh State Legal Services Authority.

We on behalf of JOTI Journal, wish His Lordship a healthy, happy and prosperous life.

•

APPOINTMENT OF JUDGES IN THE HIGH COURT OF MADHYA PRADESH

Hon'ble Shri Justice Vishal Dhagat and Hon'ble Shri Justice Vishal Mishra have been administered oath of office by Hon'ble Shri Justice S.K. Seth, Chief Justice, High Court of Madhya Pradesh on 27th May, 2019 as Judges of High Court of Madhya Pradesh in a Swearing-in-Ceremony held in the Conference Hall of South Block of High Court of M.P. at Jabalpur.

Hon'ble Shri Justice Vishal Dhagat was appointed as Judge of the High Court of Madhya Pradesh.

Was born on 14.12.1969 at Dibrugarh, Assam. After obtaining degrees of B.A. (Hons.) from Venkateshwara College, University of Delhi in the year 1990 and LL.B. from Sagar University in 1999, was enrolled as an Advocate with the State Bar Council of Madhya Pradesh on 23.10.1999. Started practice at Jabalpur under the able guidance of

Shri R.K. Gupta (who later was elevated as Judge of High Court of M.P.) and Shri R.P. Agrawal, Sr. Advocate. Thereafter, since 2002, His Lordship has been practicing independently.

Practised mainly on Civil, Criminal and Constitutional sides in the High Court of Madhya Pradesh for the last 20 years. Was appointed as Government Advocate and worked as such from 01.08.2017 to 31.01.2019. His Lordship has been and is a keen sportsman and played Badminton and Table Tennis in school, region and in Delhi State.

Hon'ble Shri Justice Vishal Mishra was appointed as Judge of the High Court of Madhya Pradesh.

Was born on 17.07.1974. His Lordship hails from the family of Judges; father late Hon'ble Shri Justice Hargovind Mishra was Judge of High Court of Madhya Pradesh and

brother Hon'ble Shri Justice Arun Mishra is presently Judge Supreme Court of India.

After obtaining degrees of B.Com. and LL.B. from Maharani Laxmibai College, Gwalior in the years 1997 and 2000, respectively, enrolled as an Advocate with the State Bar Council of Madhya Pradesh on 08.07.2000. Started practice in the High Court of Madhya Pradesh at Gwalior.

His Lordship served as Government Advocate, High Court of Madhya Pradesh, Bench Gwalior from 16.07.2009 to 10.11.2011, as Deputy Advocate General from 15.06.2015 to 30.07.2016. Also worked as Additional Advocate General, State of M.P. in High Court of M.P., Bench at Gwalior from 30.07.2016 to 17.12.2018. Also worked for several institutions such as M.P. Pollution Control Board, M.P. Road Transport Corporation, Nagrik Sahkari Bank Maryadit Gwalior and M.P. Housing Board.

We on behalf of JOTI Journal wish Their Lordships a very happy and successful tenure.

•

''It must always be remembered by every judicial officer that administration of justice is a sacred task and according to our hoary Indian tradition, it partakes of the divine function and it is with the greatest sense of responsibility and anxiety that the judicial officer must discharge his judicial function, particularly when it concerns the liberty of a person.''

P.N. Bhagwati, J. in ***Kasambhai Abdulrehmanbhai Sheikh v. State of Gujarat, (1980) 3 SCC 120***, para 4

PART – I

बेल नॉट जेल

प्रदीप कुमार व्यास
संचालक
मध्यप्रदेश राज्य न्यायिक अकादमी,
उच्च न्यायालय जबलपुर

दांडिक न्यायालय में अभिरक्षा, जमानत, अग्रिम जमानत दैनिक कार्य के ऐसे विषय हैं जिनमें प्रायः न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट के समक्ष कई विचारणीय प्रश्न उत्पन्न होते हैं। जैसेः-

1. कब जमानत स्वीकार की जाए?
2. कब जमानत खारिज की जाए?
3. समानता का सिद्धांत क्या है?
4. पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पत्र को स्वीकार करते समय विधिक स्थिति क्या है?
5. परिस्थिति में परिवर्तन किसे माना जाए?
6. कब पुलिस अभिरक्षा स्वीकार करना चाहिए?
7. कब पुलिस अभिरक्षा का आवेदन खारिज करना चाहिए?
8. बाध्यताकारी जमानत क्या आज्ञापक है?
9. धारा 437 (6) दं.प्र.सं में जमानत देना क्या आज्ञापक है?
10. अग्रिम जमानत कब देना चाहिए और कब खारिज करना चाहिए?
11. कब दी गई जमानत खारिज की जा सकती है और उसकी प्रक्रिया क्या है?

और ऐसे कितने ही प्रश्न प्रतिदिन उत्पन्न होते हैं। यहां हम अभिरक्षा, जमानत, अग्रिम जमानत, जमानत निरस्त करने आदि के बारे में मजिस्ट्रेट के दृष्टिकोण से और अपर सत्र न्यायाधीश के दृष्टिकोण से अलग-अलग विचार करेंगे।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ राजस्थान विरूद्ध बालचंद, ए.आई.आर 1977 एस.सी. 2447,*** में यह प्रतिपादित किया है कि मूलभूत सिद्धांत ''बेल नॉट जेल'' है, सिवाय वहां जहां अभियुक्त के फरार होने की संभावना हो, अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना हो, गवाहों को डराने धमकाने की संभावना हो, अपराध गंभीर हो अर्थात् इन परिस्थितियों के न होने पर सामान्य नियम अभियुक्त को जमानत देने का है और जेल भेजना अपवाद है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नवीनतम न्यायदृष्टांत ***दाताराम सिंह विरुद्ध स्टेट आफ उत्तरप्रदेश, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 980,*** में यह प्रतिपादित किया है कि दांडिक विधिशास्त्र का यह नियम है कि अभियुक्त को निर्दोष होना उपधारित किया जायेगा जब तक कि वह दोषी होना प्रमाणित न हो जाए और जमानत देना सामान्य नियम है और जेल में रखा जाना एक अपवाद है।

दुर्भाग्य से ये दोनों मूलभूत सिद्धांत दृष्टि से ओझल होते जा रहे हैं और इसी कारण अधिक से अधिक व्यक्ति जेलों में हैं।

न्यायदृष्टांत दाताराम सिंह (उपरोक्त) में निर्णय चरण 6 में न्यायदृष्टांत ***निकेश ताराचंद शाह विरूद्ध यूनियन आॅफ इंडिया, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5500, गुरूबख्श सिंह सिब्बा विरूद्ध स्टेट आॅफ पंजाब, ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 1632, नागेन्द्र विरूद्ध किंग एम्परर, ए.आई.आर. 1924 कलकत्ता 436, एम्परर विरूद्ध हुटचिन्सन, ए.आई.आर. 1931 इलाहाबाद 356,*** को विचार में लिया गया है।

उक्त दोनों न्यायदृष्टांतों में ''बेल नॉट जेल'' अर्थात जमानत देना एक नियम है और जेल भेजना एक अपवाद है, इस मूलभूत सिद्धांत को बतलाया गया है।

न्यायदृष्टांत ***मनसब अली विरूद्ध इसरान, (2003) 1 एससीसी 632,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि समाज की सुरक्षा भी ध्यान में रखना चाहिए।

न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट का पद इसलिए भी महत्वपूर्ण होता है कि उसे कई मामलों में विवेकाधिकार दिया गया है जिसका प्रयोग उसे उक्त दोनों सिद्धांतों के बीच उचित तालमेल बैठाते हुए करना है।

जमानत पर विचार करते समय हम इन दोनों ही विधिक स्थितियों को ध्यान में रखेंगे लेकिन वर्तमान में बेल नॉट जेल का सिद्धांत जेल नॉट बेल के रूप में दिखलाई देता है और इस कारण माननीय उच्च न्यायालय में और सत्र न्यायालयों में भारी मात्रा में जमानत आवेदन पत्र प्रस्तुत होते हैं और इन वरिष्ठ न्यायालयों का अमूल्य समय इन्हीं आवेदनों के निराकरण में लग जाता है जिसे वे गंभीर मामलों में लगा सकते थे।

यहां हम अभिरक्षा, जमानत, अग्रिम जमानत आदि के बारे में नवीनतम विधिक स्थितियों की चर्चा करेंगे ताकि न्यायाधीश एवं मजिस्ट्रेट को जमानत के मामलों में कम से कम कठिनाई हो। यहां हम निम्नलिखित बिंदुओं पर चर्चा करेंगे:-

अभिरक्षा

1.	अभिरक्षा	2.	चिकित्सा परीक्षण
3.	सात वर्ष तक के कारावास से दंडनीय अपराध होने पर	4.	चैक लिस्ट का न होना
5.	सात वर्ष से अधिक अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध होने पर	6.	विधिक सहायता या लीगल एड
7.	पुलिस अभिरक्षा के बारे में	8.	औपचारिक गिरफ्तारी या फाॅरमल अरेस्ट
9.	न्यायिक अभिरक्षा के बारे मे	10.	अनुसंधान का स्थगित होना और मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड
11.	ट्रांजिट रिमांड		

जमानत

जमानत के प्रकार

12. जमानत

जमानत के प्रकार

13. धारा 436 दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के बारे में
14. धारा 436ए के बारे में
15. धारा 437 दं.प्र.सं. 1973 के बारे में
16. धारा 437 (6) दं.प्र.सं. के तहत जमानत
17. बाध्यताकारी जमानत या डिफाॅल्ट बेल
18. औपचारिक गिरफ्तारी या फारमल अरेस्ट
19. आवेदन की आवश्यकता
20. अभियुक्त की उपस्थिति के बारे में
21. एन.डी.पी.एस. एक्ट के बारे में
22. 60/90 दिन के बाद अभियोग पत्र प्रस्तुत होने पर वैधानिक स्थिति
23. कारावास की अवधि के बारे में
24. अभियुक्त का समर्पण या सरेन्डर करना
25. सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले
26. अनुसंधान के दौरान अभियुक्त की न्यायालय में जमानत के बाद उपस्थिति
27. 437ए दण्ड प्रक्रिया
28. जमानत आदेश में लगाई जाने वाली संहिता, 1973 के बारे मे शर्तें

धारा 439 दं.प्र.सं में जमानत

29. धारा 439 दं.प्र.सं में जमानत
30. अभियुक्त का अभिरक्षा में होना
31. जमानत आवेदन पत्र के प्रथम या पश्चातवर्ती होने के बारे में शपथ-पत्र
32. केस डायरी/अभिलेख में कौन से तथ्यों पर ध्यान देवें जमानत आवेदन के निराकरण के लिए विचारणीय तथ्य
33. जमानत आवेदन के निराकरण के लिए विचारणीय तथ्य
34. विचारण में विलंब एवं निरोध की अवधि
35. धारा 164 दं.प्र.सं. के कथन में विरोधाभास
36. क्या साक्ष्य और दस्तावेजों का विस्तृत परीक्षण आवश्यक है?
37. पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पत्र
38. परिस्थितियों में परिवर्तन
39. समानता का सिद्धांत
40. अनुसंधान का प्रारंभिक स्तर पर होना
41. गुण-दोष पर मत प्रकट न करना
42. लैंगिक हमलों के मामलों में जमानत

43. राशि जमा करवाना
44. जमानत के आदेश का स्वरूप
45. मजिस्ट्रेट द्वारा पारित जमानत आदेश का स्वरूप
46. धारा 88 दं.प्र.सं के बारे में
47. अभियोजन साक्ष्य समाप्त होने के आधार पर जमानत
48. अपराध की गंभीरता
49. अभियुक्त के विरूद्ध पूर्व आपराधिक रिकार्ड होना
50. दण्ड प्रक्रिया संहिता की अनुसूची ध्यान में रखना
51. वरिष्ठ न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत लेने का प्रभाव

विशेष अधिनियम के अधीन अपराध एवं जमानत

52. म.प्र. आबकारी अधिनियम, 1915 के अपराध और जमानत
53. एन.डी.पी.एस. के मामले और जमानत
54. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के अपराध और जमानत
55. विद्युत अधिनियम, 2003 के अपराध और जमानत
56. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन अपराध एवं जमानत
57. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 या आई.टी. एक्ट के अपराध और जमानत
58. लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अधीन अपराध और जमानत
59. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन अपराध और जमानत
60. दहेज प्रताड़ना के मामलों में जमानत पर रुख
61. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 और जमानत
62. जैव विविधता अधिनियम, 2002 या बायोलॉजिकल डायवरसिटी एक्ट और जमानत
63. म.प्र. गौवंश वध प्रतिषेध अधिनियम, 2004 और जमानत
64. धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 और जमानत
65. रिमांड ड्यूटी के दौरान जमानत
66. जमानत आदेश में अपराध क्रमांक आदि की त्रुटि होने पर
67. जमानत आदेश में निर्देश
68. वरिष्ठ न्यायालय द्वारा निर्देश
69. धारा 70 (2) दंड प्रक्रिया संहिता का आवेदन आने पर
70. सतर्कता या विजलेंस शाखा का भय और जमानत

अग्रिम जमानत

71. अग्रिम जमानत
72. शक्तियां असाधारण व अपवाद स्वरूप की होना
73. अग्रिम जमानत आवेदन पहले कहां लगेगा
74. अभियोग पत्र प्रस्तुत हो जाने के बाद अग्रिम जमानत आवेदन
75. मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तारी वारंट होने की दशा में
76. नियमित जमानत आवेदन खारिज होने के बाद पुनः अग्रिम जमानत आवेदन
77. अग्रिम जमानत की अवधि
78. बड़ी बैंच को रैफरेंस
79. क्या अपराध दर्ज होना आवश्यक है?
80. अग्रिम जमानत में निर्देश
81. म.प्र. आबकारी अधिनियम 1915 एवं अग्रिम जमानत
82. जमानत की राशि युक्तियुक्त होना
83. जमानतदार के प्रपत्र
84. जमानत निरस्ती के बारे में
85. उपसंहार

1. अभिरक्षा

1. धारा 57 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अनुसार कोई पुलिस अधिकारी वारंट के बिना गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उससे अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखेगा जो उस मामले की सब परिस्थितियों में उचित है तथा ऐसी अवधि मजिस्ट्रेट के धारा 167 के अधीन विशेष आदेश के अभाव में गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर 24 घंटे से अधिक की नहीं होगी।

2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 (2) के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को, जो गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरुद्ध रखा गया है, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर ऐसी गिरफ्तारी से 24 घंटे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा और ऐसे किसी व्यक्ति को मजिस्टेªट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा।

3. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं।

4. उक्त प्रावधानों पर विचार करें तो किसी भी व्यक्ति को यदि पुलिस गिरफ्तार करती है तो उसे यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश

करना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 57 के अनुसार एक आज्ञापक प्रावधान है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 के अनुसार यह प्रत्येक भारतीय नागरिक का मौलिक अधिकार भी है कि उसे यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाए।

5. विधायिका ने कानून बनाने का काम कर दिया है। अब यह मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है कि वे किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार करके यदि उनके समक्ष पेश किया जाता है तो केस डायरी में संलग्न गिरफ्तारी पंचनामा या किसी गिरफ्तारी वारंट के साथ संलग्न गिरफ्तारी पंचनामा को देखकर यह सुनिश्चित कर लें कि अभियुक्त को यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर 24 घंटे के भीतर पेश किया गया है या नहीं और यदि ऐसा नहीं किया गया है तो संबंधित पुलिस अधिकारी से विलंब के कारण के बारे में पूछताछ करें और यदि समाधानप्रद कारण नहीं बतलाये जाते हैं, तब आवश्यक कार्यवाही भी कर सकते हैं, तभी इन आज्ञापक प्रावधानों और मौलिक अधिकारों को लागू किया जा सकेगा।

2. चिकित्सा परीक्षण

6. जब अभियुक्त को प्रथम बार मय केस डायरी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तब मजिस्ट्रेट को केस डायरी से यह समाधान कर लेना चाहिए कि उसका चिकित्सा परीक्षण करवाकर, रिपोर्ट डायरी में संलग्न की गई है। यदि ऐसी प्रथा संबंधित स्थान पर न हो तो इस प्रथा को विकसित करना चाहिए कि जब भी प्रथम बार अभियुक्त मय केस डायरी पेश किया जाए तब डायरी में उसका मेडिकल परीक्षण करवाकर संलग्न किया जाए। इसका लाभ यह रहता है कि जहां अभियुक्त की ओर से अभिरक्षा में मारपीट की शिकायत की जाती है तब ऐसा चिकित्सा परीक्षण सही तथ्य पता लगाने में सहायक होता है।

3. सात वर्ष तक के कारावास से दंडनीय अपराध होने पर

7. यदि अभियुक्त को मय केस डायरी प्रथम बार मजिस्ट्रेट के सामने ऐसे अपराध में पेश किया जाता है जिसमें 7 वर्ष तक का कारावास का दंड है, तब मजिस्ट्रेट को यह देखना चाहिए कि क्या न्यायदृष्टांत अरनेश कुमार में दिए निर्देशों के अनुरुप चेकलिस्ट लगाई गई है या नहीं?

8. न्यायदृष्टांत ***अरनेश कुमार विरूद्ध स्टेट आॅफ बिहार, 2014 (3) क्राइम्स 40(एस.सी.),*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ये निर्देश दिये हैं कि:-

(1) सभी राज्य शासन उनके पुलिस अधिकारियों को निर्देश दें कि धारा 498ए भा.दं.सं. के अपराध (या 7 वर्ष तक के दण्ड से दण्डनीय किसी भी अपराध) का प्रकरण पंजीबद्ध होता है, तब स्वतः ही अभियुक्त को गिरफ्तार न करे बल्कि यह संतुष्टि करे कि गिरफ्तारी की आवश्यकता धारा 41 दं.प्र.सं. के अनुसार है।

(2) सभी पुलिस अधिकारीगण को धारा 41 (1)(बी)(2) के अनुसार एक जांच सूची उपलब्ध कराई जाये।

(3) पुलिस अधिकारी जब अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत करें तो वे उक्त चेक लिस्ट सम्यक रूप से भरकर प्रस्तुत करें जिसमें गिरफ्तारी के कारण और आवश्यकता का उल्लेख हो।

(4) संबंधित मजिस्ट्रेट, जो अभियुक्त का निरोध प्राधिकृत करते हैं, वे पुलिस अधिकारी द्वारा दिये गये प्रतिवेदन को विचार में लेकर और अपना समाधान उसके बारे में अभिलिखत करने के बाद अभियुक्त का निरोध स्वीकार करें।

(5) यदि अभियुक्त को गिरफ्तार न करने का निर्णय पुलिस अधिकारी लेते हैं तो वे अपराध पंजीबद्ध होने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर इसकी सूचना मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करे और उसकी एक प्रतिलिपि लेखबद्ध कारणों सहित जिले के पुलिस अधीक्षक को भेजे।

(6) धारा 41ए दं.प्र.सं. के तहत अभियुक्त को उपस्थिति का सूचना पत्र अपराध संस्थित होने के दो सप्ताह के भीतर तामील करावे और इसकी प्रति भी पुलिस अधीक्षक को भेजे।

(7) उक्त निर्देशों का अनुपालन करने में असफल रहने वाले पुलिस अधिकारी के विरूद्ध विभागीय कार्यवाही का दायित्व बनेगा और संबंधित उच्च न्यायालय उन्हें न्यायालय के अवमान के लिए भी दंडित कर सकेंगे।

(8) मजिस्ट्रेट यदि गिरफ्तारी के कारणों से संतुष्ट हुए बिना निरोध प्राधिकृत करते हैं तो उनके विरूद्ध भी विभागीय जांच का दायित्व बनेगा। ये निर्देश 7 वर्ष तक के दंडनीय सभी अपराधों में लागू होंगे।

9. इस प्रकार जैसे ही पुलिस अभियुक्त को गिरफ्तार करके मजिस्ट्रेट के समक्ष मय-केस डायरी पेश करती है तो मजिस्ट्रेट को यह समाधान कर लेना चाहिए कि क्या धारा 41 (1)(बी)(2) दं.प्र.सं. के तहत पुलिस ने चैक लिस्ट लगाई है या नहीं, जिसके अनुसार पुलिस अधिकारी का समाधान निम्न में से किसी एक तथ्य के बारे में या एक से अधिक तथ्य के बारे में होना दर्ज होना चाहिए कि ऐसी गिरफ्तारी आवश्यक है क्योंकि:-

ए. ऐसे व्यक्ति को ऐसे और किसी अपराध को कारित करने से निवारित करने अर्थात रोकने के लिए या

बी. अपराध के उचित अन्वेषण के लिए या

सी. ऐसे व्यक्ति को अपराध की साक्ष्य को मिटाने या ऐसी साक्ष्य से किसी ढंग से छेड़-छाड़ करने से निवारित करने के लिए या रोकने के लिए या

डी. ऐसे व्यक्ति को मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रलोभन देने, धमकी देने या वायदा करने से निवारित करने के लिए ताकि ऐसा व्यक्ति ऐसे तथ्यों को न्यायालय में या पुलिस अधिकारी को प्रगट न करे या

ई. क्योंकि जब तक ऐसा व्यक्ति गिरफ्तार नहीं किया जाता उसकी न्यायालय में उपस्थिति जब कभी भी अपेक्षित हो सुनिश्चित नहीं की जा सकती। पुलिस अधिकारी गिरफ्तारी करते समय अपने कारणों को अभिलिखित करेंगे।

4. चैक लिस्ट का न होना

10. यदि न्यायदृष्टांत अरनेश कुमार (उपरोक्त) के अनुपालन में चेक लिस्ट धारा 41 (1)(बी)(2) दं.प्र.सं के अनुसार पुलिस ने न भी लगाई हो तब भी मजिस्ट्रेट को केस डायरी से यह समाधान कर लेना चाहिए कि अभियुक्त की गिरफ्तारी के समाधानप्रद कारण हैं या नहीं। यदि गिरफ्तारी के कारण समाधानप्रद प्रतीत होते हों तो ये लिखना चाहिए कि यद्यपि चेक लिस्ट नहीं लगाई गई है लेकिन गिरफ्तारी के कारण संतोषप्रद हैं। भविष्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन किया जावे।

कई बार ऐसी स्थिति भी बनेगी कि चेक लिस्ट लगी है लेकिन गिरफ्तारी के कारण संतोषप्रद प्रतीत नहीं होते हैं तब भी मजिस्ट्रेट को संबंधित पुलिस अधिकारी का स्पष्टीकरण लेना चाहिए और भविष्य में निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित हो, ऐसे कदम उठाना चाहिए और अभियुक्त की जमानत के बारे में आवश्यक आदेश कर देना चाहिए।

5. सात वर्ष से अधिक अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध होने पर

11. यदि अभियुक्त को मय केस डायरी प्रथम बार मजिस्ट्रेट के सामने ऐसे अपराध में पेश किया जा रहा है जिसमें 7 वर्ष से अधिक अवधि के कारावास का दंड है तब मजिस्ट्रेट को यह नहीं देखना है कि क्या न्यायदृष्टांत अरनेश कुमार (उपरोक्त) में दिए निर्देशों के अनुरुप चेकलिस्ट लगाई गई है या नहीं।

6. विधिक सहायता या लीगल एड

12. मजिस्ट्रेट को अभियुक्त से यह पूछना चाहिए कि क्या उसके कोई अधिवक्ता हैं या नहीं। अधिवक्ता न होने की दशा में उसे विधिक सहायता के पैनल से अधिवक्ता दिलवाना चाहिए। अभियुक्त के विधिक सहायता नहीं चाहने का प्रगटन करने पर भी उसे विधिक सहायता दिलवाना चाहिए क्योंकि किसी भी अभियुक्त का प्रतिनिधित्व अभिभाषक से होना आज्ञापक होता है। आदेश पत्र में ये लिख लेना चाहिए कि अभियुक्त के कोई अभिभाषक नहीं हैं और उसने विधिक सहायता चाहने से इंकार किया है, फिर भी उसे इसलिए विधिक सहायता दिलवाई जा रही है कि अभियुक्त का उचित प्रतिनिधित्व हो सके।

13. विधिक सहायता प्रथम उपस्थिति से ही दिलवाने के संबंध में न्यायदृष्टांत ***मोहम्मद अजमल मोहम्मद अमीर कसाब विरूद्ध स्टेट आॅफ महाराष्ट्र, (2012) 9 एससीसी 1, निर्णय चरण 474,*** अवलोकनीय है। इस चरण में मजिस्ट्रेट पर यह कर्तव्य अधिरोपित किया गया है कि वह अभियुक्त का अधिवक्ता न होने पर उसे विधिक सहायता या अधिवक्ता की सहायता का अधिकार होने से अवगत करावे। निर्णय चरण 478 में यदि मजिस्ट्रेट अपने इस कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं तो उसके लिए विभागीय जांच के दायी होने के बारे में प्रतिपादित किया गया है।

14. जब भी अभियुक्त को मय केस डायरी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है तब पुलिस या तो पुलिस अभिरक्षा की प्रार्थना करती है या न्यायिक अभिरक्षा की प्रार्थना करती है।

7. पुलिस अभिरक्षा के बारे में

15. धारा 167 (2) दं.प्र.सं के अनुसार पुलिस अभिरक्षा अधिकतम 15 दिन की दी जा सकती है, इससे अधिक नहीं। सामान्यतः 10 से 15 प्रतिशत मामलों में पुलिस अभिरक्षा की मांग की जाती है। पुलिस अभिरक्षा किसी भी अभियुक्त के गिरफ्तार होने की तारीख से प्रथम 15 दिवस में ही स्वीकार की जा सकती है, उसके बाद नहीं। जैसे यदि कोई अभियुक्त 1 जनवरी, 2019 को गिरफ्तार किया गया है और उसे 2 जनवरी, 2019 को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया है, तो 3 जनवरी, 2019 से गणना शुरु होगी और 17 जनवरी, 2019 तक की अवधि में ही उसे केवल 15 दिन की पुलिस अभिरक्षा दी जा सकती है। यदि पुलिस अभिरक्षा की मांग 12 जनवरी, 2019 को की गई तो अभियुक्त को केवल 5 दिन अर्थात् 17 जनवरी, 2019 तक की पुलिस अभिरक्षा ही दी जा सकेगी।

16. अवधि की गणना रिमांड देने के आदेश से की जाना होती है, गिरफ्तारी की दिनांक से नहीं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***छगंती सत्यनारायण विरूद्ध स्टेट आफ आंध्रप्रदेश, ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 2130,*** अवलोकनीय है।

17. 90/60 दिन की गणना में रिमांड दिया जाने वाला दिन छोड़ देना चाहिये, चार्जशीट पेश होने वाला दिन गणना में लिया जाना चाहिये। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***अजय सिंह विरूद्ध सुरेन्द्र सिंह, 2005 (3) एम.पी.एल.जे. 306,*** अवलोकनीय है जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ एम.पी. विरूद्ध रूस्तम, 1995 एस.सी.सी. सप्लीमेंट (3) 221,*** पर भरोसा करते हुये उक्त मत दिया गया है।

18. न्यायदृष्टांत ***रवि प्रकाश सिंह उर्फ अरविन्द सिंह विरूद्ध स्टेट आॅफ बिहार, ए.आई.आर. 2015 एस.सी. 1294,*** के अनुसार अभियुक्त का उसे जमानत पर रिहा करने के आलोप्य अधिकार हेतु 90/60 दिनों की अवधि की गणना कैसे की जाये? अभिनिर्धारित किया गयाः-

1. अवधि की गणना गिरफ्तारी की तारीख से न करके रिमांड देने की तारीख से की जायेगी जैसा कि छगंती ***सत्यनारायण विरूद्ध स्टेट आॅफ आंध्रप्रदेश, ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 2130,*** में निर्धारित किया गया है।
2. अभियुक्त को जिस दिन न्यायिक अभिरक्षा का प्रथम रिमांड दिया जाता है उस दिन को गणना से अपवर्जित करना चाहिये या कम करना चाहिये और जिस दिन अभियोग पत्र प्रस्तुत होता है उस दिन को गणना में लेना चाहिये जैसे कि न्यायदृष्टांत ***स्टेट आॅफ एम.पी. विरूद्ध रूस्तम, 1995 एस.सी.सी. सप्लीमेंट (3) 221,*** में प्रतिपादित किया गया है।

इस मामले में अभियुक्त ने न्यायालय के समक्ष 05.07.2013 को समर्पण किया था और उसे न्यायिक अभिरक्षा का रिमांड दिया गया था। अभियोग-पत्र 03.10.2013 को प्रस्तुत किया गया था। अभियुक्त को धारा 167 (2) दं.प्र.सं. के तहत जमानत का पात्र नहीं पाया गया क्योंकि अभियोग पत्र 90वें दिन प्रस्तुत हो चुका था।

19. पुलिस अभिरक्षा स्वीकार करते समय संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट को केस डायरी का अवलोकन कर और संबंधित पुलिस अधिकारी को सुनकर यह समाधान करना चाहिये कि पुलिस

अभिरक्षा में अभियुक्त को देने से अनुसंधान में प्रगति की संभावना है या अभियुक्त ने धारा 27 भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का मेमोरेण्डम दिया है जिसके आधार पर उससे कोई वस्तु बरामद होना है या अभियुक्त से अन्य सह अभियुक्तगण के बारे में पता लगाना है या नए तथ्यों का पता लगना संभावित है। इन सब तथ्यों पर विचार करना चाहिये। पुलिस अभिरक्षा में यदि अभियुक्त को सौंपना है तब केस डायरी के साथ अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति भी आवश्यक है, अभियुक्त को सुनना भी चाहिये।

20. यदि पुलिस अभिरक्षा में देने का प्रथम आवेदन निरस्त हो गया है तब भी प्रथम 15 दिवस के भीतर पुलिस अभिरक्षा के लिये दूसरा आवेदन प्रचलन योग्य होता है, यदि परिस्थितियों में कोई सारवान् परिवर्तन हो जाए लेकिन एक बार प्रथम 15 दिवस की अवधि निकल जाये उसके बाद उस मामले में पुलिस अभिरक्षा का आवेदन चलने योग्य नहीं होता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***देवेन्द्र कुमार एवं अन्य विरूद्ध स्टेट आॅफ हरियाणा, (2010) 6 एस.सी.सी. 753 एवं सी.बी.आई. विरूद्ध अनुपम जे. कुलकर्णी, (1992) 3 एस.सी.सी. 141,*** अवलोकनीय है जिनमें उक्त व्यवस्था माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दी है।

21. अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में देते समय संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट को ऐसा स्पष्ट आदेश करना चाहिये कि अभियुक्त को कितने दिन की पुलिस अभिरक्षा में दिया गया है और उसे पुनः किस दिनांक को और किस समय पर न्यायालय में पेश किया जाना है ताकि कार्य दिवस में ही अभियुक्त को पेश किया जा सके और आगे की सुनवाई हो सके, अन्य दशा में अभियुक्त को मय केस डायरी न्यायालय समय के पश्चात् मजिस्ट्रेट के निवास स्थान पर पुलिस पेश करती है। निवास स्थान पर मोहर या सील या गोल मोहर, आदेश पत्र, जेल वारंट का फार्म न होने पर अनावश्यक असुविधा होती है। इससे बचने के लिए पुलिस अभिरक्षा किस दिनांक और कितने बजे तक दी गई है ऐसा स्पष्ट आदेश करना चाहिए और न्यायालय समय में ही अभियुक्त को मय केस डायरी पेश किया जावे, ऐसे भी निर्देश देना चाहिए।

22. न्यायिक मजिस्ट्रेट को यह निर्देश भी देना चाहिये की अभियुक्त का मेडिकल कराया जावे और जब उसे पुनः प्रस्तुत किया जावे तब का मेडिकल भी कराया जावे।

23. धारा 10 किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 (अब 2015) को ध्यान में रखते हुये 18 वर्ष से कम के अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में नहीं दिया जाना चाहिये।

पुलिस अभिरक्षा की मांग एक से अधिक बार भी की जा सकती है लेकिन गिरफ्तारी के प्रथम 15 दिवस के भीतर किसी भी अभियुक्त को अधिकतम 15 दिवस की ही पुलिस अभिरक्षा में दिया जा सकता है।

24. धारा 167 (3) दं.प्र.सं के तहत् पुलिस अभिरक्षा में देने के कारण अभिलिखित करने होते हैं। अतः संक्षिप्त कारण भी आदेश में देना चाहिये जैसे अभियुक्त से बरामदगी होना है या अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में देने से अनुसंधान में महत्वपूर्ण प्रगति संभावित है या नए तथ्यों का पता लग सकता है या सह-अभियुक्तगण की जानकारी लग सकती है आदि।

अन्य अपराध में पूछताछ करना है इस आधार पर पुलिस अभिरक्षा नहीं देना चाहिए।

25. यदि पुलिस अभिरक्षा में, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के अलावा किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने, अभियुक्त को दिया है तब आदेश की एक प्रतिलिपि आदेश देने के कारणों सहित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेजना होता है। इस संबंध में धारा 167 (4) दं.प्र.सं में स्पष्ट प्रावधान है।

26. धारा 167 (2)(सी) दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के तहत कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट तब तक पुलिस अभिरक्षा का निरोध प्राधिकृत नहीं करेगा जब तक उसे उच्च न्यायालय द्वारा इस बारे में विशेष रूप से सशक्त न किया गया हो।

27. न्यायदृष्टांत ***स्टेट आॅफ एम.पी. विरूद्ध विपिन गोयल, एम.सी.आर.सी. नंबर 10945/2015, आई.एल.आर. 2015 एम.पी. 2274,*** आदेश दिनांक 03.07.2015, जबलपुर खण्डपीठ के मामले में यह प्रश्न निहित था कि पुलिस अभिरक्षा के उद्देश्य से प्रथम 15 दिन का प्रारंभिक बिन्दु क्या होता है? इस मामले में अभियुक्त ने धारा 439 दं.प्र.सं. का एक आवेदन माननीय उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया, तब तक वह न्यायिक अभिरक्षा में नहीं था। उसने 18 जून 2015 को माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष समर्पण किया। उसे जमानत आवेदन के निराकरण तक जबलपुर जेल में भेजा गया। उसका जमानत आवेदन दिनांक 29 जून, 2015 को खारिज किया गया। उस आदेश में न्यायालय ने कुछ अनुषांगिक निर्देश अनुसंधान अधिकारी को दिये कि वह अभियुक्त को विधि अनुसार अभिरक्षा में लेवे। अनुसंधान अधिकारी ने अभियुक्त को 30 जून, 2015 को अभिरक्षा में लिया और उसे नाम निर्दिष्ट न्यायालय भोपाल में पेश किया। संबंधित न्यायालय ने अभियुक्त को केवल 03 जुलाई, 2015 तक की पुलिस अभिरक्षा मंजूर की।

प्रश्न यह था कि धारा 167 दं.प्र.सं के उद्देश्य से पुलिस अभिरक्षा के लिये प्रथम 15 दिन की गणना 18 जन् 2015 से होगी या 30 जून 2015 से होगी?

यह अभिनिर्धारित किया गया कि पुलिस अभिरक्षा के लिये प्रथम 15 दिन की गणना 30 जून, 2015 से की जाना चाहिये जब प्रथम बार अभियुक्त को पुलिस द्वारा नाम निर्दिष्ट न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

8. औपचारिक गिरफ्तारी या फॅारमल अरेस्ट

28. कुछ मामलों में पुलिस अभियुक्त को, जो किसी अन्य मामले में पूर्व से निरोध में है, औपचारिक रूप से अपने मामले में गिरफ्तार करती है जिसे फॅारमल अरेस्ट कहते हैं। इन मामलों में अवधि की गणना, अभियुक्त को जब पुलिस अभिरक्षा के लिये मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, उस दिन से होती है, फॅारमल अरेस्ट की दिनांक से गणना नहीं होती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***कौक सिंह विरूद्ध स्टेट आॅफ एम.पी., (2004) 2 एम.पी.एच.टी. 215,*** अवलोकनीय है। इस मामले में अभियुक्त को 26.06.2003 को औपचारिक रूप से गिरफ्तार किया गया था और मजिस्ट्रेट के समक्ष 01.07.2003 को पुलिस रिमांड के लिये प्रस्तुत किया गया था। अवधि की गणना 01.07.2003 से होगी, यह प्रतिपादित किया गया।

29. कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि अभियुक्त स्वयं न्यायालय के समक्ष समर्पण करता है या उसे पुलिस अधिकारी के अलावा घटना स्थल पर उपस्थित किसी अन्य व्यक्ति या अधिकारी ने गिरफ्तार किया होता है, तब भी धारा 167 दं.प्र.सं. के प्रावधान उसी तरह लागू होंगे जैसे

पुलिस द्वारा की गई गिरफ्तारी पर लागू होते हैं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***डायरेक्टर इनफोर्समेंट विरूद्ध दीपक महाजन, ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1775,*** अवलोकनीय है।

30. एक फरार अभियुक्त, जो अभियोग पत्र प्रस्तुत होने के बाद गिरफ्तार हुआ, उसके बारे में अनुसंधान अभिकरण को पुलिस अभिरक्षा दी जा सकती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***सी.बी.आई. विरूद्ध रथीन धनपथ, ए.आई.आर. 2015 एस.सी. 3285,*** अवलोकनीय है जिसमें न्यायदृष्टांत ***स्टेट विरूद्ध दाउद इब्राहिम, ए.आई.आर. 1997 एस.सी. 2494,*** को विचार में लेते हुये यह प्रतिपादित किया गया कि मजिस्ट्रेट द्वारा पुलिस रिमांड से इस आधार पर इंकार करना कि अभियुक्त गिरफ्तारी के बाद धारा 309 दं.प्र.सं. के अधीन अभिरक्षा में है, उचित नहीं है।

9. न्यायिक अभिरक्षा के बारे में

31. पुलिस जब प्रथम बार अभियुक्त को मय केस डायरी मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करती है, तब लगभग 80 प्रतिशत मामलों में न्यायिक अभिरक्षा की मांग करती है।

यदि अपराध, मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून या कम नहीं के कारावास से दंडनीय है, तब न्यायिक अभिरक्षा कुल मिलाकर 90 दिन से अधिक की नहीं दी जा सकती है।

यदि अपराध उक्त दंड के अलावा अन्य मामलों से संबंधित है तब कुल मिलाकर 60 दिन से अधिक की न्यायिक अभिरक्षा नहीं दी जा सकती है।

60 या 90 दिन हो जाने के बाद अभिरक्षा स्वीकार की जाती है, केवल 61वें दिन या 91वें दिन अभियुक्त को यदि वह लगातार अभिरक्षा में रहा है और अभियोग पत्र प्रस्तुत नहीं हुआ है तो जमानत का आलोप्य अधिकार या इनडिफिसिबल राईट उत्पन्न हो जाता है।

धारा 167 दं.प्र.सं. के तहत मजिस्ट्रेट एक बार में अधिकतम 15 दिन की न्यायिक अभिरक्षा स्वीकार कर सकते हैं और उक्त अनुसार 60 या 90 दिन की न्यायिक अभिरक्षा स्वीकार कर सकते हैं।

न्यायिक अभिरक्षा स्वीकार करते समय वीडियो कॉन्फ्रेसिंग सुविधा का लाभ लेना चाहिए जिससे जेल से न्यायालय तक अभियुक्तगण को अनावश्यक लाने ले जाने और सुरक्षा का ध्यान रखने, जैसे तथ्यों से बचा जा सकता है परंतु प्रथम रिमांड देते समय अभियुक्त की मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थिति सुनिश्चित करना आवश्यक है। अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में अभियुक्त की भौतिक उपस्थिति के बिना अभिरक्षा स्वीकार करना चाहिए इस बारे में न्यायदृष्टांत ***राजकुमार विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 1990, एमपीएलजे 289 (डीबी),*** अवलोकनीय है।

10. अनुसंधान का स्थगित होना और मजिस्ट्रेट द्वारा रिमांड

32. न्यायदृष्टांत ***मुन्ना भाई रतिलाल पटेल विरूद्ध स्टेट आफ गुजरात, (2013) 1 एससीसी 314,*** में यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि अनुसंधान उच्च न्यायालय से स्थगित हो तब भी मजिस्ट्रेट रिमांड दे सकते हैं। इस मामले में यह भी कहा गया है कि अभियुक्त को रिमांड देना मूलभूत रूप से एक न्यायिक कार्य है और मजिस्ट्रेट के लिए ये आबद्धकारी है कि वह उसके मस्तिष्क का प्रयोग करे और यांत्रिक तरीके से रिमांड आदेश न करे। मजिस्ट्रेट को मामले के तथ्यों का मूल्यांकन करके ये देखना चाहिए कि पुलिस अभिरक्षा या न्यायिक अभिरक्षा देने की कोई आवश्यकता है या नहीं।

11. ट्रांजिट रिमांड

33. कभी-कभी अन्य राज्य की सीमा से लगे दंड न्यायालय में या अन्य स्थान पर भी पुलिस अन्य क्षेत्राधिकार की केस डायरी मय अभियुक्त प्रस्तुत करके ट्रांजिट रिमांड की मांग करती है। ऐसे में अभियुक्त को सुनकर केस डायरी का अवलोकन करके ट्रांजिट रिमांड दिया जा सकता है।

12. जमानत

जमानत के प्रकार

34. जमानत निम्न प्रकार की होती हैः-

1. धारा 436 दं.प्र.सं. के अधीन जमानत।
2. धारा 437 दं.प्र.सं. के अधीन जमानत।
3. धारा 437(6) दं.प्र.सं. के अधीन जमानत।
4. धारा 436(ए) दं.प्र.सं. के अधीन जमानत।
5. धारा 167(2) दं.प्र.सं. के अधीन बाध्यकारी जमानत।
6. धारा 437(ए) दं.प्र.सं. के अधीन जमानत।
7. धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन अग्रिम जमानत।

   और
8. धारा 439 दं.प्र.सं. के अधीन जमानत।

13. धारा 436 दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के बारे में

35. धारा 436 दं.प्र.सं. जमानतीय अपराधों में अभियुक्त के जमानत पर छोड़े जाने के बारे में है। जमानतीय अपराधों में जमानत अभियुक्त का अधिकार होता है, अतः प्रथम बार जमानत के मामले में जमानतीय अपराधों में न्यायिक मजिस्ट्रेट को अभियुक्त को जमानत पर रिहा करना ही है। जमानतीय मामलों में अभियुक्त के प्रथम बार उपस्थित होने पर जमानत दिया जाना आज्ञापक है। इसके लिए अभियुक्त को कोई आवेदन पेश करने की भी आवश्यकता नहीं होती है। अतः मजिस्ट्रेट को यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि अपराध जमानतीय है तो जमानत देना आज्ञापक है। मजिस्ट्रेट को कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है।

धारा 436 की उप-धारा 2 के अनुसार यदि अभियुक्त को प्रथम बार दी गई जमानत की शर्तों का वह उल्लंघन करता है तब उसका मामला वैसा ही माना जावेगा जैसे वह अजमानतीय अपराध हो।

धारा 436 दं.प्र.सं. में गिरफ्तारी की तारीख से एक सप्ताह के भीतर जमानत पेश करने में असमर्थ रहे व्यक्ति को इस धारा के प्रयोजन के लिये निर्धन व्यक्ति समझा जावेगा। ऐसे व्यक्ति को न्यायालय अपने विवेकाधिकार पर बंधपत्र पर रिहा कर सकती है।

जमानतीय मामलों में जमानत अभियुक्त का निरपेक्ष अधिकार है और इसमें न्यायालय को कोई विवेकाधिकार नहीं है। अभियुक्त यदि जमानत देने के लिए तैयार है तो उसे पुलिस द्वारा/न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा किया जायेगा। इस बारे में न्यायदृष्टांत ***रसिक लाल विरूद्ध किशोर, (2009) 4 एस.सी.सी. 446***, अवलोकनीय है।

14. धारा 436ए के बारे में

36. यह नवीन प्रावधान है जिसके अनुसार यदि कोई अभियुक्त उस अपराध के लिये निर्धारित कारावास की अधिकतम अवधि से आधे से अधिक अवधि तक अन्वेषण, जांच या विचारण में निरोध में रहा है, तो न्यायालय उसे जमानत पर रिहा कर देगी। अपराध मृत्यु दंड से दंडनीय नहीं होना चाहिये, साथ ही अभियोजन को सुनकर और कारण लेखबद्ध करते हुये उसे आगे भी निरोध में रखने का आदेश कर सकता है परंतु कोई भी अभियुक्त, किसी अपराध के लिये जितना अधिकतम दंड निर्धारित है, उससे अधिक अवधि के लिये निरूद्ध नहीं रखा जायेगा। साथ ही अभियुक्त की ओर से कोई विलंब कारित हुआ है तो उस अवधि को अपवर्जित कर दिया जायेगा।

इस प्रावधान का उद्देश्य यह है कि किसी भी व्यक्ति को उस अधिकतम अवधि से अधिक अभिरक्षा में नहीं रखा जाये जो उस अपराध के लिये उसे दंड के रूप में दी जा सकती है इसीलिये इस प्रावधान में आधे से अधिक अवधि होते ही जमानत पर छोड़े जाने के निर्देश हैं। अतः, सभी न्यायिक मजिस्ट्रेट को इस संबंध में सतर्क रहना चाहिये और जिन मामलों में अभियुक्त अभिरक्षा में है उनका शीघ्र निराकरण करना चाहिये।

इस प्रकार धारा 436ए दंप्रसं के अधीन आवेदन प्रस्तुत होने पर यदि अभियुक्त अपराध में निर्धारित दंड से आधी से अधिक अवधि अभिरक्षा में गुजार चुका है तो उसे जमानत देना आज्ञापक है सिवाय उन मामलों के जिसमें अभियुक्त स्वयं विलंब का दोषी हो या इस प्रावधान के परंतुक के अधीन न्यायालय की राय में उसे आधी अवधि से अधिक अवधि के लिए भी अभिरक्षा में रखा जाना मामले के तथ्य और परिस्थितियों में उचित है लेकिन यदि अभियुक्त अपराध में निर्धारित दंड की अधिकतम अवधि तक अभिरक्षा में रह चुका है, तब मजिस्ट्रेट को उसे जमानत पर रिहा करना होगा और उसे कोई विवेकाधिकार ऐसे मामले में प्राप्त नहीं होता है। ऐसे मामले में मजिस्ट्रेट को स्वतः ही जमानत का आदेश कर देना चाहिए, चाहे अभियुक्त जमानत पेश करे या न करे। मजिस्ट्रेट को निर्धारित दंड की अवधि पूर्ण होते ही अपना कर्तव्य अर्थात् जमानत का आदेश कर देना चाहिए।

DIRECTIONS RELATING TO UNDER-TRIAL PRISONERS *VIS-À-VIS* SECTION 436-A OF THE CODE OF CRIMINAL PROCEDURE, 1973 ISSUED BY THE SUPREME COURT IN VIJAY AGGARWAL V. UNION OF INDIA AND OTHERS, (W.P. (CRL) NO. 32/2013, DATED 5th SEPTEMBER, 2014)

③ Jurisdictional Magistrate/Chief judicial Magistrates/Sessions Judge shall hold one sitting in a week in each jail/prison for two months commencing from 1st October, 2014 for the purposes of effective implementation of Section 436-A of the Code of Criminal Procedure.

- In its sitting in jail, the above judicial officers shall identify the under-trial prisoners who have completed half period of the maximum period or maximum period of imprisonment provided for the said offence under the law and
- After complying with the procedure prescribed under Section 436-A pass an appropriate order in jail itself for release of such under-trial prisoners who fulfill the requirement of Section 436-A for their release immediately.
- Such jurisdictional Magistrate/Chief Judicial Magistrate/Sessions Judge shall submit the report of each of such sitting to the Registrar General of the High Court and
- At the end of two months, the Registrar General of each High Court shall submit the report to the Secretary General of this Court without any delay.
- To facilitate the compliance of the above order, we direct the jail Superintendent of each jail/prison to provide all necessary facilities for holding the Court sitting by the above judicial officers.
- A Copy of this Order shall be sent to the Registrar General of each High Court, who in turn will communicate the copy of the order to all Sessions Judges within his State for necessary compliance.

15. धारा 437 दं.प्र.सं. 1973 के बारे में

37. यदि किसी व्यक्ति पर अजमानतीय अपराध का अभियोग है या जिस पर ऐसा अपराध करने का संदेह है, उसे वारंट के बिना गिरफ्तार कर पेश किया जाता है तो उसे संबंधित मजिस्ट्रेट अपने विवेकाधिकार पर उसके आवेदन करने पर जमानत पर रिहा कर सकते हैं किन्तु-

1. यदि यह विश्वास करने के उचित आधार प्रतीत होते हैं कि उस व्यक्ति ने मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध किया है तो उसे जमानत पर नहीं छोड़ा जायेगा।
2. यदि संबंधित अपराध संज्ञेय अपराध है और ऐसा व्यक्ति मृत्यु, आजीवन कारावास या 7 वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिये पहले दोषसिद्ध किया गया है या तीन वर्ष या उससे अधिक के किन्तु 7 वर्ष से अनधिक कारावास से दंडनीय संज्ञेय अपराध के लिये दो या अधिक अवसरों पर पहले दोषसिद्ध किया गया है, उसे जमानत पर इस प्रकार नहीं छोड़ा जायेगा।

यदि संबंधित अभियुक्त कोई स्त्री या रोगी या शिथिलांग व्यक्ति है या 16 वर्ष से कम आयु का है, तो उसे उक्त दशा में भी जमानत पर छोड़ा जा सकता है।

धारा 437 दं.प्र.सं. न्यायिक मजिस्ट्रेट को एक विवेकाधिकार देती है जिसके तहत् वह किसी अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर सकती है। इस विवेकाधिकार का प्रयोग अत्यंत सावधानी से करना चाहिये। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समाज के हितों के बीच उचित तालमेल बिठाना चाहिये और एक सकारण आदेश देना चाहिये। आदेश संक्षिप्त में होना चाहिये।

जमानत के सामान्य सिद्धांत के बारे में आगे चर्चा की जायेगी जिन्हें मजिस्ट्रेट को ध्यान में रखना होता है।

16. धारा 437 (6) दं.प्र.सं. के तहत जमानत

38. धारा 437 (6) दं.प्र.सं. के तहत यदि मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय किसी मामले में साक्ष्य के लिए नियत प्रथम दिनांक से 60 दिन की अवधि के अंदर विचारण पूरा नहीं किया जाता है और अभियुक्त उस 60 दिन की पूरी अवधि में अभिरक्षा में रहा हो तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जायेगा जब तक कि मजिस्ट्रेट लेखबद्ध किये जाने वाले कारण से ऐसा करना उचित न समझता हो।

39. न्यायदृष्टांत ***दामोदर सिंह विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2005 (2) एम.पी.डब्ल्यू.एन 138,*** के अनुसार यह प्रावधान आज्ञापक या मेंडेटरी है लेकिन न्यायदृष्टांत ***देवराज उर्फ दिल्लू विरूद्ध स्टेट आफ मध्यप्रदेश, 2018 एस.सी.सी. आनलाइन एम.पी. 151, (डी.बी.), के अनुसार 437 (6)*** दं.प्र.सं. के अधीन मजिस्ट्रेट के लिए आवेदन पेश होने पर आदेश पारित करना आज्ञापक है, जमानत देना आज्ञापक नहीं है। मजिस्ट्रेट को यह पूरी शक्तियां हैं कि वह आरोप की प्रकृति, विलंब, अभियुक्त द्वारा कारित किया गया है या अभियोजन द्वारा, अभियुक्त का पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड और अन्य न्यायसंगत कारण पर विचार करते हुए जमानत खारिज कर सकता है। इस मामले में यह भी प्रतिपादित कियागयाहै कि उक्त ***दामोदर सिंह एवं रामकुमार उर्फ राजकुमार विरूद्ध स्टेट आॅफ एम.पी., 2000 (2) एम.पी.एल.जे. 43, राजेन्द्र विरूद्ध स्टेट आॅफ एम.पी., 2002 (5) एम.पी.एल.जे. 301,*** एक अच्छी विधि नहीं है। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***मनोज अग्रवाल विरूद्ध स्टेट आॅफ एम.पी., 2001 (1) एम.पी.एल.जे. 610 और आसिफ अर्फ नक्टा विरूद्ध स्टेट आॅफ एम.पी., 2016 आई.एल.आर. एम.पी. 2391,*** में प्रतिपादित विधि को इस खंडपीठ ने अनुमोदित या एप्रूव किया।

न्यायदृष्टांत ***सागर पाल विरूद्ध स्टेट आॅफ एम.पी., मिसलेनियस क्रिमिनल केस नंबर 17853/2018,*** आदेश दिनांक 12.07.18, के मामले में अभियुक्त एक अभ्यस्थ अपराधी था जिसके विरूद्ध कई दांडिक प्रकरण लंबित थे और 11 प्रकरण आबकारी अधिनियम के पंजीबद्ध थे। अतः उसका आवेदन धारा 437 (6) निरस्त किया गया।

न्यायदृष्टांत ***मोहन रजक विरूद्ध स्टेट आॅफ एम.पी., एम.सी.आर.सी. नंबर 13129/2017,*** आदेश दिनांक 28.08.17, में धारा 437 (6) दं.प्र.सं के आवेदन के निराकरण के समय ध्यान रखे जाने योग्य तथ्य बतलाये गए हैं जैसे अपराध की गंभीरता, अभियुक्त की भूमिका, अभियोजन के कई गवाह होना, अभियुक्त या सह-अभियुक्त की जांच, अनुसंधान या विचारण के दौरान किसी प्रक्रम पर फरार हो जाना, समाज पर अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने से पड़ने वाला प्रभाव, जमानत पर रिहा करने से अभियुक्त द्वारा साक्ष्य से छेड़-छाड़ करने की संभावना आदि कारकों पर विचार करना चाहिए।

इस प्रकार यदि अभियुक्त खुद ही विलंब का दोषी रहा हो, प्रकरण अत्यधिक गंभीर प्रकृति का हो, प्रकरण बहुत लंबा और पेचिदा हो, अभियुक्त का पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड हो, तब सकारण आदेश लिखते हुये आवेदन निरस्त किया जा सकता है।

न्यायदृष्टांत ***बाबू खां विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2018 लॉ सूट (एम.पी.) 1403,*** के अनुसार धारा 437 (6) दं.प्र.सं. के प्रावधान मजिस्ट्रेट के न्यायालय के अजमानतीय मामलों में लागू होते हैं। सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय प्रकरणों से इनका कोई संबंध नहीं है। ये प्रावधान आज्ञापक नहीं हैं।

40. न्यायदृष्टांत ***सुनील सक्सेना विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. (2011) एम.पी. 816,*** में अभियुक्त पर 25,05,793/- रूपये की बड़ी राशि के गबन का आरोप था। उस मामले में उसे इन प्रावधानों के तहत जमानत का पात्र नहीं माना गया।

41. ***अर्जुन साहू विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2008 सी.आर.एल.जे. 2770,*** के अनुसार अभियुक्त इन प्रावधानों के तहत जमानत का पात्र नहीं माना गया।

42. धारा 437 (6) दं.प्र.सं. 1973 के प्रावधान मध्यप्रदेश आबकारी अधिनियम, 1915 के मामलों पर भी लागू होते हैं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***राजेन्द्र विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2002 (4) एम.पी.एच.टी. 186*** एवं ***अर्जुन विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2010 लॉ सूट (एम.पी.) 880*** अवलोकनीय है।

43. न्यायदृष्टांत ***अर्जुन विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, 2011 (4) एमपीएचटी 137,*** में अभियुक्त का समान प्रकार के अपराध करने में अभ्यस्थ अपराधी होना धारा 437 (6) दं.प्र.सं का आवेदन निरस्त करने का एक वैध आधार माना गया है।

44. न्यायदृष्टांत ***प्रमोद कुमार विश्वकर्मा विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2018 लॉ सूट (एम.पी.) 718,*** के अनुसार साक्ष्य के लिये नियत प्रथम तिथि से 60 दिन का अवसान होने पर जमानत का मंजूर करना अहस्तांतरणीय अधिकार है जो अपवादों के अधीन है। जमानत मंजूर करना एक नियम है। मात्र बाध्यताकारी कारण होने पर ही जमानत खारिज की जा सकती है।

सामान्यतः यह प्रयास करना चाहिए कि जिन मामलों में अभियुक्त न्यायिक अभिरक्षा में है उन का त्वरित निराकरण हो और गंभीर मामलों में इस प्रावधान के तहत अभियुक्त को जमानत का लाभ देने से बचना चाहिए।

45. धारा 437 (6) दं.प्र.सं. का आवेदन प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट को यह देखना चाहिए कि साक्ष्य के लिए नियत प्रथम तिथि से 60 दिन में विचारण पूरा न होने में अभियुक्त की कोई भूमिका तो नहीं है अर्थात् अभियुक्त स्वयं विलंब का दोषी तो नहीं है। मामला कहीं इतना लंबा तो नहीं है कि किसी भी दशा में 60 दिन में विचारण पूरा होना संभव ही नहीं है जैसे छल के मामले में 50 से अधिक गवाह हैं या अभियुक्त समान प्रकार के अपराध करने का अभ्यस्थ अपराधी है, इन सब कारकों पर विचार करते हुए इस आज्ञापक प्रावधान में आदेश पारित करना चाहिए।

17. बाध्यताकारी जमानत या डिफॉल्ड बेल

46. यदि पुलिस 60 या 90 दिन की अवधि में अभियुक्त के विरूद्ध अंतिम प्रतिवेदन या अभियोग पत्र पेश नहीं करती है तो अभियुक्त को क्रमशः 61वें या 91वें दिन बाध्यताकारी जमानत का एक अधिकार उत्पन्न हो जाता है और ऐसी जमानत देते समय अपराध की गंभीरता या विधायिका द्वारा जमानत के बारे में लगाई गई कोई बाधा भी विचारणीय नहीं होती है और अभियुक्त बाध्यताकारी

जमानत या डिफॉल्ड बेल पाने का पात्र हो जाता है। यहां जमानत देना आज्ञापक होता है। मजिस्ट्रेट को कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं होता है।

अवधि की गणना करते समय कैलेण्डर सामने रखना चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई माह 31 दिन का या 28 दिन का या कभी-कभी 29 दिन का तो नहीं है और उस अनुसार दिनों की गणना करना चाहिए। इस जमानत में क्रमशः 61वें और 91वें दिन अभियुक्त को जमानत का आलोप्य अधिकार होता है। इसे डिफॉल्ड बेल भी कहते हैं। मजिस्ट्रेट को केवल सावधानीपूर्वक दिनों की गणना कर लेना चाहिए और 61वें या 91वें दिन अभियुक्त को उसके अधिकार की सूचना देते हुए जमानत का आदेश कर देना चाहिए।

यदि अपराध, मृत्यु, आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून या कम नहीं के कारावास से दंडनीय है तब न्यायिक अभिरक्षा कुल मिलाकर 90 दिन से अधिक की नहीं दी जा सकती है। यदि अपराध उक्त दंड के अलावा अन्य मामलों से संबंधित है तब कुल मिलाकर 60 दिन से अधिक की न्यायिक अभिरक्षा नहीं दी जा सकती है।

47. यदि उक्त 90 दिन या 60 दिन की अवधि पूर्ण होने के बाद अभियुक्त जमानत देने के लिये तैयार हो और जमानत दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जायेगा। इस जमानत में भी अध्याय 33 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के ही प्रावधान लागू होते हैं।

48. अवधि की गणना के बारे में बिंदु क्रमांक 16 से 18 अवलोकनीय हैं।

18. औपचारिक गिरफ्तारी या फॉरमल अरैस्ट

49. इस बारे में बिंदु क्रमांक 28 अवलोकनीय है।

50. यदि अभियुक्त अंतरिम या अस्थायी जमानत पर बीच में रहा हो तो उस अवधि को 60/90 दिन की गणना में से कम किया जायेगा जैसा कि न्यायदृष्टांत ***देवेन्द्र कुमार विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., (1991) 2 एम.पी.जे.आर. 338,*** में प्रतिपादित किया गया है।

51. कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि अभियुक्त स्वयं न्यायालय के समक्ष समर्पण करता है, इस बारे में बिंदु क्रमांक 29 अवलोकनीय है।

यदि 60/90 दिन की अवधि जिस दिन समाप्त हो रही हो उस दिन न्यायालय का अवकाश हो तब भी चार्ज शीट पेश की जाना चाहिये क्योंकि चार्ज शीट मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करनी होती है। अतः अवधि समाप्ति का दिन सामान्य अवकाश था इसका कोई लाभ अभियोजन को नहीं मिलेगा। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***अशोक शर्मा विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 1993 जे.एल.जे. 99,*** अवलोकनीय है।

अतः मजिस्ट्रेट को ऐसे मामलों में, अवकाश के दिन भी यदि रिमांड ड्यूटी में या मजिस्ट्रेट के निवास पर अभियोग पत्र पेश किया जाता है, तो उसे ले लेना चाहिए और उस पर प्रस्तुति का आवश्यक पृष्ठांकन लगाकर हस्ताक्षर और तारीख अंकित करना चाहिए और अभियोग पत्र अपने कॉन्फिडेंशियल बाक्स में रख लेना चाहिए जो आगामी कार्य दिवस में पंजीबद्ध किया जाता है। यदि मजिस्ट्रेट अभियोग पत्र लेने से इंकार कर देते हैं और न्यायालय में अभियोग पत्र पेश करने के पहले यदि अभियुक्त का

जमानत आवेदन आ जाता है तो इसका लाभ अभियुक्त को मिलता है। अतः ऐसी उपेक्षा से बचना चाहिए।

53. अभियोग पत्र की प्रतिलिपि अभियुक्त को 60/90 दिन के भीतर नहीं दी गई, इसका कोई लाभ अभियुक्त को नहीं मिलेगा क्योंकि धारा 167 (2)(ए) के तहत् 60/90 दिन के भीतर अभियोग पत्र पेश करना होता है। इसमें अभियोग पत्र की प्रतिलिपि देना आज्ञापक नहीं है जैसा कि न्यायदृष्टांत ***नीतू विरूद्ध स्टेट, 1994 (2) एम.पी.जे.आर. 3242,*** में प्रतिपादित किया गया है।

54. इसी तरह अभियोग पत्र के साथ विधि विज्ञान प्रयोग शाला की जांच रिपोर्ट नहीं लगी है तो इसका भी कोई लाभ अभियुक्त को नहीं मिलेगा। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***कनीराम विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 1991 (1) एम.पी.जे.आर. नोट 30,*** अवलोकनीय है।

19. आवेदन की आवश्यकता

55. न्यायदृष्टांत ***हितेन्द्र विष्णु ठाकुर विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 2623,*** में यह प्रतिपादित किया गया है कि अभियुक्त को 60/90 दिन की अवधि पूर्ण होने पर जमानत पर छोड़े जाने के लिये आवेदन देना होगा। इस तरह यह अभियुक्त का दायित्व है कि 60/90 दिन में अभियोग पत्र प्रस्तुत न होने पर उसे उत्पन्न हुये जमानत के अधिकार का प्रयोग करे।

56. लेकिन न्यायदृष्टांत ***राकेश कुमार पाउल विरूद्ध स्टेट आफ असम, 2018 सी.आर.एल.जे. 155,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अभियुक्त को बाध्यताकारी जमानत पाने के अधिकार की सूचना अवधि के अवसान होने के बाद देवे। इस मामले में यह प्रतिपादित किया गया है कि बाध्यताकारी जमानत प्राप्त करने के लिए प्रक्रिया में कोई स्ट्रेट-जैकेट फॉर्मूला नहीं बनाया जा सकता। अभियुक्त ने यदि धारा 167(2) दं.प्र.सं के तहत कोई आवेदन नहीं दिया है और वो मौखिक रूप से अनुरोध करता है तब भी उसे, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मामला होने के कारण, बाध्यताकारी जमानत का लाभ दिया जा सकता है। ऐसी स्वतंत्रता के मामले में तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए।

इस मामले के निर्णय चरण 44 में यह प्रतिपादित किया गया है कि यह न्यायालय का कर्तव्य एवं दायित्व है कि वह अभियुक्त को यह सूचित करे कि उसे बाध्यताकारी जमानत का अधिकार है।

20. अभियुक्त की उपस्थिति के बारे में

57. धारा 167 दण्ड प्रक्रिया संहिता में यह स्पष्ट प्रावधान है कि अभियुक्त को किसी भी प्रकार की अभिरक्षा में देने से पूर्व उसकी न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष भौतिक उपस्थिति आवश्यक है। कई बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं कि पुलिस सभी सर्वोत्तम प्रयासों के बाद भी अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित करने में असमर्थ रहती है जैसे अभियुक्त गंभीर बीमारी के कारण, चोटों के कारण, चलने फिरने में असमर्थ है या किसी अन्य अपरिहार्य परिस्थिति के कारण सारे संभावित प्रयासों के बावजूद अभियुक्त को पेश नहीं किया जा सकता है, वहां अभियुक्त की व्यक्तिगत रूप से उपस्थिति के बिना भी उसे अभिरक्षा में दिया जा सकता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***राजू विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 1990 सी.आर.एल.जे., एन.ओ.सी. 159 (डी.बी.), राजकुमार विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 1990 एम.पी. एल.जे. 289 (डी.बी.),*** अवलोकनीय है।

यदि प्रायोगिक रूप से ऐसा संभव हो तो संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट को संबंधित स्थान पर जहां अभियुक्त है वहां जाकर उसे सुनकर अभिरक्षा उस दशा में देना चाहिये जब संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट का यह मत हो कि अभियुक्त को सुने बिना अभिरक्षा में दिया जाना उचित नहीं है।

न्यायिक अभिरक्षा स्वीकार करते समय वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग सुविधा का लाभ लेना चाहिए जिससे जेल से न्यायालय तक अभियुक्तगण को अनावश्यक लाने ले जाने और सुरक्षा का ध्यान रखने जैसे तथ्यों से बचा जा सकता है।

अभियुक्त की अनुपस्थिति में उसे अभिरक्षा में दिया जाना अपवाद स्वरूप परिस्थितियों में किया जाना चाहिये।

21. एन.डी.पी.एस. एक्ट के बारे में

58. न्यायदृष्टांत ***यूनियन आफ इंडिया विरूद्ध थानेश्वरी, 1995 ए.आई.आर., एस.सी.डब्ल्यू. 2543*** एवं ***डॉ. विपिन एस. पांचाल विरूद्ध स्टेट आफ गुजरात, ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 2897,*** में यह प्रतिपादित किया गया है कि धारा 167 दं.प्र.सं. के प्रावधान इन मामलों पर भी लागू होंगे और धारा 37 एन.डी.पी.एस. एक्ट ने धारा 167 दं.प्र.सं. को एक्सक्लूड नहीं किया है।

59. न्यायदृष्टांत ***अन्नू उर्फ अनिल विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., (2008) 1 एम.पी.एच.टी. 286,*** में मीडियम क्वांटिटी के गांजे के मामले में 60 दिन के भीतर अभियोग पत्र पेश नहीं होने के आधार पर अभियुक्त को जमानत का अधिकारी पाया गया है लेकिन एनडीपीएस की धारा 36ए(4) के अनुसार धारा 167 की उपधारा 2 में जहां 90 दिन का संदर्भ आता है उसे एनडीपीएस की धारा 19, 24, 27ए और वाणिज्यिक मात्रा के अपराध के मामलों में 180 दिन पढ़ा जावे और लोक अभियोजक की रिपोर्ट पर विशेष न्यायालय इस अवधि को 1 वर्ष तक बढ़ा सकती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***संजय कुमार केडिया विरूद्ध इंटेलिजेंस आफिसर, एनसीबी, एआईआर 2010 एससी (सप्लीमेन्ट) 744,*** अवलोकनीय है।

60. मध्यप्रदेश आबकारी अधिनियम, 1915 की धारा 59ए के प्रावधान, धारा 49ए मध्यप्रदेश आबकारी अधिनियम के मामलों में ध्यान रखना चाहिये क्योंकि वहां निरोध की अवधि 120 दिन नियत की गई है।

22. 60/90 दिन के बाद अभियोग पत्र प्रस्तुत होने पर वैधानिक स्थिति

इस स्थिति को हमें विभिन्न दृष्टिकोण से देखना होगाः-

61. प्रथम स्थिति जिसमें 60/90 दिन की अवधि पूर्ण होते ही अभियुक्त द्वारा धारा 167 के अनुसार जमानत का लाभ ले लिया गया तब ऐसी जमानत 60/90 दिन की अवधि के पश्चात् अभियोग पत्र पेश होने के बाद भी बल में रहेगी। अभियोजन चाहे तो ऐसी जमानत को निरस्त करवाने के लिये आवश्यक कदम उठा सकता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***सिमरनजीत सिंह मान विरूद्ध स्टेट आफ बिहार, ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 149,*** अवलोकनीय है।

62. द्वितीय स्थिति 60/90 दिन की अवधि पूर्ण होने के बाद अभियोग पत्र प्रस्तुत होता है और उसके बाद अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने की प्रार्थना करता है तब उसे धारा 167 दं.प्र.सं के

प्रावधानों का लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि जैसे ही उसे जमानत का अधिकार उत्पन्न हुआ था, उसने उस अधिकार का प्रयोग नहीं किया। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***संजय दत्त विरूद्ध स्टेट, (1994) 5 एस.सी.सी. 410,*** की माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ का न्यायदृष्टांत अवलोकनीय है।

63. तृतीय स्थिति में 60/90 दिन की अवधि पूर्ण होते ही अभियुक्त ने जमानत पर रिहा करने का आवेदन लगा दिया, तब तक अभियोग पत्र पेश नहीं हुआ। आवेदन विचार के लिये रखा गया, उस बीच अभियोग पत्र पेश हो गया। ऐसी स्थिति में अभियुक्त को धारा 167 दं.प्र.सं. के प्रावधानों का लाभ मिलेगा और वह जमानत का हकदार है क्योंकि उसने जमानत पर छोड़े जाने का अधिकार उत्पन्न होते ही आवेदन कर दिया था। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***उदय मोहन आचार्य विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 1910,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ, अवलोकनीय है।

64. चतुर्थ स्थिति में 90 दिन के भीतर चार्जशीट पेश हो जाये लेकिन न्यायालय ने अभियोजन चलाने की स्वीकृति के अभाव में प्रसंज्ञान न लिया हो तब भी अभियुक्त को बाध्यताकारी जमानत का लाभ नहीं मिलता है। यह लाभ तभी मिलता है जब 90 या 60 दिन के भीतर अभियोग पत्र पेश न हुआ हो। इस बारे में न्यायदृष्टांत ***सुरेश कुमार भिकम चंद जैन विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, (2013) 3 एससीसी 77,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ, अवलोकनीय है।

65. पांचवी स्थिति के बारे में ***विपुल शीतल प्रसाद अग्रवाल विरूद्ध स्टेट आफ गुजरात, (2013) 1 एससीसी 197,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ के अनुसार, राज्य पुलिस ने 90 दिन के भीतर अनुसंधान करके अभियोग पत्र पेश कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने अनुसंधान असंतोषजनक पाया। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर नई प्रथम सूचना दर्ज करके अनुसंधान प्रारंभ किया गया। सी.बी.आई. 90 दिन में अभियोग पत्र पेश करने में असफल रही। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अभियुक्त बाध्यताकारी जमानत के हकदार नहीं हैं क्योंकि यह अग्रिम अनुसंधान या फरदर इन्वेस्टिगेशन का मामला है, नये अनुसंधान या फ्रैश या ताजा अनुसंधान का मामला नहीं है।

66. न्यायदृष्टांत ***अचपल उर्फ रामस्वरूप विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, एआईआर 2018 एससी 4647,*** के अनुसार 60 या 90 दिन की अवधि विधायिका द्वारा निर्धारित है। कोई भी न्यायालय प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अनुसंधान की उक्त प्रावधिक अवधि को नहीं बढ़ा सकता है।

67. न्यायदृष्टांत ***यूनियन आफ इंडिया विरूद्ध निराला यादव, एआईआर 2014 एससी 3036,*** के अनुसार धारा 167 (2)(ए) दं.प्र.सं. के तहत जमानत के कानूनी अधिकार के उपयोग के लिए अभियुक्त ने आवेदन दिया। यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अभिलेख से और अभियोजक से इस तथ्य को सत्यापित करे कि क्या समयावधि गुजर चुकी है और अभियोग पत्र प्रस्तुत किया गया है या नहीं और आवेदन का तुरंत निराकरण करे। ***प्रज्ञा सिंह ठाकुर विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, एआईआर 2011 एससी सप्लीमेंट 755,*** में प्रतिपादित विधि एक अच्छी विधि नहीं है।

68. न्यायदृष्टांत ***बाबू लाल विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2014 एम.पी. 2481,*** के मामले में अभियुक्तगण को धारा 399 और 402 भा.दं.सं. के लिये 18 फरवरी, 2013 को अभिरक्षा में लिया गया। अभियोग पत्र 22.4.2013 को 60 दिन व्यतीत हो जाने के बाद प्रस्तुत किया

गया था। अभियुक्त अभियोग पत्र प्रस्तुत होने के पहले धारा 167 (2) दं.प्र.सं. के अधीन वैधानिक जमानत का लाभ लेने के लिये आवेदन प्रस्तुत कर चुका था। विचारण न्यायालय ने उसका जमानत आवेदन स्वीकार किया। माननीय उच्च न्यायालय ने इसकी पुष्टि की क्योंकि अभियोग पत्र प्रस्तुत होने से पहले अभियुक्त धारा 167 (2) दं.प्र.सं का आवेदन प्रस्तुत कर चुका था।

69. न्यायदृष्टांत ***वाजिर खान विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2013 (2) एम.पी.एच.टी. 272,*** धारा 306 एवं 498ए भा.दं.सं. के मामले में 60 दिन व्यतीत होने के बाद अभियोग पत्र पेश न होने पर अभियुक्त को धारा 167 (2) दं.प्र.सं. के तहत जमानत का हकदार पाया गया था।

70. न्यायदृष्टांत ***सुन्दर विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2010 एम.पी. 1017,*** के अनुसार जहां 10 वर्ष तक का कारावास हो, वहां 60 दिन की अवधि विचार में ली जायेगी। अपराध आजीवन कारावास और 10 वर्ष से कम न होने वाले कारावास से संबंधित हो अर्थात् अपराध में स्पष्ट अवधि 10 वर्ष या इससे अधिक की हो तभी 90 दिन मानी जायेगी। इस मामले में लूट का अपराध था जो राजमार्ग पर सूर्यास्त के पश्चात् और सूर्योदय के पूर्व नहीं किया गया था। अवधि 60 दिन मानी गयी।

23. कारावास की अवधि के बारे में

71. यदि अपराध मृत्यु या आजीवन कारावास या 10 वर्ष से अन्यून के कारावास से दंडनीय है, उस दशा में 90 दिन की अवधि की गणना और इसे विचार में लेना आसान होता है, अन्य मामलों में कुछ कठिनाई होती है।

72. न्यायदृष्टांत ***भूपेन्द्र सिंह विरूद्ध जनरेल सिंह, (2006) 6 एस.सी.सी. 277,*** में धारा 304बी भा.दं.सं. में 90 दिन की अवधि तक की अभिरक्षा मानी जाने की विधि प्रतिपादित की गई है क्योंकि धारा 304बी भा.दं.सं. में आजीवन कारावास का दण्ड भी है।

24. अभियुक्त का समर्पण या सरेन्डर करना

73. कभी कभी अभियुक्त अनुसंधान के दौरान पुलिस द्वारा गिरफ्तार किये जाने के बजाय स्वयं न्यायालय में समर्पण करता है। ऐसी दशा में उसकी पहचान अवश्य सुनिश्चित कराना चाहिए। जो व्यक्ति न्यायालय के समक्ष समर्पण कर रहा है उसकी पहचान किसने की है उसका पूरा नाम, पता और अन्य विवरण लिखना चाहिये। अभियुक्त का फोटोग्राफ भी लगवाना चाहिए। साथ ही उसके आवेदन की एक प्रतिलिपि संबंधित आरक्षी केन्द्र में भेज कर वहां से रिपोर्ट बुलवाना चाहिए और यह भी पूछा जाना चाहिए कि संबंधित अभियुक्त की कोई आवश्यकता है और यदि है, तो आवेदन करे।

न्यायालय में संबंधित थाने से प्राप्त प्रथम सूचना प्रतिवेदन की प्रतिलिपि से भी अपराध पंजीबद्ध होने के तथ्य की जानकारी लग सकती है।

74. यदि संभव हो तो उसी दिन पुलिस प्रतिवेदन मय डायरी बुलवा लेना चाहिए, अन्यथा अगले कार्यदिवस की तिथि रखना चाहिए और तब तक अभियुक्त को अभिरक्षा में लेकर जेल भेजने के बजाय अगले दिन उपस्थित होने के निर्देश देना चाहिए।

केस डायरी और प्रतिवेदन प्राप्त होने पर अभियुक्त को अभिरक्षा में लेकर पुलिस ने क्या मांग की है अर्थात न्यायिक अभिरक्षा चाही है या पुलिस अभिरक्षा चाही है, इस पर विचार किया जाता है।

75. कभी-कभी लंबित मामलों में भी अभियुक्त बीच में समर्पण करते हैं। उन मामलों में अभिलेख बुलवाकर अभियुक्त को पुनः जमानत पर छोड़ना या जमानत निरस्त करने के बारे में विधि अनुसार विचार किया जा सकता है।

76. लंबित मामलों में अभियुक्त के समर्पण के समय यह देखना चाहिए कि जिस दिनांक को अभियुक्त अनुपस्थित रहा उस दिन उसकी अनुपस्थिति के कारण मामले की कार्यवाही पर क्या प्रभाव पड़ा, जैसे अभियोजन साक्षीगण उपस्थित थे और उनके कथन नहीं हो पाये या अभियुक्त परिक्षण नहीं हो पाया या आरोप नहीं लग पाया या कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अभियुक्त की स्थिति जैसे कृषक, मजदूर, चालक, शासकीय सेवक, व्यापारी है। कथित दिनांक को उसकी अनुपस्थिति का जो कारण बतलाया गया है उसकी युक्तियुक्तता पर भी विचार करना चाहिए और यदि उचित मामला हो तो अभियुक्त को जमानत का लाभ दे देना चाहिए। उसके मुचलके से कुछ राशि जप्त कर सकते हैं।

77. ऐसा कोई नियम नहीं बनाना चाहिए कि जो अभियुक्त एक बार अनुपस्थित हो गया है, उसका आवेदन उसी दिन नहीं सुनना है या उसे कुछ समय न्यायिक अभिरक्षा में रखना है। ऐसा करने से कई अनुपस्थित अभियुक्त अपनी अनुपस्थिति को टालते रहेंगे। एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

25. सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले

78. यह मजिस्ट्रेट का विवेकाधिकार है कि वे सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले में भी जमानत ले सकते हैं लेकिन सामान्यतः ऐसे मामलों में अभियुक्त को सेशन न्यायालय में जाने के लिए निर्देशित करना चाहिए।

26. अनुसंधान के दौरान अभियुक्त की न्यायालय में जमानत के बाद उपस्थिति

79. जब अभियुक्त जमानत पर रिहा कर दिया जाता है और जब तक अभियोग पत्र पेश नहीं होता तब तक वह अनुसंधान लंबित रहने के दौरान न्यायालय में उपस्थित रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है बल्कि ऐसे मामले में अभियोग पत्र पेश हो जाने पर अभियुक्त को सूचना पत्र देकर बुलवाना चाहिए। इस संबंध में न्यायादृष्टांत ***फ्री लिगल एड कमेटी जमशेदपुर विरूद्ध स्टेट आफ बिहार, ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 1463,*** अवलोकनीय है।

सामान्य परिपाटी में अभियुक्त रिमांड पेपर में उपस्थित होता रहता है लेकिन यदि अभियुक्त अनुपस्थित हो जाए तो उसके विरूद्ध वांरट जारी नहीं करना चाहिए बल्कि अभियोग पत्र पेश होने पर अनुसंधान अधिकारी द्वारा सूचना पत्र देकर या न्यायालय द्वारा सूचना पत्र देकर उसे उपस्थित करवाना चाहिए।

27. 437ए दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के बारे में

80. इस संशोधित प्रावधान के अनुसार विचारण की समाप्ति के पूर्व तथा अपील के निस्तारण के पूर्व विचारण न्यायालय या अपील न्यायालय अभियुक्त से अपेक्षा करेगा कि वह इस आशय का जमानत और बंधपत्र पेश करे कि वरिष्ठ न्यायालय में यदि संबंधित न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध अपील की गई या याचिका लगाई गई तो उसमें नोटिस जारी होने पर अभियुक्त उपस्थित रहेगा। ऐसी जमानत 6 माह तक प्रवृत्त रहने के प्रावधान हैं।

प्रायः दोषमुक्ति के मामले में कठिनाई आती है और ऐसे मामले में आदेश करने पर भी जमानत प्रस्तुत न होने पर कठिनाई आती है। प्रायोगिक रूप से अभियुक्त परीक्षण के दिन धारा 437ए दं.प्र.सं. के तहत् जमानत प्रस्तुत करने के निर्देश दिये जा सकते हैं और इन प्रावधानों का पालन कराने का प्रयास किया जा सकता है।

28. जमानत आदेश में लगाई जाने वाली शर्तें

81. जमानत आदेश में सामान्यतः निम्न शर्तें अधिरोपित की जाती हैं:-

1. अभियुक्त प्रकरण में नियमित उपस्थिति देगा।
2. गवाहों को प्रभावित नहीं करेगा।
3. अपराध की पुनरावृत्ति नहीं करेगा।
4. अन्य कोई शर्त जो न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार लगाना उचित समझे वह भी लगाई जा सकती है।

82. जमानत आदेश में ऐसी शर्त नहीं लगाई जा सकती कि अभियुक्त परिवादी को भरणपोषण अदा करेगा। न्यायदृष्टांत ***मुनीश भसीन विरूद्ध स्टेट, (2009) 4 एस.सी.सी. 45,*** अवलोकनीय है। इस न्यायदृष्टांत में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी प्रतिपादित किया है कि ऐसी शर्तें, जो अग्रिम जमानत के उद्देश्य को ही विफल कर देती हैं, नहीं लगाना चाहिये। साथ ही कठोर, दूभर और अतिरंजीत या एक्ससेसिव शर्तें नहीं लगाना चाहिये।

29. धारा 439 दं.प्र.सं में जमानत

83. धारा 439 दं.प्र.सं. इस प्रकार है:- जमानत के बारे में उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की विशेष शक्तियां:-

1. उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय यह निदेश दे सकता है कि -
   (क) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और जो अभिरक्षा में है, जमानत पर छोड़ दिया जाए और यदि अपराध, धारा 437 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट प्रकार का है, तो वह ऐसी कोई शर्त, जिसे वह उस उपधारा में वर्णित प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे, अधिरोपित कर सकता है।
   (ख) किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने के समय मजिस्ट्रेट द्वारा अधिरोपित कोई शर्त अपास्त या उपांतरित कर दी जाए,

परंतु उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति की, जो ऐसे अपराध का अभियुक्त है जो अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, या जो यद्यपि इस प्रकार विचारणीय नहीं है, आजीवन कारावास से दण्डनीय है, जमानत लेने के पूर्व जमानत के लिए आवेदन की सूचना लोक अभियोजक को उस दशा के सिवाय देगा जब उसकी, ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जायेंगे यह राय है कि ऐसी सूचना देना साध्य नहीं है।

2. उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे इस अध्याय के अधीन जमानत पर छोड़ा जा चुका है, गिरफ्तार करने का निर्देश दे सकता है और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है।

30. अभियुक्त का अभिरक्षा में होनाः-

84. धारा 439 दं.प्र.सं. के आवेदन के प्रचलनशील होने के लिये अभियुक्त का अभिरक्षा में होना आवश्यक है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***बामन नारायण विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, (2009) 2 एस.सी.सी. 281,*** अवलोकनीय है।

85. धारा 437 दं.प्र.सं. का आवेदन प्रचलनशील होने के लिये भी अभियुक्त का अभिरक्षा में होना आवश्यक है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ हरियाणा विरूद्ध दिनेश, (2008) 3 एस.सी.सी. 222,*** अवलोकनीय है।

इस प्रकार जब कभी धारा 437 या 439 दं.प्र.सं. के तहत जमानत के आवेदन पर विचार किया जावे तब यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि अभियुक्त अभिरक्षा में है।

31. जमानत आवेदन पत्र के प्रथम या पश्चातवर्ती होने के बारे में शपथ-पत्र

86. प्रत्येक जमानत आवेदन पत्र के साथ आवेदक या उसकी ओर से किसी सक्षम व्यक्ति का एक शपथ-पत्र संलग्न होना चाहिए जिसमें यह तथ्य स्पष्ट रूप से उल्लेखित हो कि जमानत आवेदन पत्र प्रथम जमानत आवेदन पत्र है या द्वितीय जमानत आवेदन पत्र है या तृतीय जमानत आवेदन पत्र है। यह तथ्य अग्रिम जमानत आवेदन पत्र पर भी लागू होते हैं।

प्रत्येक न्यायाधीश का यह आज्ञापक कर्तव्य है कि वह आदेश के प्रारंभ में ही इन तथ्यों का उल्लेख कर दे कि आवेदक/अभियुक्त के विद्वान अभिभाषक ने प्रकट किया कि आवेदक/अभियुक्त का यह प्रथम जमानत आवेदन पत्र है या द्वितीय जमानत आवेदन पत्र है या तृतीय जमानत आवेदन पत्र है और इसके समर्थन में आदेवक/अभियुक्त का स्वयं का या उसके भाई/पति/पिता का शपथ पत्र संलग्न करना भी बतलाया है। अतः आवेदक/अभियुक्त के विद्वान अभिभाषक के प्रगटन और उक्त शपथ पत्र के आधार पर आवेदक का यह प्रथम या द्वितीय या तृतीय जमानत आवेदन पत्र पाता हूं।

कई बार अभियुक्त/आवेदक की ओर से इस तथ्य को छुपा लिया जाता है कि आवेदक का यह कौन सा जमानत आवेदन पत्र है, ऐसे समय में उक्त तथ्य लिख देने से और उक्त शपथ पत्र का तथ्य लिख देने से न्यायाधीश की ओर से स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

मेरा यह भी विनम्र आग्रह है कि न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट को केस डायरी को थोड़ा सा ध्यानपूर्वक देख लेना चाहिए कि जमानत आवेदन पत्र की प्रतिलिपि या उसमें पारित आदेश की प्रतिलिपि केस डायरी में संलग्न तो नहीं है। इस बारे में न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट को सावधान रहना चाहिए।

32. केस डायरी/अभिलेख में कौन से तथ्यों पर ध्यान देवें

87. कई बार न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट के मन में यह तथ्य भी रहते हैं कि डायरी बहुत बड़ी रहती है और उसमें कई दस्तावेज लगे रहते हैं और उसमें से क्या-क्या पढ़ें, क्या-क्या देखें? मेरा विनम्र आग्रह है कि न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट को सबसे पहले यदि कोई लिखित रिपोर्ट हो तो उसे या देहाती नालिसी हो तो उसे या प्रथम सूचना प्रतिवेदन को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए क्योंकि इन तीनों में से किसी एक दस्तावेज के आधार पर कार्यवाही प्रारंभ होती है। अतः इन तीनों दस्तावेजों को पढ़ने से कहानी या घटना की शुरूआत समझी जा सकती है।

संबंधित अभियुक्त से यदि कोई जप्ती हुई हो तो उसे ध्यान से देखना चाहिए।

प्रत्येक न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट को पुलिस द्वारा दिये गये प्रतिवेदन को ध्यान से पढ़ लेना चाहिए क्योंकि कई बार उस प्रतिवेदन में अभियुक्त के आपराधिक इतिहास, अपराध में भूमिका, आवेदन प्रथम जमानत आवेदन पत्र है या द्वितीय, उस मामले में और किसी सहअभियुक्त का जमानत आवेदन स्वीकार या अस्वीकार तो नहीं हुआ है, इस बारे में तथ्य मिल जाते हैं जो हमें जमानत आवेदन के निराकरण के समय सहायक होते हैं।

33. जमानत आवेदन के निराकरण के लिए विचारणीय तथ्य

88. जमानत आवेदन पर विचार करते समय सामान्यतः कुछ तथ्यों या कारकों पर विचार करना चाहिए।

न्यायदृष्टांत ***प्रशांत कुमार सरकार विरूद्ध आशीष चटर्जी, (2010) 14 एस.सी.सी. 496,*** में जमानत आवेदन पर विचार करते समय निम्न कारक ध्यान में रखना आवश्यक बतलाया गया है:-

1. क्या प्रथम दृष्ट्या यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है।
2. अपराध की प्रकृति और गंभीरता।
3. दोषसिद्धि की दशा में दिये जा सकने वाले दण्ड की गंभीरता।
4. यदि अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा गया तो उसके फरार होने का खतरा।
5. अभियुक्त का चरित्र, व्यवहार, उसकी स्थिति, साधन।
6. अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना।
7. गवाहों को प्रभावित करने की युक्तियुक्त संभावना।
8. जमानत देने से न्याय के खतरे की आशंका।

उक्त सिद्धांतों को न्यायदृष्टांत ***नीरू यादव विरूद्ध स्टेट आफ उत्तरप्रदेश, 2015 सी.आर.एल.आर. एससी 1084,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः बतलाये हैं एवं न्यायदृष्टांत ***चमनलाल***

विरूद्ध स्टेट आफ यूपी, (2004) 7 एससीसी 525, रामगोविंद उपाध्याय विरूद्ध सुदर्शन सिंह, (2002) 3 एससीसी 598, को भी विचार में लिया गया है।

नवीनतम न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ उड़ीसा विरूद्ध महिमान्दा मिश्रा, एआईआर 2019 एससी 302,*** निर्णय चरण 12 में जमानत के समय विचार में लिये जाने वाले उक्त कारकों को पुनः बतलाया गया है।

34. विचारण में विलंब एवं निरोध की अवधि

89. न्यायदृष्टांत ***सुरेन्द्र सिंह विरूद्ध स्टेट आफ पंजाब, (2005) 7 एस.सी.सी. 87,*** के अनुसार केवल विचारण में विलंब के आधार पर जमानत नहीं दी जा सकती। शीघ्र विचारण अभियुक्त का अधिकार है लेकिन जमानत के मामले में केवल निरोध की अवधि ही एक मात्र तथ्य नहीं होती। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***गोबरभाई नारायणभाई विरूद्ध स्टेट आफ गुजरात, (2008) 3 एस.सी.सी. 775***, भी अवलोकनीय है।

90. उक्त न्यायदृष्टांत ***गोबर भाई नारायण भाई विरूद्ध स्टेट आफ गुजरात, 2008 (3) एस.सी.सी. 775,*** के अनुसार गंभीर हत्या के अपराध में यह जमानत के लिए मानने योग्य आधार नहीं हो सकता कि अभियुक्त अभिरक्षा में है और विचारण शुरू होने में अभी समय लगेगा।

91. न्यायदृष्टांत ***राजेश रंजन यादव विरूद्ध सी.बी.आई., (2007) 1 एस.सी.सी. 70,*** के अनुसार अभियुक्त का लंबे समय से अभिरक्षा में होना और इस कारण अपना बचाव न कर पाना जमानत स्वीकार करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है।

92. न्यायदृष्टांत ***दीपक सुभाषचंद्र मेहता विरूद्ध सी.बी.आई., ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 949,*** में यह कहा गया है कि केवल विचारण में विलंब होना एक नियम के रूप में जमानत देने का आधार नहीं हो सकता। इस नियम को सभी मामलों में यांत्रिक तरीके से लागू नहीं करना चाहिए।

93. न्यायदृष्टांत ***चंद्रशेखर प्रसाद विरूद्ध स्टेट आफ बिहार, (2016) 9 एससीसी 443,*** के अनुसार अभिरक्षा की अवधि व विचारण में प्रगति न होने के आधार पर जमानत की मांग की जाती है तब न्यायालय को प्रत्येक मामले के अन्य तथ्य व परिस्थितियां भी देखनी होंगी। अभियुक्त ने गवाह की हत्या उसके कथन होने के एक दिन पहले की थी ऐसे अभियोग थे। जमानत निरस्त की गई।

94. न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ बिहार विरूद्ध अमित कुमार, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 2487,*** के मामले में उत्तर पुस्तिकाओं में हेर-फेर एवं परीक्षा प्रणाली में हस्तक्षेप का अभियोग था। 2.57 करोड़ रूपये की संपत्ति संबंधी दस्तावेज, 20 लाख रूपये नगद, भारी मात्रा में छात्रों की उत्तर पुस्तिकायें, स्टांप आदि अभियुक्त से बरामद हुये। उस पर बड़े पैमाने पर आर्थिक अपराधों के आरोप थे। इस मामले में प्रतिपादित किया गया कि ऐसे गंभीर अपराध के मामलों में जेल की लंबी अवधि न्यायालय के लिये चिंता का विषय नहीं होना चाहिये।

95. न्यायदृष्टांत ***विनोद भंडारी (डॉ.) विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, आईएलआर 2015 एमपी 1625 (एसी सी),*** के मामले में भ्रष्ट साधनों से चिकित्सा महाविद्यालयों में प्रवेश का अपराध था। ये अपराध समाज के ताने-बाने पर गंभीर विपरीत प्रभाव डालते हैं। भ्रष्ट साधनों द्वारा अपात्र

उम्मीदवारों का चिकित्सा पाठ्यक्रम में बड़ी संख्या में अवैध प्रवेश के अपराध अत्यधिक महत्व के हैं। ये अपराध चिकित्सा व्यवसाय की प्रतिबद्धता पर लोगों का विश्वास कम करते हैं। भ्रष्ट साधनों द्वारा अयोग्य उम्मीदवारों का चिकित्सा पाठ्यक्रम में प्रवेश होता है तो यह न केवल समाज को प्रतिभाशाली व्यक्ति द्वारा इलाज करने से वंचित करेगा बल्कि मरीज ऐसे व्यक्ति से ईलाज करायेंगे जो अपात्र और भ्रष्ट हैं, जिन पर उनका विश्वास नहीं होगा। अपराध गंभीर प्रकृति का है लेकिन अभियुक्त 1 वर्ष से अभिरक्षा में है इस कारण विचारण न्यायालय शीघ्र विचारण सुनिश्चित करे, ऐसे निर्देश देते हुये जमानत खारिज की गई।

35. धारा 164 दं.प्र.सं. के कथन में विरोधाभास

96. न्यायदृष्टांत ***सचिन विरूद्ध स्टेट आफ एच.पी., 2015 सी.आर.एल.जे. एन.ओ.सी. 157 एच.पी.,*** के अनुसार लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 6 और 17 के मामले में दो अभियोक्त्रियों के धारा 164 दं.प्र.सं. के कथनों में घटना के स्थान के बारे में विरोधाभास थे। यह प्रतिपादित किया गया कि इन कथनों को साक्षीगण के कथनों की पुष्टि या खण्डन के उद्देश्य से विचारण के समय उपयोग में लाया जा सकता है। धारा 439 दं.प्र.सं. का आवेदन खारिज किया गया। कुल मिलाकर जमानत के प्रक्रम पर यह तथ्य नहीं देखा जा सकता।

36. क्या साक्ष्य और दस्तावेजों का विस्तृत परीक्षण आवश्यक है?

97. न्यायदृष्टांत ***चीमन लाल विरूद्ध स्टेट आफ यू.पी., (2004) 7 एस.सी.सी. 525,*** के अनुसार साक्ष्य और दस्तावेजों का विस्तृत परीक्षण आवश्यक नहीं है लेकिन निष्कर्ष पर पहुंचने के कारण लिखना चाहिये। न्यायदृष्टांत ***अजय कुमार ष्शर्मा विरूद्ध स्टेट आफ यू.पी., (2005) 7 एस.सी.सी. 507,*** भी अवलोकनीय है जो तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ का न्यायदृष्टांत है। न्यायदृष्टांत ***रंजीत सिंह बी. शर्मा विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, (2005) 5 एस.सी.सी. 294*** तथा ***जयेन्द्र विरूद्ध स्टेट आफ तमिलनाडू, (2005) 2 एस.सी.सी. 13,*** भी अवलोकनीय हैं जिनमें जमानत के समय विचार योग्य तथ्यों को स्पष्ट किया गया है।

98. न्यायदृष्टांत ***लोकेश सिंह विरूद्ध स्टेट आफ यू.पी., ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 94,*** में यह प्रतिपादित किया गया है कि जमानत आदेश सकारण होना चाहिये। पक्षकारों द्वारा उठाये बिन्दुओं पर निश्चित निष्कर्ष अपेक्षित नहीं होता है। साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है, ऐसा मत नहीं देना चाहिये।

99. न्यायदृष्टांत ***मंसब अली विरूद्ध इरमान, (2003) 1 एस.सी.सी. 632,*** के अनुसार जमानत के संक्षिप्त कारण देना चाहिये।

100. न्यायदृष्टांत ***अफजल विरूद्ध स्टेट आफ गुजरात, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 2111,*** के अनुसार गुणदोष को छूने वाले विस्तृत कारण नहीं देना चाहिये।

101. न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ उड़ीसा विरूद्ध महिमान्दा मिश्रा, ए.आई.आर. 2019 एस.सी. 302,*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया है कि धारा 439 दं.प्र.सं के आवेदन के निराकरण के समय मामले की गहराई में नहीं जाना चाहिये, केवल यह देखना चाहिए

कि अभियुक्त के विरूद्ध प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***अनिल कुमार यादव विरूद्ध स्टेट, एनसीटी देहली, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5398,*** को अनुसरित किया गया। इस मामले में अभियुक्त एक शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति था जिसका पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड भी था। गवाहों को प्रभावित करने की स्थिति में था। उसके फरार होने की संभावना भी थी।

102. न्यायदृष्टांत ***टीवीएस महेश्वर राव विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, आईएलआर 2018 एमपी 1012,*** में न्यायदृष्टांत दाताराम सिंह (उपरोक्त) को विचार में लेते हुये जमानत का लाभ दिया गया।

37. पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पत्रः-

103. यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि प्रथम जमानत आवेदन पत्र जिस मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश द्वारा सुना या निराकृत किया गया हो पश्चातवर्ती सभी जमानत आवेदन पत्र उस अभियुक्त के उसी मजिस्ट्रेट /न्यायाधीश के समक्ष रखे जाने चाहिए। अतः जमानत आवेदन के निराकरण के समय यह भी ध्यान रखें कि जमानत आवेदन पत्र प्रथम आवेदन है या पश्चात्वर्ती आवेदन है।

यह नियम मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अभियोग पत्र पेश होने और सत्र प्रकरणों में मामला संबंधित अपर सत्र न्यायाधीश को सत्र न्यायाधीश के आदेशानुसार प्राप्त होने तक लागू होता है। उसके बाद सारे जमानत आवेदन पत्र उसी मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश द्वारा सुने और निराकृत किए जायेंगे जिनके न्यायालय में अभियोग पत्र पेश हो चुका है या प्रकरण मेड ओवर होकर प्राप्त हो चुका है।

न्यायदृष्टांत ***शाहजाद हसन खान विरूद्ध इश्तयाक हसन खान, ए.आई.आर. 1987एस.सी. 1613,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि पश्चातवर्ती सभी जमानत आवेदन पत्र उन्हीं मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश के समक्ष रखे जाने चाहिए जिन्होंने प्रथम जमानत पत्र सुना और निराकृत किया था।

पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पत्र की दशा में यह तथ्य भी ध्यान रखना चाहिए कि पूर्व का जमानत पत्र किन कारणों से निरस्त किया गया था और क्या परिस्थितियों में कोई सारवान् परिवर्तन हुआ है या नहीं ? यदि परिस्थितियों में कोई सारवान परिवर्तन नहीं हुआ हो तो सामान्यतः पश्चातवर्ती जमानत पत्र निरस्त किया जाना चाहिए और यदि स्वीकार किया जा रहा है तो एक स्पष्ट और सकारण आदेश लिखना चाहिए। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***अखिलेश कुमार सिंह विरूद्ध स्टेट आफ उत्तर प्रदेश, (2008) 4 एस.सी.सी. 449,*** अवलोकनीय है।

104. यह नियम अभियोग पत्र प्रस्तुत होने तक या सत्र विचारणीय मामले में मामला संबंधित अपर सत्र न्यायाधीश को माननीय सत्र न्यायाधीश महोदय के आदेशानुसार प्राप्त होने तक लागू होता है। एक बार अभियोग पत्र पेश हो जाने या मामला अपर सत्र न्यायाधीश के न्यायालय में प्राप्त हो जाने के बाद संबंधित मजिस्ट्रेट या अपर सत्र न्यायाधीश को सभी जमानत आवेदन सुनना होता है।

38. परिस्थितियों में परिवर्तनः-

105. यदि किसी मामले में एक सह-अभियुक्त की जमानत माननीय उच्च न्यायालय ने ले ली है या वरिष्ठ न्यायालय ने ले ली है, तब समान मामले वाला सह-अभियुक्त समानता के सिद्धान्त के

आधार पर जमानत का अधिकारी हो जाता है। यह अर्थात वरिष्ठ न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त की जमानत लेना परिस्थितियों में परिवर्तन माना जा सकता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***मनोहर विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2007 एम.पी. 837*** एवं ***बद्री निहाले विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2006 (1) एम.पी.एल.जे. 166*** अवलोनीय है।

106. कुछ गवाहों ने अभियोजन का समर्थन नहीं किया है, इसे जमानत के लिए परिस्थितियों में परिर्वतन नहीं माना गया है। न्यायादृष्टांत ***नारायण घोष विरूद्ध स्टेट आफ उड़ीसा, ए.आई.आर 2008 एस.सी. 1159,*** अवलोकनीय है।

107. पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पत्र में न्यायालय को उन आधारों पर भी विचार करना होता है जिन पर उसने पूर्व आवेदन निरस्त किया था। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***कल्याण चंद्र सरकार विरूद्ध राजेश, (2004) 7 एस.सी.सी. 528 एवं रामगोविंद उपाध्याय विरूद्ध सुदर्शन सिंह, (2002) 3 एस.सी.सी. 598,*** अवलोकनीय है।

108. परिस्थितियों मे परिर्वतन के बिना यदि पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पत्र स्वीकार किया जाता है तो यह पूर्व के आदेश का रिव्यू माना जायेगा जो विधि में अनुमत नहीं है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***हरि सिंह विरूद्ध हरभजन सिंह, (2001) 1 एस.सी.सी. 169,*** अवलोकनीय है।

109. न्यायदृष्टांत ***मुन्ना सिंह तोमर विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 1990 सी.आर.एल.जे.49,*** के अनुसार यदि जमानत आवेदन पत्र बल नहीं देने के कारण या वापस ले लिये जाने के कारण निरस्त हुआ है तब भी पश्चातवर्ती जमानत आवेदन भी उसी न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट के सामने रखा जायेगा जिन्होंने प्रथम आवेदन पत्र सुना और निराकृत किया।

110. पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पत्र में पूर्व के जमानत आवेदन पत्र के विवरण और वे विवरण किस व्यक्ति ने दिये हैं उसका नाम अंकित होना चाहिये और यदि ऐसा नहीं किया जाता है तब आवेदक का ध्यान न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ एम.पी. विरूद्ध आर.पी. गुप्ता, 2000 (1) एम.पी.जे.आर. 185,*** की ओर दिलवाना चाहिये।

111. न्यायदृष्टांत ***अखिलेश कुमार सिंह विरूद्ध स्टेट आफ यू.पी., (2008) 4 एस.सी.सी. 449,*** के मामले में प्रथम जमानत आवेदन पत्र निरस्त होने के 19 दिन बाद द्वितीय जमानत आवेदन पत्र परिस्थितियों में किसी परिवर्तन के बिना स्वीकार किया गया। जो कारण द्वितीय जमानत आवेदन पत्र में बतलाये गये थे वे ऐसे थे जो प्रथम जमानत आवेदन पत्र में भी बतलाये जा सकते थे। इस प्रकार जमानत स्वीकार करना स्थापित सिद्धांतों के विपरीत पाया गया।

112. न्यायदृष्टांत ***वीरूपाक्षा गोड़ा विरूद्ध स्टेट आफ कर्नाटक, (2017) 5 एस.सी.सी. 406,*** निर्णय चरण 13 के अनुसार अभियोग पत्र पेश होना किसी भी दशा में अभियोजन के अभियोगों को कम नहीं करता। विचारण न्यायालय ने अभियोग पत्र पेश होने को परिस्थिति में परिवर्तन माना था जिसे उच्च न्यायालय ने उचित नहीं पाया। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जमानत आवेदन अस्वीकार कर दिया था, उसके बाद सत्र न्यायालय द्वारा जमानत स्वीकार की गई। इसे सर्वथा अनुचित माना गया।

113. न्यायदृष्टांत ***सतीश लोधी विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, आईएलआर 2012 एमपी 632,*** के अनुसार उच्च न्यायालय से जमानत निरस्त हो जाने के बाद अधीनस्थ न्यायालय को जमानत स्वीकार नहीं करना चाहिये। यह न्यायिक अनुशासन को प्रभावित करता है।

39. समानता का सिद्धांत

114. यदि किसी एक मामले में एक अभियुक्त को वरिष्ठ न्यायालय में जमानत का लाभ दे दिया गया है तब समान मामलों में सहअभियुक्त समानता के सिद्धांत का लाभ या पैरिटी का लाभ पाने का पात्र होता है और उसे भी समानता के सिद्धांत पर जमानत का लाभ दिया जाना चाहिए और यदि ऐसा लाभ नहीं दिया जा रहा है तो इसके स्पष्ट कारण लिखना चाहिए। न्यायदृष्टांत ***मनोहर विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2007 एम.पी. 837*** एवं ***बद्री निहाले विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2006 (1) एम.पी.एल.जे. 166*** अवलोनीय है।

115. यदि वरिष्ठ न्यायालय द्वारा जमानत स्वीकार करते समय किसी विधिक प्रावधान को विचार में नहीं लिया गया हो तब समानता का सिद्धांत लागू नहीं होता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***पुष्पेन्द्र यादव उर्फ राजा विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., एम.सी.आर.सी.*** नंबर 19086/2015, आदेश दिनांक 03.12.2015 अवलोकनीय है जिसमें धारा 59 ए(1) म. प्र. आबकारी अधिनियम के प्रावधानों को विचार में लिये बिना एक अभियुक्त को जमानत का लाभ दिया गया था। सहअभियुक्त ने समानता के आधार पर जमानत की मांग की जिस पर यह प्रतिपादित किया गया कि समानता का सिद्धांत उक्त कारणों से विचार में नहीं लिया गया।

116. न्यायदृष्टांत ***सतपाल सिंह विरूद्ध स्टेट आफ पंजाब, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 2011,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ, के अनुसार धारा 37 एनडीपीएस एक्ट में उल्लेखित निर्बंधन दंड प्रक्रिया संहिता और अन्य विधियों के निर्बंधन के अतिरिक्त हैं। धारा 37 को विचार में लिये बिना आदेश पारित करना उचित नहीं है।

117. धारा 37 एन.डी.पी.एस. एक्ट की बाधा को विचार में लिये बिना यदि वरिष्ठ न्यायालय ने वाणिज्यिक मात्रा के मादक पदार्थ के मामले में जमानत का लाभ दे दिया है तब समानता का सिद्धांत लागू नहीं होगा। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***ब्रजेश यादव विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, 2016 सीआरएलजे 69*** (राजस्थान), अवलोकनीय है जिसमें धारा 37 एनडीपीएस एक्ट को विचार में लिये बिना एक सहअभियुक्त को जमानत दी गई थी और दूसरे अभियुक्त ने समानता के सिद्धांत पर जमानत की मांग की थी।

118. न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ बिहार विरूद्ध अमित कुमार, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 2487,*** के मामले में उत्तर पुस्तिकाओं में हेर-फेर एवं परीक्षा प्रणाली में हस्तक्षेप का अभियोग था। 2.57 करोड़ रूपये की संपत्ति संबंधी दस्तावेज, 20 लाख रूपये नगद, भारी मात्रा में छात्रों की उत्तर पुस्तिकायें, स्टांप आदि अभियुक्त से बरामद हुये। उस पर बड़े पैमाने पर आर्थिक अपराधों के आरोप थे। जमानत पर उन्मुक्त सहअभियुक्त, जो कि शिक्षक होकर अन्वेक्षण या इन्वेजिलेशन का कार्य कर रहा था, उनकी अभियुक्त के साथ तुलना नहीं की जा सकती, जिसके ऊपर अपराध का मुख्य अभियुक्त होने का आरोप है। समानता का सिद्धांत लागू नहीं माना गया।

40. अनुसंधान का प्रारंभिक स्तर पर होना

119. कभी-कभी अनुसंधान के प्रारंभिक स्तर पर जमानत आवेदन प्रस्तुत किये जाते हैं और उस समय तक आहत अस्पताल में भर्ती रहता है या मुख्य अभियुक्त गिरफ्तार नहीं रहता है या सारा परिदृश्य स्पष्ट नहीं होता है। ऐसे समय में संबंधित न्यायाधीश के समक्ष यह समस्या होती है कि वे जमानत स्वीकार करने की स्थिति में भी नहीं होते हैं और पूरी तरह अस्वीकार करने की स्थिति में भी नहीं होते हैं। ऐसे मौकों पर न्यायाधीश को आदेश में यह अभिमत देना चाहिए कि अभी आहत अस्पताल में भर्ती है। उसका उपचार चल रहा है। चोटों की प्रकृति के बारे में अभिमत नहीं आया है या पूरा परिदृश्य स्पष्ट नहीं हुआ है, मुख्य अभियुक्त की गिरफ्तारी होना शेष है। ऐसे स्पष्ट कारण देते हुये यह लिखना चाहिए कि इन कारणों से जमानत इस स्टेज पर खारिज की जाती है।

ऐसा आदेश करने से वे पश्चातवर्ती आवेदन पत्र प्रस्तुत होने पर उसे आहत के उपचार के बाद की स्थिति, चोटों की प्रकृति स्पष्ट हो जाने के बाद जमानत स्वीकार या अस्वीकार करने की स्थिति में रहते हैं। अतः प्रारंभिक स्तर पर या परिदृश्य स्पष्ट न होने की स्थिति में जमानत आवेदन पत्र इस प्रकार खारिज करना चाहिए कि अनुसंधान प्रगति पर होने पर या चोटों की प्रकृति स्पष्ट होने पर पश्चातवर्ती आवेदन पत्र पर विधि अनुसार विचार किया जा सके। ऐसा अपवाद स्वरूप मामलों में ही करना चाहिए।

41. गुण-दोष पर मत प्रकट न करना

120. न्यायाधीश को जमानत आवेदन में सभी कारकों पर विचार करने के बाद यह तथ्य लिखना चाहिए कि गुण-दोष पर मत प्रकट किये बिना इतना लिखना पर्याप्त है कि जमानत स्वीकर करने का यह एक उचित मामला है या उचित मामला नहीं है।

42. लैंगिक हमलों के मामलो में जमानत

121. लैंगिक हमलों के बारे में कभी-कभी ऐसी स्थिति बनती है कि जमानत स्वीकार किया जाना उचित लगता है लेकिन सामाजिक सुरक्षा भी ध्यान में रखनी होती है। ऐसे मामलों में अभियुक्त पर एक नियमित अंतराल में संबंधित आरक्षी केन्द्र पर या विचारण न्यायालय में या दोनों स्थानों पर प्रकरण के निराकरण तक उपस्थिति की शर्त लगाई जा सकती है कि अभियुक्त संबंधित आरक्षी केन्द्र पर या/और विचारण न्यायालय में उपस्थित होकर यह लिखित जानकारी देगा कि वह अच्छे नागरिक की तरह जीवन व्यतीत कर रहा है और इसी प्रकार के अपराध से दूर है और अभियोक्त्री और गवाहोंको प्रभावित नहीं कर रहा है।

122.कभी-कभी अभियोक्त्री और अभियुक्त एक ही मोहल्ले के निवासी होते हैं। मामला जमानत योग्य भी लगता है और सामाजिक सुरक्षा का भी प्रश्न रहता है। तब उसी मोहल्ले के 5 या 10 जमानतदार पेश करने की शर्त लगाई जा सकती है ताकि वे जमानतदार, अभियुक्त अपराध को नहीं दोहराएगा, इस शर्त का अभियुक्त से अनुपालन करवाने में मदद कर सकें।

43. राशि जमा करवाना

123. कई बार छल, कूटरचना आदि के मामलों में न्यायालय समुचित मामलों में राशि जमा कराने की शर्त लगाकर भी जमानत दे सकते हैं। जमा की गई राशि का निराकरण प्रकरण के गुण-दोष पर निराकरण के समय विचारण न्यायालय उचित आदेश द्वारा कर सकेगी। ऐसी शर्त भी अधिरोपित की जा सकती है और जमानत दी जा सकती है। अतः समुचित मामलों में न्यायालय राशि आपत्ति के अधीन (under protest) जमा करवाने की शर्त पर जमानत का लाभ दे सकती है।

लेखक ने सत्र न्यायाधीश नीमच के पद पर रहते हुए वर्ष 2018 में धारा 420 भादंसं के एक मामले में नौकरी लगाने के नाम पर 3 अभियुक्तगण द्वारा कुछ लोगों से छल करके राशि लेने के मामले में प्रत्येक अभियुक्त को 5 लाख रुपये आपत्ति के अधीन जमा करने की शर्त पर जमानत का लाभ दिया था।

124. न्यायदृष्टांत ***भारत स्टार्स सर्विसेस प्राइवेट लिमिटेड विरूद्ध हर्षदेव ठाकुर,ए.आई.आर. 2019 एस.सी. 718,*** के मामले में 2.78 करोड़ रुपये के गबन का मामला था जिसमें उच्च न्यायालय ने 50 लाख रुपये जमा करने की शर्त पर जमानत देने के आदेश दिए थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत दिया कि भारी मात्रा में राशि के गबन का मामला है, अतः उक्त 50 लाख रुपये के अतिरिक्त 75 लाख रुपये और जमा करवाने की शर्त पर अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा जावे।

44. जमानत के आदेश का स्वरूप

125. कई न्यायाधीश के मन में यह प्रश्न होता है कि जमानत का आदेश कितना विस्तार से लिखना चाहिये या कितना छोटा लिखना चाहिये। विधि में जमानत के आदेश काप्रारूप या आकार के बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्रावधान या नियम नहीं हैं लेकिन न्यायालय को पक्षकारों की उपस्थिति के बाद, जमानत आवेदन पत्र, प्रथम या पश्चात्वर्ती है, इस बारे में तथ्य लिखना चाहिए। सूचनाकर्ता द्वारा दी गई सूचना के आधार पर किन धाराओं में अपराध पंजीबद्ध किया गया है, यह दर्ज करते हुये अनुसंधान जारी है, ऐसे तथ्य लिखना चाहिये।

जैसेः- सूचनाकर्ता रामलाल ने अभियुक्त के विरूद्ध चाकू से प्राणघातक चोटें पहुँचाने की रिपोर्ट दर्ज करवाई, जिस पर धारा 307 भारतीय दण्ड संहिता में अपराध पंजीबद्ध किया जाकर अनुसंधान जारी है, ऐसा संक्षिप्त विवरण लिखा जा सकता है।

उभयपक्ष के तर्क संक्षिप्त में लिखकर उस पर एक सकारण आदेश लिखना चाहिये।

जमानत आदेश में अपराध क्रमांक, थाने का नाम या प्रकरण क्रमांक संबंधी धाराएं आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिये।

जमानत देने या जमानत न देने के स्पष्ट कारण अंकित करना चाहिये।

कई न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट पूरी प्रथम सूचना आदेश में उतार देते हैं और अनुसंधान में हुई सभी कार्यवाहियों का उल्लेख कर देते हैं। सारे तर्क लिख देते हैं और जमानत आदेश अकारण लंबे हो जाते हैं। इसके बजाय सकारण निष्कर्ष वाले भाग पर पूरा ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।

45. मजिस्ट्रेट द्वारा पारित जमानत आदेश का स्वरूप

126. मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में पक्षकारों की उपस्थिति, किस व्यक्ति द्वारा किस आशय की रिपोर्ट की गई उसके अति संक्षिप्त तथ्य, पक्षकारों के अभिभाषकगण द्वारा किए गए तर्क अति संक्षिप्त में लिखना चाहिए। उसके बाद जमानत देने या न देने के कारण लिखना चाहिए।

सामान्यतः न्यायिक मजिस्ट्रेट के जमानत स्वीकार करने के आदेश में ये कारण लिखे जा सकते हैं कि:-

अपराध मृत्यु या आजीवन कारावास से दंण्डनीय नहीं है। अभियुक्त के फरार होने की संभावना प्रतीत नहीं होती है। विचारण में कुछ समय लग सकता है। अभियुक्त के विरूद्ध कोई पूर्व आपराधिक अभिलेख नहीं है। मामला घर में घुस कर मारपीट करने का है या कुछ रूपयों की चोरी से संबंधित है। अतः अभियुक्त को जमानत का लाभ दिया जाना उचित है।

जमानत निरस्ती के मामले में ये कारण लिख सकते हैं कि:-

यद्यपि अपराध मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय नहीं है, अभियुक्त के फरार होने की संभावना प्रतीत नहीं होती है, विचारण में कुछ समय लग सकता है लेकिन अभियुक्त के विरूद्ध पूर्व से आठ अन्य अपराध पंजीबद्ध होना डायरी से स्पष्ट होता है या अभियुक्त ने जिस निर्ममता से आहत को चोटें पहुंचाईं हैं या अभियुक्त ने जिस तरह दिन दहाड़े मोटर साईकिल चोरी की है उसके प्रथम दृष्ट्या तथ्यों को देखते हुये जमानत का लाभ दिया जाना उचित नहीं है।

उक्त उदाहरण सामान्य तौर पर बतलाये गये हैं। मामले की प्रकृति को देखते हुये और जमानत के लिए ध्यान रखे जाने वाले तथ्यों को देखते हुये आदेश लिखा जा सकता है।

46. धारा 88 दं.प्र.सं के बारे में

127. न्यायदृष्टांत ***पंकज जैन विरूद्ध यूनियन आफ इंडिया, 2018 (1) ए.एन.जे. (एस.सी.) (सप्लीमेंट) 71,*** के मामले में अभियुक्त पर धारा 420, 468, 471, 120(बी) भा.दं.सं. की धारा 13(2) व 13(1) (डी) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के आरोप थे। अभियुक्त को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने और जमानत आवेदन प्रस्तुत करने की दो बार छूट दी गई। अभियुक्त ने कोई जमानत आवेदन प्रस्तुत नहीं किया। बाद में धारा 88 दं.प्र.सं. के तहत मुचलका प्रस्तुत करने की अनुमति का आवेदन इस आधार पर प्रस्तुत किया गया कि उसे अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था। विशेष न्यायाधीश सी.बी.आई. ने आवेदन निरस्त किया। इस मामले में यह अभिमत दिया गया कि अभियुक्त को धारा 437 दं.प्र.सं. के तहत आवेदन प्रस्तुत करना था। धारा 88 दं.प्र.सं. एक स्वतंत्र प्रावधान नहीं है बल्कि यह धारा 437 के अधीन है। उक्त विधिक स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिये कि केवल माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभियुक्त को विचारण न्यायालय में उपस्थित होकर जमानत आवेदन प्रस्तुत करने की दो बार छूट दी है, तब भी उसका मामला एक गैर-जमानतीय अपराध का होने से जमानत देना या न देना न्यायाधीश के विवेक पर निर्भर करता है और वह जमानत दे भी सकते हैं और जमानत खारिज भी कर सकते हैं।

47. अभियोजन साक्ष्य समाप्त होने के आधार पर जमानत

128. कई बार इस आधार पर पश्चातवर्ती जमानत आवेदन पेश किया जाता है कि अभियोजन साक्ष्य समाप्त हो चुकी है। न्यायदृष्टांत ***संत आशाराम विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 726,*** के मामले में विचारण के दौरान अभियोजन साक्षीगण पर हमले किये गये। अनुसंधान अधिकारी को प्रतिपरीक्षण हेतु 104 बार पुनः बुलाया गया। अभियुक्त विचारण में विलंब हेतु स्वयं जिम्मेदार है। पूर्व में जमानत आवेदन के साथ प्रस्तुत दस्तावेज मिथ्या पाये गये, जमानत खारिज की गई।

48. अपराध की गंभीरता

129. न्यायदृष्टांत ***सीमा सिंह विरूद्ध सी.बी.आई., ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 2161,*** के अनुसार अपराध की गंभीरता अपने-आप में जमानत अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता। अन्य परिस्थितियां जमानत प्रदान करने के लिए अनुमत कर सकती हैं। अभियुक्त के विरूद्ध सामग्री का समग्र परीक्षण और अपराध प्रमाणित करने में उसकी पर्याप्तता को भी विचार में लिया जा सकता है। उक्त सिद्धांत पर इस प्रकार विचार किया जा सकता है कि प्रत्येक अपराध अपने-आप में गंभीर होता है लेकिन अभियुक्त की भूमिका और उसके विरूद्ध एकत्रित साक्ष्य किस प्रकृति की है, इस दृष्टि से गंभीरता पर विचार करना चाहिये अर्थात् लाठी से पैर में प्रहार और तलवार से सिर में प्रहार करने वाले, लाठी से हाथ में प्रहार करने वाले और पीठ में चाकू से प्रहार करने वाले अभियुक्त के मामले में अपराध की गंभीरता अलग-अलग होती है। इसे ध्यान में रखना चाहिये।

49. अभियुक्त के विरूद्ध पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड होना

130. कई बार ऐसे अभियुक्त के जमानत आवेदन पत्र सुनवाई के लिए प्रस्तुत होते हैं जिनके विरूद्ध केस डायरी में पूर्व के आपराधिक रिकार्ड लगे होते हैं। अतः ऐसे अभियुक्तगण समानता के सिद्धांत का लाभ पाने के पात्र भी नहीं होते हैं और ऐसे अभ्यस्थ अपराधियों को जमानत का लाभ दिया जाना समाज के लिये भी सुरक्षित नहीं होता है। अतः जमानत आवेदन पत्र के निराकरण के समय इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिये कि अभियुक्त का कोई पुराना आपराधिक रिकार्ड तो नहीं है।

कई बार पुलिस अभियुक्त के ऐसे आपराधिक रिकार्ड भी लगाती है जो घटना के वर्षों पहले के होते हैं। अतः ऐसे रिकार्ड को ज्यादा महत्व नहीं देना चाहिए। ये देखना चाहिए कि कहीं अभियुक्त नियमित रूप से अपराध तो कारित नहीं कर रहा है। ऐसी स्थिति हो तो उसका जमानत आवेदन स्वीकार करने में अरूचि दिखाना चाहिए।

50. दण्ड प्रक्रिया संहिता की अनुसूची ध्यान में रखना

131. यदि किसी विशेष अधिनियम में जमानत के संबंध में कोई विशेष प्रावधान न हो तब दंड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची को ध्यान में रखना चाहिए जिसके अनुसार यदि अपराध 3 वर्ष से कम के लिये कारावास या केवल जुर्माने से दंडनीय है तो वह जमानतीय होते हैं। यदि अपराध 3 वर्ष और उससे अधिक किंतु 7 वर्ष तक के कारावास से दंडनीय हो तो वह अजमानतीय होते हैं। 7 वर्ष से अधिक के कारावास से दंडनीय सभी अपराध भी अजमानतीय होते हैं।

भारतीय दंड संहिता के अधीन दंडनीय किसी भी अपराध के जमानतीय या अजमानतीय होने के बारे में प्रथम अनुसूची का कॉलम नंबर 5 अवश्य देख लेना चाहिए ताकि कुछ अपवाद आपके ध्यान में आ सकें जैसे धारा 435 दं.प्र.सं. का अपराध यद्यपि सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है किंतु जमानतीय है, धारा 472 भा.दं.सं. का अपराध आजीवन कारावास या 7 वर्ष तक के कारावास से दंडनीय होते हुये भी जमानतीय है। अतः दण्ड प्रक्रिया संहिता की अनुसूची सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

51. वरिष्ठ न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत लेने का प्रभाव

132. यदि वरिष्ठ न्यायालय ने किसी अभियुक्त को अग्रिम जमानत पर रिहा किया है और वही अभियुक्त नियमित जमानत का आवेदन पत्र प्रस्तुत करता है तो उसे नियमित जमानत का लाभ उस दशा में देना चाहिए जब जिस उपलब्ध साक्ष्य पर वरिष्ठ न्यायालय ने अग्रिम जमानत ली थी और उसके बाद ऐसी कोई साक्ष्य संग्रहित नहीं हुई है जो अभियुक्त को जमानत का अपात्र बना दे अर्थात अयोग्य बना दे और यदि जमानत निरस्त करना है तो एक कारण सहित और स्पष्ट आदेश लिखना चाहिए। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***कथूआ पटेल विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2008 (3) एम.पी.एच.टी. 43*** एवं ***छोटे लाल विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2007 (1) एम.जी.जे.आर. 117,*** अवलोकनीय है।

133. जहां मामला मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय हो वहां सत्र न्यायालय जमानत के संदर्भ में सक्षम न्यायालय होती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***रामकिशोर साकेत विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2008 (4) एम.पी.एच.टी. 461*** अवलोकनीय है।

134. न्यायदृष्टांत ***योगेश विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2008 (1) एम.पी.एच.टी. 352,*** के अनुसार जहां अपराध मृत्यु या आजीवन कारावास से दण्डनीय हो वहां नियमित जमानत के लिए सत्र न्यायालय सक्षम न्यायालय होता है।

135. न्यायदृष्टांत ***ब्रजेश गर्ग विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., एम.सी.आर.सी. नंबर 4984/2005,*** निर्णय दिनांक 18/8/2005, (डी.बी.), जबलपुर खण्डपीठ, के अनुसार धारा 439 दं.प्र.सं का आवेदन निरस्त हो जाने के बाद प्रोटेक्टिव अम्ब्रेला समाप्त हो जाता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***सुनील गुप्ता विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2005 (3) एम.पी.एच.टी. 272,*** भी अवलोकनीय है।

136. न्यायदृष्टांत ***श्रीमती बिमला बाई विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., एम.सी.आर.सी. नंबर 7393/2005,*** निर्णय दिनांक 10/11/2005, जबलपुर खण्डपीठ के अनुसार यदि वरिष्ठ न्यायालय द्वारा सह-अभियुक्त को जमानत दे दी जाती है तो समानता के सिद्धांत के आधार पर न्यायिक परिपाटी के अनुसार सह-अभियुक्त को जमानत का लाभ दिया जाना चाहिए।

52. म.प्र. आबकारी अधिनियम, 1915 के अपराध और जमानत

137. इस अधिनियम की धारा 59 (1) के अनुसार धारा 59ए में विनिर्दिष्ट अपराध के सिवाय इस अधिनियम के अधीन दंडनीय समस्त अपराध दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अर्थों में जमानतीय होंगे।

इस अधिनियम की धारा 59 ए(2) के अनुसार धारा 49ए के अधीन दंडनीय किसी अपराध और धारा 34 (1)(ए) या (बी) के अधीन दंडनीय किसी अपराध में जहां मदिरा की मात्रा 50 बल्क लीटर से अधिक हो अभियुक्त को जमानत का लाभ तभी दिया जायेगा जब:-

1. लोक अभियोजक को जमानत के आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया गया हो और,

2. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि अभियुक्त ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहने पर यह संभावना नहीं है कि वह कोई अपराध करेगा।

न्यायदृष्टांत ***बंशीलाल विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, 2003 (2) एम.पी.डब्ल्यू.एन. 88,*** के अनुसार धारा 59 ए(2) के उक्त वर्जन या बाधा को देखते समय जमानत आवेदन पत्र पर विचार करते समय प्रथमतः न्यायालय को लोक अभियोजक को जमानत आवेदन का विरोध करने का अवसर देना चाहिए। विरोध युक्तियुक्त और न्यायसंगत होना चाहिए। केवल विरोध करने के लिए विरोध युक्तियुक्त न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। दूसरे, न्यायालय को केस डायरी में संगृहीत सामग्री के आधार पर ये देखना चाहिए कि क्या अभियुक्त प्रथम दृष्ट्या अपराध का दोषी नहीं है और वह जमानत पर रहने के दौरान कोई अपराध नहीं करेगा। इन मामलों में जमानत आवेदन पर विचार करते समय विधायिका द्वारा समाज के हित में लगाए गए वर्जन या बार और नागरिकों की स्वतंत्रता के बीच एक संतुलन बनाना चाहिए।

इस तरह म.प्र. आबकारी अधिनियम 1915 में धारा 49 ए के अधीन दंडनीय अपराध और धारा 34 (ए) या (बी) के अधीन ऐसे अपराध जिनमें शराब की मात्रा 50 बल्क लीटर से अधिक हो, को छोड़कर, शेष सभी अपराध को धारा 59 (1) म.प्र. आबकारी अधिनियम में जमानतीय होना बतलाया गया है। उक्त दोनों अपराधों में धारा 59 ए(2) की उक्त बाधा विचार योग्य होती है।

53. एन.डी.पी.एस. के मामले और जमानत

138. अधिनियम में मादक पदार्थ की मात्रा के आधार पर दंड के प्रावधान हैं। मात्रा के बारे में अधिसूचना एस.ओ. 1055 (ई), दिनांक 19.10.2001 है जो अधिनियम के पीछे प्रकाशित है जिसमें मादक पदार्थ का नाम और उसकी लघु मात्रा और वाणिज्यिक मात्रा का उल्लेख है। इन दोनों मात्राओं के बीच के मामले मध्यम मात्रा में आते हैं।

139. अल्प मात्रा वाले मामलों में एक वर्ष के कठोर कारावास या 10,000/- रुपये तक के अर्थदंड या दोनों दंड देने के प्रावधान हैं। चूंकि अधिनियम में धारा 37 के अलावा जमानत के बारे में और कोई व्यवस्था नहीं है, अतः धारा 37 को छोड़कर शेष मामलों में दं.प्र.सं की अनुसूची लागू होती है।

140. लघु मात्रा या अल्प मात्रा के मामले में उक्त दंड को देखते हुए ये मामले जमानतीय होते हैं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***अजीज विरूद्ध स्टेट आफ यू.पी., 2002 सीआरएलजे 2913*** एवं ***मिन्नी खादिम अली विरूद्ध स्टेट एनसीटी देहली, डब्ल्यूपी (क्रिमिनल) 338/2012*** निर्णय दिनांक 08.05.2012 अवलोकनीय है।

141. मध्यम मात्रा के मामले 10 वर्ष तक के कारावास और 1 लाख रुपये तक के अर्थदंड से दंडित होते हैं। ये मामले अजमानतीय होते हैं। इनमें जमानत देना या न देना संबंधित विशेष न्यायाधीश के विवेकाधिकार पर निर्भर होता है।

न्यायदृष्टांत ***शरद केवट विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, दांडिक अपील 1795/2001,*** आदेश दिनांक 09.08.2002, के अनुसार लघु मात्रा और मध्यम मात्रा के अपराध के संबंध में अधिनियम में कोई प्रावधान न होने से दं.प्र.सं की अनुसूची लागू होगी।

अल्प मात्रा या मध्यम मात्रा के बारे में धारा 37 की बाधा आकर्षित नहीं होती है। धारा 37 की बाधा केवल वाणिज्यिक मात्रा और धारा 19, 24 और 27ए के मामले में आकर्षित होती है।

142. धारा 37 इस प्रकार है -अपराधों का संज्ञेय और अजमानतीय होनाः-

1. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, -

ए. इस अधिनियम के अधीन दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा।

बी. (धारा 19 अथवा धारा 24 अथवा धारा 27क के अंतर्गत अपराध और वाणिज्यिक मात्रा के संबंध में अपराधों के लिए भी) की अवधि से दंडनीय अपराध के अभियुक्त किसी भी व्यक्ति को जमानत पर या मुचलके पर तभी निर्मुक्त किया जायेगा जब -

(1) लोक अभियोजक को ऐसी निर्मुक्ति के लिए किए गए आवेदन का विरोध करने का अवसर दे दिया गया है, और

(2) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है वहां न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं हैं और जमानत पर होने के दौरान उसके द्वारा कोई अपराध किए जाने की कोई संभावना नहीं है।

2. उप-धारा (1) के खंड (ख) में विनिर्दिष्ट जमानत मंजूर, करने के संबंध में ये परिसीमाएं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन जमानत मंजूर करने की बावत् परिसीमाओं के अतिरिक्त हैं।

धारा 37 के उक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि ये प्रावधान धारा 19 या धारा 24 या धारा 27ए के अंतर्गत अपराध और वाणिज्यिक मात्रा के अपराध में ही लागू होते हैं।

धारा 37 (1)(बी) की दोनों शर्तें पूर्ण होना चाहिए। ये शर्तें वैकल्पिक नहीं हैं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***यूनियन आफ इंडिया विरूद्ध रतन मलिक, (2009) 2 एससीसी 624,*** अवलोकनीय है।

54. आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के अपराध और जमानत

143. इस अधिनियम में जमानत के बारे में कोई विशेष प्रावधान नहीं है। अतः दंप्रसं की अनूसूचि लागू होगी और यदि अपराध में 3 वर्ष से कम का दंड है, तब अपराध जमानतीय माने जायेंगे और 3 वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दंडनीय अपराध अजमानतीय माने जायेंगे।

न्यायदृष्टांत ***बलवंत साहेब लाल विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, 2002 सीआरएलजे 335*** एवं ***हरिओम विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, आईएलआर (2010) एमपी 764,*** से भी जमानत के संबंध में मार्गदर्शन लिया जा सकता है जिनमें यह प्रतिपादित किया गया है कि इस अधिनियम के मामलों में जमानत के बारे में दंड प्रक्रिया संहिता की प्रथम अनुसूची लागू होगी।

55. विद्युत अधिनियम, 2003 के अपराध और जमानत

144. इस अधिनियम में धारा 151बी में ये प्रावधान है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में अंतर्विष्ट किसी चीज के होते हुए भी, धारा 135 से 140 या धारा 150 के अधीन दंडनीय अपराध संज्ञेय और अजमानतीय होंगे।

इस प्रकार अधिनियम की धारा 141 से 143 एवं धारा 146 के अधीन दंडनीय अपराध जमानतीय हैं।

अजमानतीय अपराध में भी विशेष न्यायालय अपने विवेकाधिकार से अभियुक्त को जमानत का लाभ दे सकती हैं।

56. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन अपराध एवं जमानत

145. अधिनियम में जमानत के बारे में पृथक से कोई प्रावधान नहीं है। अतः दं.प्र.सं की द्वितीय अनुसूची लागू होगी जिसके अनुसार अधिनियम की धारा 7 से 15 तक के विभिन्न अपराध दंड की मात्रा को देखते हुए अजमानतीय हैं और इन मामलों में जमानत देना या न देना विशेष न्यायाधीश के विवेकाधिकार का विषय होता है।

146. न्यायदृष्टांत ***मदन कुमार विरूद्ध स्टेट, एमसीआरसी 697/2012,*** आदेश दिनांक 19.01.2012, द्वारा माननीय म.प्र. उच्च न्यायालय ने अभियुक्त का अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त किया और यह आधार दिया कि मामले में भारी मात्रा में राशि का दुर्विनियोग किया गया है और शासन को हानि पहुंचाई गई है। यह मामला भ्रष्टाचार निवारण से संबंधित था।

147. न्यायदृष्टांत ***लालू प्रसाद विरूद्ध स्टेट, 2002 सीआर.एल.जे. 2762,*** में माननीय झारखंड उच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि अभियुक्तगण द्वारा जाली बिल कोषालय में पेश करके कपटपूर्वक भारी राशि निकालने व उसका दुर्विनियोग करने का मामला था जिसमें अभियोग की गंभीरता को देखते हुए जमानत आवेदन निरस्त किया गया।

148. न्यायदृष्टांत ***अजय कुमार जैन विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, 2000 (4) क्राइम्स 27,*** में माननीय बाम्बे उच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि न्यायालय को अपराध की गंभीरता और उसकी प्रकृति को ध्यान में रखना चाहिए। इस मामले में अभियुक्त की अग्रिम जमानत निरस्त की गयी थी।

57. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 या आई.टी. एक्ट के अपराध और जमानत

149. अधिनियम की धारा 77 बी के अनुसार 3 वर्ष तक के कारावास से दंडनीय सभी अपराध जमानतीय होंगे।

इस प्रकार जब कभी सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के अधीन अपराध में जमानत पर विचार करना हो तब दंड की मात्रा देखना चाहिए। यदि अपराध में 3 वर्ष तक का दंड है तो ऐसे सभी अपराध जमानतीय होंगे और शेष अपराध अर्थात् 3 वर्ष से अधिक अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध अजमानतीय होंगे जिनमें जमानत दी भी जा सकती है और खारिज भी की जा सकती है।

58. लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 के अधीन अपराध और जमानत

150. अधिनियम की धारा 4, 6, 8, 10, 12, 15 में दिए गए दंड को देखते हुए इस अधिनियम के अपराध अजमानतीय हैं और इनमें जमानत देना या न देना सत्र न्यायालय के विवेकाधिकार का विषय है।

मजिस्ट्रेट इन मामलों में प्रथम रिमांड दे सकते हैं लेकिन उन्हें जमानत आवेदन सुनने और निराकृत करने से पूरी तरह बचना चाहिए। यह कार्य अर्थात् जमानत पर विचार विशेष न्यायालय को या सत्र न्यायालय को ही करना चाहिए।

59. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन अपराध और जमानत

151. मजिस्ट्रेट इन मामलों में प्रथम रिमांड दे सकते हैं लेकिन उन्हें जमानत आवेदन सुनने और निराकृत करने से पूरी तरह बचना चाहिए। यह कार्य अर्थात् जमानत पर विचार विशेष न्यायालय को ही करना चाहिए।

152. अधिनियम में धारा 18, अग्रिम जमानत से संबंधित धारा 438 दं.प्र.सं के प्रावधान अधिनियम के अपराधों पर लागू नहीं होंगे, इस संबंध में है। जमानत के बारे में अधिनियम में और कोई प्रावधान नहीं है लेकिन दंड की मात्रा को देखते हुए ये कहा जा सकता है कि अधिनियम के अपराध अजमानतीय हैं जिनमें विशेष न्यायाधीश जमानत दे भी सकते हैं और जमानत खारिज भी कर सकते हैं।

अधिनियम में धारा 15 ए(3) के अनुसार पीड़ित को सूचना के अधिकार का प्रावधान है। अतः समस्त थाना प्रभारियों को और पुलिस अधीक्षक को एक पत्र जारी करके ये निर्देश दिए जा सकते हैं कि जब भी किसी अभियुक्त को मय केस डायरी पेश किया जाये तब पीड़ित को उक्त धारा 15 ए(3) के तहत सूचना पत्र तामील करवाकर डायरी में संलग्न किया जावे। ऐसा करने से कई छोटे अपराधों में अभियुक्तगण को पीड़ित के सूचना पत्र की तामील तक अभिरक्षा में रहना पड़ता है, उससे बचा जा सकेगा और पीड़ित को सुनवाई का अधिकार भी मिल जायेगा। कुछ विद्वानों का ये मत हो सकता है कि जिस दिन अभियुक्त को न्यायालय में पेश किया जाए उस दिन उसकी जमानत का आवेदन पेश ही न हो। इस स्थिति से निपटने के लिए परिवादी का पक्ष सुना जा सकता है। उसकी आपत्ति अभिलेख पर ली जा सकती है। उसे विधिक सहायता दिलवाकर एक अधिवक्ता पैनल से नियुक्त किया जा सकता है जो उसका पक्ष रख सके। इस प्रकार पीड़ित को सूचना पत्र की कार्यवाही त्वरित गति से हो सकती है।

60. दहेज प्रताड़ना के मामलों में जमानत पर रुख

153. धारा 498ए भा.दं.सं व दहेज प्रतिषेध अधिनियम के मामलों में न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट को जमानत आवेदन पर विचार करते समय इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि ये विवाद वैवाहिक विवाद की श्रेणी में आते हैं जिनमें प्रायः कालांतर में समझौते की संभावना रहती है लेकिन इन मामलों

में यदि जमानत न देकर अभियुक्तगण को अभिरक्षा में भेज दिया जाता है और किसी व्यक्ति के माता-पिता, भाई, बहन और परिवार के अन्य सदस्य एक बार जेल चले जाते हैं तब समझौते की संभावना दुर्बल हो जाती है और कभी-कभी परिवार के टूटने की नौबत आ जाती है। अतः, इन वैवाहिक विवाद संबंधी मामलों में जमानत देते समय एक परिवार टूटने से बच सके, इस दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखना चाहिए।

जमानत देना या न देना न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट का विवेकाधिकार है लेकिन विवेकाधिकार का प्रयोग इस तरह किया जाना चाहिए जिससे सामाजिक उद्देश्य को भी प्राप्त किया जा सके।

154. धारा 31 घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 का मामला भी यद्यपि अजमानतीय है लेकिन एक वैवाहिक विवाद से उत्पन्न मामला है जिसमें उक्त दृष्टिकोण मस्तिष्क में रखना चाहिए।

धारा 31 (1) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 का अपराध, धारा 32 (1) उक्त अधिनियम के तहत् संज्ञेय और अजमानतीय है और ऐसे अभियुक्त को जमानत पर रिहा करते समय नियम 15 (9) घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण नियम 2006 को भी ध्यान में रखना चाहिये जिसमें जमानत के समय कुछ अतिरिक्त शर्तें अधिरोपित करने के प्रावधान हैं जो निम्न प्रकार से हैं:-

ए. अभियुक्त को घरेलू हिंसा के किसी कृत्य कारित करने की धमकी देने या घरेलू हिंसा करने से रोकने का कोई आदेश।

बी. अभियुक्त को व्यथित व्यक्ति को परेशान करने, टेलीफोन करने या कोई संपर्क करने से रोकने का कोई आदेश।

सी. अभियुक्त को व्यथित व्यक्ति के निवास स्थान या किसी अन्य स्थान पर जहां व्यथित व्यक्ति के जाने की संभावना हो उसे खाली करने या उससे दूर रहने का आदेश।

डी. कोई आग्नेय अस्त्र या कोई अन्य खतरनाक हथियार को आधिपत्य में रखने या उसका उपयोग करने से रोकने का कोई आदेश।

इ. एलकोहल या कोई अन्य मादक औषधि के उपयोग से रोकने का कोई आदेश।

ई. कोई अन्य आदेश, जो व्यथित व्यक्ति के संरक्षण, सुरक्षा और पर्याप्त अनुतोष के लिये अपेक्षित हो।

61. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 और जमानत

155. अधिनियम, 2015 की धारा 12 के अनुसार विधि का उल्लंघन करने वाला बालक, जिसे चाहे जमानतीय अपराध में पेश किया गया हो चाहे अजमानतीय अपराध में पेश किया गया हो, उसे जमानत पर रिहा करना आज्ञापक है जब तक कि उसका मामला धारा 12 के परंतुक में बतलाये अपवादों में न आता हो, जो निम्नलिखित हैं:-

1. यह विश्वास करने के युक्तियुक्त आधार प्रतीत होते हैं कि ऐसे व्यक्ति को छोड़ने पर वह किसी ज्ञात अपराधी के संसर्ग में आ जायेगा,

2. या वह नैतिक, शारीरिक या मनोवैज्ञानिक खतरे में पड़ जायेगा,

3. या उसको छोड़ा जाना न्याय के उद्देश्य को विफल कर देगा,

उक्त तीन अपवाद में यदि मामला आता हो तभी जमानत से इंकार किया जा सकता है और बालक को संप्रेक्षण गृह में भेजा जाता है अन्य दशा में जमानत दिया जाना आज्ञापक या मेन्डेटरी है।

इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***हंसराज विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2005 (2) ए.एन.जे. एम.पी. 407, हाकम विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2011 एम.पी. 2237, राहुल विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2011 (4) एम.पी.एच.टी. 113, रीतेष विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2011 (4) एम.पी.एल.जे. 226 व नारायण शर्मा विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2012 एम.पी. 796,*** अवलोकनीय हैं।

156. विधि संबंधी विरोध में किशोर का मामला उक्त तीन अपवादों में आता है, यह साबित करने का भार अभियोजन पर होता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***नेसुल खातून विरूद्ध स्टेट आफ असम, 2011 सीआरएलजे 326 (डीबी),*** अवलोकनीय है।

157. धारा 12 के आवेदन पर विचार करते समय अपराध की गंभीरता तात्विक नहीं होती है केवल यह देखना होता है कि किशोर का मामला धारा 12 के किसी अपवाद में तो नहीं आता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***राहुल विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, 2011 (4) एमपीएचटी 113, राजकुमार विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, 2008 (1) एमपीडब्ल्यूएन 94, प्रकाश विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, 2006 सीआरएलजे 1373, विजेन्द्र कुमार विरूद्ध स्टेट आफ यू.पी., 2003 सी.आर.एल.जे. 4616, रंजीत सिंह विरूद्ध स्टेट आफ एच.पी., 2005 सी.आर.एल.जे. 972 व अमरदीप सिंह विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, 2011 सीआर.एल.जे 1599,*** भी अवलोकनीय हैं।

158. मामला चाहे एनडीपीएस एक्ट का हो या एससी एसटी एक्ट का हो या किसी अन्य विशेष अधिनियम का हो या धारा 302 भादंसं का भी हो तब भी धारा 12 अधिनियम 2015 के आवेदन पर विचार करते समय केवल यह देखना है कि क्या विधि संबंधित विरोध में किशोर का मामला धारा 12 के उक्त तीन अपवाद में से किसी अपवाद में तो नहीं आता है और यदि किसी अपवाद में नहीं आता है तो जमानत आज्ञापक या मेन्डेटरी है, इसे ध्यान रखना चाहिए।

62 जैव विविधता अधिनियम, 2002 या बायोलॉजिकल डायवरसिटी एक्ट और जमानत

159. इस अधिनियम की धारा 58 के अनुसार अधिनियम के सभी अपराध संज्ञेय और अजमानतीय होंगे। इस प्रकार इस अधिनियम के सभी अपराध अजमानतीय हैं जिनमें जमानत देना या न देना मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार का विषय है।

63. म.प्र. गौवंश वध प्रतिषेध अधिनियम, 2004 और जमानत

160. अधिनियम की धारा 4 से 6 एवं 6ए तथा 6बी सहपठित धारा 9 (1) व (2) में उल्लिखित दंड पर विचार करें तो ये मामले अजमानतीय हैं जिसमें जमानत देना या न देना मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार का विषय है।

64. धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002
Prevention of Money Laundering Act, 2002

161. इस अधिनियम की धारा 45 की दो शर्तें असंवैधानिक घोषित कर दी गई हैं जो निम्नलिखित हैं:-

1. लोक अभियोजक को जमानत आवेदन का विरोध करने का अवसर प्रदान करना।
2. न्यायालय का समाधान कि यह विश्वास करने के समुचित आधार हैं कि अभियुक्त कथित अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर छोड़े जाने पर उसके द्वारा कोई अपराध किये जाने की कोई संभावना नहीं है।

उक्त शर्तें मनमानी होने से और ऐसी प्रक्रिया का प्रावधान करने वाली होने से जो न्यायसंगत और ऋजु नहीं हैं, संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन करती है। अतः धारा 45 (1), जहां तक जमानत पर छोड़े जाने हेतु उक्त दो शर्तें अधिरोपित करती है, असंवैधानिक घोषित की गई। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***निकेश ताराचंद शाह विरूद्ध यूनियन आफ इंडिया, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5500,*** (संवैधानिक पीठ) अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***रोहित टंडन विरूद्ध Enforcement Director, 2018 सीआर.एल.जे 416,*** के अनुसार बड़ी मात्रा में विमुद्रीकृत रकम की मुद्रा बैंक में जमा की गई। उक्त रकम के क्मउंदक क्तंजि बनाकर बनावटी लोगों के पक्ष में जारी किये गये। धन के स्त्रोत एवं अपरिचित व्यक्तियों को भुगतान किये जाने के कारण स्पष्ट नहीं किये गये। प्रथम दृष्ट्या धन शोधन के गंभीर अपराध का सुदृढ़ मामला पाया गया। आवेदन खारिज किया गया।

इसी मामले में यह भी प्रतिपादित किया गया कि अनिश्चित अपराध से संबंधित आपराधिक गतिविधि को आपराधिक गतिविधि में सम्मिलित होना माना जा सकता है। यह मामला धारा 3, 4, एवं 45 धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 से संबंधित था जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त विधि प्रतिपादित की है।

65. रिमांड ड्यूटी के दौरान जमानत

162. कभी-कभी रिमांड ड्यूटी के समय माननीय उच्च न्यायालय या माननीय सत्र न्यायालय के आदेश प्रस्तुत होते हैं और पक्षकार उस आदेश के अनुपालन में जमानत लेने का आग्रह करते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि यदि आदेश में विचारण न्यायालय के संतोषप्रद जमानत प्रस्तुत करने के निर्देश हैं तो ऐसी जमानत विचारण न्यायालय ही ले सकता है, रिमांड ड्यूटी में संबंधित मजिस्ट्रेट ऐसी जमानत नहीं ले सकता है।

लेखक के मत में आदेश के अधीन प्रस्तुत जमानत को तसदीक करना केवल उस आदेश का अनुपालन करना है। ऐसा करके मजिस्ट्रेट अपनी ओर से कोई न्यायिक आदेश पारित नहीं करता है बल्कि माननीय वरिष्ठ न्यायालय के आदेश का केवल अनुपालन करता है। अतः मेरे मत में रिमांड ड्यूटी के दौरान ऐसे वरिष्ठ न्यायालय के आदेशानुसार जमानत तसदीक करना कतई अनुचित नहीं माना जाता

चाहे उसमें विचारण न्यायालय के संतोषप्रद शब्द लिखा हो। इसके अतिरिक्त रिमांड ड्यूटी में संबंधित मजिस्ट्रेट सभी आवश्यक कार्यों के लिए संबंधित न्यायालय का प्रभारी होता है, अतः प्रभारी के नाते उसका इस प्रकार जमानत तसदीक करना अनुचित नहीं कहा जा सकता है। जमानत आदेश के अनुपालन में जमानत तसदीक करना एक प्रशासकीय कार्य माना जा सकता है।

66. जमानत आदेश में अपराध क्रमांक आदि की त्रुटि होने पर

163. कभी कभी वरिष्ठ न्यायालय से जो जमानत आदेश प्राप्त होते हैं उनमें अपराध क्रमांक, धारा आदि संबंधित त्रुटि होती हैं या ये दर्ज नहीं होते हैं। ऐसे में वरिष्ठ न्यायालय से मार्गदर्शन मांगने के बजाय रिमांड पेपर और संबंधित थाने से जानकारी लेना चाहिए। संबंधित पक्ष का शपथ पत्र भी लिया जा सकता है।

164. न्यायदृष्टांत ***धर्मेन्द्र प्रताप विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, 2008 (2) एमपीएचटी 477,*** में माननीय म.प्र. उच्च न्यायालय ने अभियुक्त की जमानत एक अपराध में ली थी। जेल अधिकारी ने ये आपत्ति ली थी कि जमानत आदेश में एक विशिष्ट धारा का उल्लेख नहीं है। इस मामले में माननीय म.प्र. उच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि जमानत एक अपराध क्रमांक में दी जाती है किसी अपराध विशेष में नहीं दी जाती है। जेल अधिकारियों को ऐसी आपत्ति लेने का अधिकार नहीं है।

67. जमानत आदेश में निर्देश

165. कभी भी सत्र न्यायाधीश या अपर सत्र न्यायाधीश को जमानत आवेदन के निराकरण के समय संबंधित मजिस्ट्रेट को जमानत देने या न देने के बारे में कोई निर्देश नहीं देना चाहिए। यदि उनकी राय में मामला जमानत देने योग्य हो तो जमानत दे देना चाहिए और खारिज करने योग्य हो, तो खारिज कर देना चाहिए।

166. न्यायदृष्टांत ***सुदामा चरण दास विरूद्ध स्टेट आफ उड़ीसा, (2014) 2 एस.सी.सी. 141,*** के अनुसार उच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त किया और विचारण न्यायालय को निर्देश दिया कि अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर दे। यह प्रतिपादित किया गया कि ऐसा आदेश जो विचारण न्यायालय के जमानत देने या न देने की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाता है कभी पारित नहीं किया जाना चाहिये। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***रश्मि रेखा थटोई विरूद्ध स्टेट आफ उड़ीसा, (2012) 5 एस.सी.सी. 690,*** को विचार में लिया गया जिसमें यही विधि प्रतिपादित की गई थी।

68. वरिष्ठ न्यायालय द्वारा निर्देश

167. यदि वरिष्ठ न्यायालय द्वारा ऐसे निर्देश हों कि अभियुक्त विचारण न्यायालय में या मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत आवेदन पेश करेगा और उसे वह न्यायालय उसी दिन निराकृत करेगी या अनुचित विलंब के बिना निराकृत करेगा तो इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि ऐसे निर्देशों का तात्पर्य यह है कि जमानत देना ही है। यदि मामला जमानत योग्य है तो जमानत दी जाना चाहिए अन्यथा खारिज भी कर सकते हैं।

69. धारा 70(2) दंड प्रक्रिया संहिता का आवेदन आने पर

168. धारा 70 इस प्रकार से हैः-

गिरफ्तारी के वारण्ट का प्रारूप और अवधि -

(1) न्यायालय द्वारा इस संहिता के अधीन जारी किया गया गिरफ्तारी का प्रत्येक वारण्ट लिखित रूप में और ऐसे न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होगा और उस पर उस न्यायालय की मुद्रा होगी।

(2) ऐसा प्रत्येक वारण्ट तब तक प्रवर्तन में रहेगा जब तक वह उसे जारी करने वाले न्यायालय द्वारा रद्द नहीं कर दिया जाता है या जब तक वह निष्पादित नहीं कर दिया जाता है।

उक्त प्रावधान के अनुसार अभियुक्त की ओर से कभी-कभी उसके अधिवक्ता वारण्ट निरस्त करने का एक आवेदन पेश करते हैं और कई बार उस समय अभियुक्त उपस्थित नहीं होता है और केवल अधिवक्ता द्वारा ही आवेदन प्रस्तुत किया जाता है, तब मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश के समक्ष ये प्रश्न उत्पन्न होता है कि अभियुक्त उपस्थित ही नहीं है तब कैसे आवेदन पर विचार किया जाए, कैसे वारण्ट निरस्त किया जाए? जमानत जो जप्त हो चुकी है उसका क्या होगा? आदि।

169. माननीय मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने न्यायदृष्टांत ***सचिन गुप्ता विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., एम.सीआर.सी. नंबर 4417/17,*** आदेश 21.03.17, जबलपुर बैंच, में यह विधि प्रतिपादित की है कि धारा 70 (2) दंड प्रक्रिया संहिता का आवेदन प्रस्तुत होने पर अभियुक्त की भौतिक उपस्थिति आवश्यक नहीं है।

170. न्यायदृष्टांत ***श्रीकांत विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2018 लॉसूट (एम.पी.) 1128,*** में भी माननीय उच्च न्यायालय ने ये विधि प्रतिपादित की है कि धारा 70 (2) दंड प्रक्रिया संहिता का आवेदन प्रस्तुत करते समय अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है।

171. अतः ऐसा आवेदन पेश करने पर मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश को उभयपक्ष को सुनकर अभिलेख का अवलोकन करके ये देखना चाहिए कि क्या अभियुक्त के विरूद्ध जारी वारण्ट रद्द या निरस्त करने के युक्तियुक्त आधार हैं या नहीं। यदि आधार न हों तो आवेदन खारिज कर देना चाहिए और यदि वारण्ट रद्द या निरस्त करने के युक्तियुक्त आधार हैं तब जारी वारण्ट रद्द या निरस्त करने के आदेश दे देना चाहिए।

चूंकि जब अभियुक्त अनुपस्थित हुआ था तब उसके जमानत मुचलके जप्त करने के आदेश दिए गए थे और कुछ मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश धारा 446 दंड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही भी प्रारंभ करते हैं, ऐसे में वारण्ट निरस्ती के आदेश के साथ ही साथ मजिस्ट्रेट/न्यायाधीश को ये आदेश भी करना चाहिए कि अभियुक्त नवीन जमानत मुचलका प्रस्तुत करेगा।

कुछ विद्वानों का मत ये है कि पूर्व प्रस्तुत जमानत मुचलके रिस्टोर हो जायेंगे लेकिन ऐसा नहीं होगा।

न्यायदृष्टांत सचिन गुप्ता (उपरोक्त) में जो जमानत मुचलके रिस्टोर करने के आदेश दिए गए हैं वे धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के तहत किए गए हैं। ऐसी शक्तियां माननीय उच्च न्यायालय को प्राप्त होती हैं लेकिन विचारण न्यायालय को प्राप्त नहीं होती हैं।

इसके अतिरिक्त विचारण न्यायालय के सामने धारा 446ए भारतीय दंड संहिता की बाधा रहती है।

172. धारा 446ए दण्ड प्रक्रिया संहिता इस प्रकार हैः-

बंधपत्र और जमानत पत्र का रद्दकरण - धारा 446 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जहां इस संहिता के अधीन कोई बंधपत्र किसी मामले में हाजिर होने के लिए है और उसकी किसी शर्त के भंग होने के कारण उसका समपहरण हो जाता है, वहां-

(1) ऐसे व्यक्ति द्वारा निष्पादित बंधपत्र तथा उस मामले में उसके प्रतिभुओं द्वारा निष्पादित एक या अधिक बंधपत्र भी, यदि कोई हों, रद्द हो जाएंगे और

(2) तत्पश्चात् ऐसा कोई व्यक्ति, उस मामले में केवल अपने ही बंधपत्र पर छोड़ा नहीं जाएगा यदि, यथास्थिति, पुलिस अधिकारी या न्यायालय का, जिसके समक्ष हाजिर होने के लिए बंधपत्र निष्पादित किया गया था, यह समाधान हो जाता है कि बंधपत्र की शर्त का अनुपालन करने में असफल रहने के लिए बंधपत्र से आबद्ध व्यक्ति के पास कोई पर्याप्त कारण नहीं था परंतु इस संहिता के किसी अन्य उपबंध के अधीन रहते हुए, उसे उस मामले में उस दशा में छोड़ा जा सकता है जब वह ऐसी धनराशि के लिए कोई नया व्यक्तिगत बंधपत्र निष्पादित कर दे और ऐसे एक या अधिक प्रतिभुओं से बंधपत्र निष्पादित करा दे, जो यथास्थिति, पुलिस अधिकारी या न्यायालय पर्याप्त समझे।

अतः मजिस्ट्रेट के लिए ये उचित होगा कि ऐसा आवेदन पेश होने पर उभयपक्ष को सुनकर यदि वारण्ट निरस्त करने के युक्तियुक्त कारण अभिलेख पर हैं तो वारण्ट निरस्त करने का आदेश करना चाहिए और नवीन जमानत मुचलका पेश करने का भी आदेश पेश करना चाहिए। ऐसे आदेश के अनुपालन में जमानत मुचलका पेश हो जाने के बाद वारण्ट अनिर्वाहित बुलाना चाहिए। पूर्व प्रस्तुत जमानत मुचलके रिस्टोर नहीं होंगे क्योंकि धारा 446ए दंप्रसं की बाधा आएगी। कोई भी दंड न्यायालय अपने ही द्वारा पारित आदेश का पुनरावलोकन या रिव्यू नहीं कर सकते हैं जैसा कि न्यायदृष्टांत ***अदालत प्रसाद विरूद्ध रूपलाल जिंदल, ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 4674,*** में प्रतिपादित किया गया है।

70. सतर्कता या विजलेंस शाखा का भय और जमानत

173. कुछ न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट जमानत आवेदन पत्र इस कारण प्रायः खारिज कर देते हैं कि वे किसी शिकायत के होने पर सतर्कता या विजलेंस शाखा से स्पष्टीकरण मांगे जाने या अन्य विभागीय कार्यवाही से बचेंगे व ऐसे कुछ उदाहरण की चर्चा भी करते रहते हैं।

लेखक के मत में ऐसा भय उचित नहीं है क्योंकि जिन उदाहरणों की वे चर्चा करते हैं वे ऐसे हैं जिनमें एक दिन किसी अभियुक्त का अग्रिम जमानत आवेदन पत्र खारिज किया गया और अगले

ही दिन बिना परिस्थितियों में कोई परिवर्तन हुए उसी अभियुक्त का जमानत आवेदन पत्र स्वीकार कर लिया गया और ऐसा कई आवेदनों में किया गया। मामला गंभीर था। अतः मान्य सिद्धांतों पर चलते हुए जमानत आवेदन पत्र स्वीकार करने में भयभीत नहीं होना चाहिए क्योंकि एक विद्वान ने कहा हैः-

''यदि आप नियमों से कार्य करते हैं तो नियम भी अपना काम करते हैं।''

भय और न्याय करना एक-दूसरे के विपरीत हैं।

71. अग्रिम जमानत

174. अग्रिम जमानत के बारे में धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता में प्रावधान है जो इस प्रकार हैः-

गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति की जमानत मंजूर करने के लिए निदेश- 1. जहां किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकेगा कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए, और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात् -

(1) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता।

(2) आवेदक का पूर्ववृत जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि क्या उसने पूर्व में किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भोगा है।

(3) न्याय से भागने की आवेदक की संभाव्यता।

(4) जहां अभियोग आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने या उसका अपमान करने के उद्देश्य से लगाया गया है।

वहां या तो तत्काल आवेदन अस्वीकार करेगा या अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए अंतरिम आदेश देगा।

परंतु यह कि जहां, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत मंजूर करने के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, वहां किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि ऐसे आवेदन में आशंकित अभियोग के आधार पर आवेदक को वारंट के बिना गिरफ्तार कर ले।

1.(ए) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश मंजूर करता है, वहां वह तत्काल एक सूचना, जो सात दिवस से अन्यून की सूचना न होगी, के साथ ऐसे आदेश की एक प्रति न्यायालय द्वारा आवेदन की अंतिम रूप से सुनवाई के समय लोक अभियोजक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने की दृष्टि से, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को भिजवाएगा।

1.(बी) यदि लोक अभियोजक द्वारा न्यायालय को आवेदन किए जाने पर न्यायालय यह विचार करता है कि न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति आवश्यक है तो न्यायालय द्वारा आवेदन की अंतिम सुनवाई

और अंतिम आदेश पारित करते समय अग्रिम जमानत चाहने वाले आवेदक की उपस्थिति बाध्यकर होगी।

2. जब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उपधारा (1) के अधीन निदेश देता है तब वह उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है जिनके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं:-

(1) यह शर्त कि वह व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा पूछे जाने वाले परिप्रश्नों का उत्तर देने के लिए जैसे और जब अपेक्षित हो, उपलब्ध होगा।

(2) यह शर्त कि वह व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उसे कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा।

(3) यह शर्त कि वह व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना भारत नहीं छोड़ेगा।

(4) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन ऐसे अधिरोपित की जा सकती हैं, मानो उस धारा के अधीन जमानत मंजूर की गई है।

3. यदि तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को अभियोग पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारण्ट के बिना गिरफ्तार किया जाता है वह या तो गिरफ्तारी के समय या जब ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में है तब किसी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरूद्ध प्रथम बार ही वारण्ट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारण्ट जारी करेगा।

72. शक्तियाँ असाधारण व अपवाद स्वरूप की होना

175. अग्रिम जमानत की शक्तियां असाधारण और अपवाद स्वरूप प्रयोग में लाई जाने वाली शक्तियां हैं।

176. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायदृष्टांत ***डी.के. गणेश बाबू विरूद्ध पी.टी. मनोकरण, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 1450,*** में यह प्रतिपादित किया है कि अग्रिम जमानत की शक्तियां असाधारण शक्तियां हैं। इसका प्रयोग बहुत कम करना चाहिए। प्रस्तावित गिरफ्तारी की वैधानिकता नहीं देखी जा सकती है। गिरफ्तारी को रोकने के लिए अंतरिम आदेश नहीं किये जाने चाहिये।

177. न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ एम.पी. विरूद्ध प्रदीप शर्मा, (2014) 2 एस.सी.सी. 171,*** के अनुसार धारा 438 दं.प्र.सं. की शक्तियां असाधारण हैं। इनका उपयोग अपवाद स्वरूप मामलों में वहां करना चाहिए जहां यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त असत्य रूप से लिप्त किया गया है और उसके द्वारा स्वतंत्रता का दुरूपयोग करने की संभावना नहीं है। धारा 82 दं.प्र.सं. के तहत उद्घोषित अपराधी को अग्रिम जमानत पाने का हक नहीं होता है। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***लवेश विरूद्ध स्टेट एनसीटी देहली, (2012) 8 एस.सी.सी. 730,*** निर्णय चरण 12 को विचार में लिया गया जिसके अनुसार यदि कोई अभियुक्त फरार घोषित कर दिया जाता है तो वह अग्रिम जमानत का हकदार नहीं होता है।

178. न्यायदृष्टांत ***शौबरन बाथम विरूद्ध स्टेट आॅफ मध्यप्रदेश, 2018 (2) एम.पी.जे.आर. 252*** में यह प्रतिपादित किया गया कि ऐसे फरार अभियुक्त को अग्रिम जमानत का लाभ नहीं दिया जा सकता जिसके विरूद्ध धारा 299 दं.प्र.सं के अधीन अभियोग पत्र प्रस्तुत किया गया है और मजिस्ट्रेट ने उसके विरूद्ध गिरफ्तारी वारंट जारी किया है। इस मामले में उक्त न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ मध्यप्रदेश विरूद्ध प्रदीप शर्मा, ए.आई.आर. 2014 एस.सी. 625,*** का अनुसरण किया गया।

179. न्यायदृष्टांत ***प्रवीण दुबे विरूद्ध रविशंकर, 2014 (5) एम.पी.एच.टी. 259,*** के अनुसार अग्रिम जमानत देने की शक्ति का प्रयोग धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन अपवाद स्वरूप प्रकरणों में करना चाहिये। इस प्रावधान के तहत दिये गये विवेकाधिकार को सम्यक् सर्तकता और सावधानी से प्रयोग करना चाहिये। ऐसी शक्तियों का प्रयोग न्यायसंगत परिस्थितियों पर निर्भर होता है। ऐसी शक्तियों का प्रयोग उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय द्वारा तभी किया जाना चाहिये जब न्यायालय को यह विश्वास करने के कारण हों कि किसी व्यक्ति के विरूद्ध अजमानतीय अपराध करने का अभियोग, उसे असत्य रूप से फंसाने के लिये लगाया गया है या आधारहीन मामला उसके विरूद्ध दर्ज करवाया गया है, अभियुक्त के फरार होने की संभावना नहीं है या उसके अन्यथा जमानत का दुरूपयोग करने की संभावना नहीं है। इस मामले में ***न्यायदृष्टांत स्टेट आफ कर्नाटका विरूद्ध शिवन्ना उर्फ तरकारी शिवन्ना, एस.एल.पी.*** क्रिमिनल नंबर 5073 /2011, निर्णय दिनांक 25.04.2014 और ***जयप्रकाश विरूद्ध स्टेट आफ बिहार, (2012) 4 एस.सी.सी. 379,*** को विचार में लिया गया।

इस मामले में परिस्थितियों में तात्विक परिवर्तन की विधि भी बतलाई गई कि सह अभियुक्त का अग्रिम जमानत आवेदन पत्र खारिज होना और उस अभियुक्त को बाद में नियमित जमानत दिया जाना, यह अन्य सह-अभियुक्त को अग्रिम जमानत देने के लिये परिस्थितियों में तात्विक परिवर्तन नहीं है। परिस्थितियों में तात्विक परिवर्तन के बिना जमानत देना प्रक्रिया के दुरूपयोग के समान है।

इस मामले में जमानत के लिये फोरम के बारे में विधि बतलाई गई कि एक व्यक्ति जो सत्र न्यायालय के समक्ष प्रथम बार अग्रिम जमानत आवेदन पत्र प्रस्तुत करने का चुनाव करता है और उसका आवेदन निरस्त हो जाता है, तो वह उच्च न्यायालय को उन्हीं कारणों के आधार पर धारा 438 दं.प्र.सं. के अधीन अग्रिम जमानत का आवेदन कर सकता है। जहां एक व्यक्ति उच्च न्यायालय में आवेदन का चुनाव करता है और उसका आवेदन निरस्त हो जाता है तब वह समान तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर सत्र न्यायालय के समक्ष दूसरी बार आवेदन करने का हकदार नहीं होता है क्योंकि उसका आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था। वह व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति से अपील की कार्यवाही कर सकता है लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में किसी पश्चातवर्ती घटना के कारण तात्विक परिवर्तन हुआ हो तभी वह दूसरी बार आवेदन कर सकता है लेकिन इस आधार पर नहीं कि पूर्व के अवसर पर न्यायालय अभिलेख पर उपलब्ध किसी तात्विक तथ्य पर विचार करने में असफल रही थी या कोई ऐसा बिन्दु जो पूर्व में उठाया जा सकता था लेकिन नहीं उठाया गया।

इस मामले में यह भी प्रतिपादित किया गया कि अग्रिम जमानत को निरस्त करने के लिए धारा 439 दं.प्र.सं. का आवेदन उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय के समक्ष प्रचलन योग्य होता है।

180. न्यायदृष्टांत ***प्रताप सिंह विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2015 (3) एम.पी.जे.आर. 29,*** के अनुसार अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार के लिए सुसंगत कारक बतलाये गये हैं जो इस प्रकार हैं:-

(i) **अभियोग की प्रकृति और गंभीरता** - अभियोग का प्रकार और गंभीरता, समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के अतिरिक्त निश्चित रूप से सुसंगत कारक हैं किन्तु यह निर्णायक नहीं है - अभिकथन अभियोजन द्वारा संग्रहित की गई तात्विक सामग्री पर आधारित होना चाहिये।

(ii) **अभियोजन साक्ष्य की प्रकृति और गंभीरता** - एक सह-अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति अन्य सह-अभियुक्त को दोषसिद्ध करने का आधार बनाने के लिये एक तात्विक साक्ष्य की प्रास्थिति नहीं हो सकती है।

(iii) **अभियुक्त का पूर्ववृत्त**- यदि अभियोजन अभियुक्त के विरूद्ध कोई पूर्ववृत्त अस्तित्व में होना नहीं बतलाता है तब न्यायालय सुरक्षित रूप से यह उपधारित कर सकती है कि अभियुक्त के विरूद्ध कोई पूर्ववृत्त (पूर्व अपराधिक इतिहास) नहीं है।

(iv) अभियुक्त के फरार होने की संभावना।

(v) क्या अभियुक्त को अपमानित करने के लिये अभियोग लगाया गया है?

(vi) क्या गिरफ्तारी से अभियुक्त के हितों पर प्रतिकूल असर पड़ेगा?

इस मामले में न्यायपालिका के सदस्यों को मीडिया प्रचार से भी सावधान रहने के लिए कहा गया है, जो इस प्रकार हैः-

मीडिया प्रचार - न्यायपालिका के सदस्यों के लिये सतर्कता के शब्द - न्यायालयों को मीडिया द्वारा प्रभावित होने से स्वयं को बचाना ही चाहिये - एक पक्षकार को दी जाने वाली सहायता का न्याय निर्णयन उपलब्ध तथ्यों, साक्ष्य और विधि के आधार पर किया जाना चाहिये न कि लोक अभिमत के आधार पर जो कि प्रायः सहानूभूति, प्रवृत्ति, झुकाव पर आधारित होता है न कि कारण, साक्ष्य के क्रमबंधन और विधि के स्थापित सिद्धांतों पर।

73. अग्रिम जमानत आवेदन पहले कहां लगेगा?

181. क्या अग्रिम जमानत का आवेदन सीधे उच्च न्यायालय में लगाया जा सकता है? न्यायदृष्टांत ***प्रिया अग्रवाल उर्फ शुभलता अग्रवाल विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2012 एम.पी. 803,*** के अनुसार धारा 438 दं.प्र.सं. का आवेदन सर्वप्रथम सत्र न्यायालय में लगाना चाहिये और उसके बाद यदि आवश्यकता हो तब उच्च न्यायालय में आवेदन लगाया जा सकता है। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***गुरूचरण सिंह विरूद्ध स्टेट देहली एडमिनिशट्रेशन, ए.आई.आर. 1978 एस.सी. 179, डैनी उर्फ राजू विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 1989 जे.एल.जे. 323 व मनीषा नीमा विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2003 (2) एम.पी.एच.टी. 303,*** को भी विचार में लिया गया जिसमें यही विधि प्रतिपादित की गई है।

लवेश विरूद्ध स्टेट, (2012) 8 एस.सी.सी. 730, के अनुसार धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता का आवेदन पत्र सर्वप्रथम सत्र न्यायालय में लगाना चाहिए फिर यदि आवश्यक हो तो माननीय उच्च

न्यायालय में लगाना चाहिए। इस संबंधमें न्यायदृष्टांत ***प्रिया अग्रवाल विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2012 एम.पी. 803,*** भी अवलोकनीय है।

माननीय उच्च न्यायालय में जमानत आवेदन सीधे प्रस्तुत किया गया, पहले सत्र न्यायालय या विचारण न्यायालय में आवेदन नहीं किया गया। क्या ऐसा आवेदन चलने योग्य है? यदि विशेष असामान्य परिस्थितियां और कारण बतलाये जायेंगे तब ऐसा आवेदन सीधे उच्च न्यायालय में चल सकता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***छोटे खान विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2012 एम.पी. 1095,*** अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***श्रीमती मनीषा नीमा विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2003 (2) एम.पी.एल.जे. 587,*** के अनुसार धारा 438 और 439 की शक्तियां समवर्ती शक्तियां हैं लेकिन पहले आवेदन सत्र न्यायालय में लगाना चाहिए।

74. अभियोग पत्र प्रस्तुत हो जाने के बाद अग्रिम जमानत आवेदन

182. न्यायदृष्टांत ***रवीन्द्र सक्सेना विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, (2010) 1 एस.सी.सी. 684,*** के अनुसार जब तक अभियुक्त गिरफ्तार नहीं होता तब तक अग्रिम जमानत किसी भी समय दी जा सकती है। अभियोग पत्र प्रस्तुत हो चुका है, ऐसे तकनीकी आधारों पर किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से उसे वंचित नहीं किया जा सकता।

अभियुक्त के विरूद्ध चार्जशीट/परिवाद प्रस्तुत होने के बाद जमानती वारंट जारी किया गया तब भी अग्रिम जमानत का आवेदन प्रचलन योग्य होता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***हरिओम लोखंडे विरूद्ध एम.पी.एस.ई.बी., 2006 (1) एम.पी.एल.जे. 145,*** अवलोकनीय है।

75. मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तारी वारंट जारी होने की दशा में

183. न्यायदृष्टांत ***अरविंद सूद विरूद्ध रूपाली, 2003 (3) एम.पी.एल.जे. 48,*** के अनुसार मजिस्ट्रेट ने यदि गिरफ्तारी वारंट जारी किया हो तब अग्रिम जमानत आवेदन चलने योग्य होता है।

76. नियमित जमानत आवेदन खारिज होने के बाद
पुनः अग्रिम जमानत आवेदन

184. न्यायदृष्टांत ***फाजीलत मोहम्मद विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2008 एम.पी. 7,*** के अनुसार यदि किसी अभियुक्त को अग्रिम जमानत दी गयी हो और उसकी नियमित जमानत का आवेदन पत्र निरस्त कर दिया गया हो तब वरिष्ठ न्यायालय में अग्रिम जमानत आवेदन पत्र फिर चलने योग्य नहीं होगा लेकिन मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों में अग्रिम जमानत की अवधि 45 दिन के लिए बढ़ाई गयी। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***गोपीचंद्र खत्री विरूद्ध सुशील कुमार, आई.एल.आर. 2008 एम.पी. एन.ओ.सी. 85,*** अवलोकनीय है।

77. अग्रिम जमानत की अवधि

185 पूर्व में अग्रिम जमानत अभियोग पत्र पेश होने तक या एक निर्धारित अवधि तक देने की वैधानिक व्यवस्था थी लेकिन अब इस बारे में स्थिति परिवर्तित हो चुकी है और अग्रिम जमानत पूरे

मामले के लिये दी जाती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***सिद्धाराम एस. मेत्रे विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 312,*** अवलोकनीय है।

186. ऐसे अग्रिम जमानत आदेश की पालना में यदि अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची के प्रारूप 45 के अनुसार प्रतिभूति और बंधपत्र अनुसंधान अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत कर देता है तो उसे विचारण न्यायालय में फिर से जमानत प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं रहती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***श्रीमती गजरा देवी विरूद्ध स्टेट आफ ए.पी., एम.सीआर.सी. नंबर 3036/2011,*** आदेश दिनांक 18.04.2011, अवलोकनीय है।

187. जहां अनुसंधान अधिकारी ने केवल अनुसंधान तक के लिये जमानत ली है तब अभियुक्त को न्यायालय में पुनः जमानत प्रस्तुत करनी पड़ती है। इससे बचने के लिये न्यायिक मजिस्ट्रेट अपने क्षेत्र के थाना प्रभारी को या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट पूरे जिले में एक पत्र भेजकर यह निर्देश जारी कर सकते हैं कि अग्रिम जमानत आदेश के पालन में अभियुक्त की जमानत, दंड प्रक्रिया संहिता की द्वितीय अनुसूची के प्रारूप 45 के अनुसार पूरे मामले में उपस्थिति के लिये लेवें।

188. धारा 438 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत पारित आदेश की life curtail नहीं की जा सकती। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***हरनाम सिंह विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2012 एम.पी. एस.एन. 96,*** अवलोकनीय है।

189. ***यूनियन आफ इंडिया विरूद्ध पदम् नारायण अग्रवाल, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 254,*** के अनुसार ऐसा आदेश नहीं किया जा सकता कि अभियुक्त को 10 दिन का अग्रिम सूचना पत्र दिये बिना गिरफ्तार नहीं किया जायेगा। न्यायालय को ऐसा Blanket Order करने का क्षेत्राधिकार नहीं है।

78. बड़ी बैंच को रैफरेंस

190. अग्रिम जमानत क्या सीमित अवधि के लिए होना चाहिए?

विभिन्न पीठों के विरोधाभासी मतों के प्रकाश में मामला निम्न प्रश्न के लिये बड़ी बैंच को रैफर किया गयाः-

1. क्या धारा 438 दं.प्र.सं. के तहत व्यक्ति को दिया गया संरक्षण निश्चित अवधि के लिए सीमित होना चाहिए जिससे वह व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष समर्पण कर सके तथा नियमित जमानत मांग सके?

2. क्या न्यायालय द्वारा अभियुक्त को समन करने के समय व प्रक्रम पर अग्रिम जमानत की अवधि समाप्त हो जानी चाहिए?

न्यायदृष्टांत ***सुशीला अग्रवाल विरूद्ध स्टेट एन.सी.टी. देहली, 2018 (3) क्राइम्स 17 एस.सी.,*** अवलोकनीय है जिसमें उक्त रैफरेंस किया गया है।

79. क्या अपराध दर्ज होना आवश्यक है?

191. न्यायदृष्टांत ***दुर्गाशंकर गुप्ता विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2007 (2) एम.पी.एल.जे. 233,*** के अनुसार अपराध का दर्ज होना अग्रिम जमानत आवेदन की प्रचलनशीलता के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त नहीं हो सकती।

80. अग्रिम जमानत में निर्देश

192. न्यायदृष्टांत ***सुदामा चरण दास विरूद्ध स्टेट आफ उड़ीसा, (2014) 2 एस.सी.सी. 141,*** के अनुसार उच्च न्यायालय ने अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त किया और विचारण न्यायालय को निर्देश दिया कि अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर दे। यह प्रतिपादित किया गया कि ऐसा आदेश जो विचारण न्यायालय के जमानत देने या न देने की शक्तियों पर प्रतिबंद्ध लगाता है कभी पारित नहीं किया जाना चाहिये। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***रश्मि रेखा थटोई विरूद्ध स्टेट आफ उड़ीसा, (2012) 5 एस.सी.सी. 690,*** को विचार में लिया गया जिसमें यही विधि प्रतिपादित की गई थी।

193. न्यायदृष्टांत ***मंजू देवी विरूद्ध ओंकारजीत सिंह, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 1583,*** के अनुसार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 18 पर विचार करते हुए यह मत दिया गया कि परिवाद झूठा और दुर्भावनापूर्ण है, ऐसी प्रतिरक्षा को केवल विचारण के समय विचार में लिया जा सकता है। धारा 18 का बार या बाधा होने से अग्रिम जमानत देने में भूल की गई है, ऐसा माना गया है।

81. म.प्र. आबकारी अधिनियम 1915 एवं अग्रिम जमानत

194. धारा 59 ए(1) के अनुसार धारा 49ए के अधीन दंडनीय अपराध और धारा 34 (1)(ए) या (बी) के अधीन दंडनीय अपराध जहां मदिरा की मात्रा 50 बल्क लीटर से अधिक हो तब अग्रिम जमानत का कोई आवेदन ग्रहण नहीं किया जायेगा।

195. न्यायदृष्टांत ***नरेश कुमार विरूद्ध स्टेट आफ एमपी, 2004 (4) एम.पी.एच.टी. 205(डी बी),*** के अनुसार धारा 59 ए(1) के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 21 के विरूद्ध नहीं हैं।

196. यदि वरिष्ठ न्यायालय में अग्रिम जमानत के आदेश में कोई अवधि नहीं दी है और पूरे मामले के लिए अग्रिम जमानत दी है तब मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश को उस आदेश के अनुपालन में सीधे सीधे जमानत ले लेना चाहिए, किसी आवेदन की अपेक्षा नहीं करना चाहिए क्योंकि वरिष्ठ न्यायालय ने अभियुक्त को पूरे मामले के लिए अग्रिम जमानत दे दी है और अब आदेश का केवल अनुपालन होना है।

197. इस प्रकार विधिक स्थिति यह स्पष्ट होती है कि अग्रिम जमानत की शक्तियां असाधारण शक्तियां हैं जिनका उपयोग अपवाद स्वरूप मामलों में वहां करना चाहिए जहां प्रथम दृष्ट्या यह प्रतीत होता हो कि अभियुक्त को अजमानतीय अपराध के अभियोग में असत्य रूप से लिप्त किया गया है और मामला ऐसी असाधारण प्रकृति का है जिसमें इन अपवाद स्वरूप प्रयोग की जाने वाली शक्तियों का प्रयोग किया जाये। अग्रिम जमानत सामान्यतः पूरे मामले के लिए दी जाना चाहिए। यह बिंदु अभी बड़ी बैंच को रैफर किया गया है लेकिन रैफरेंस का उत्तर आने तक लेखक के मत में अग्रिम जमानत

पूरे मामले के लिए दी जाना चाहिए, सीमित अवधि के लिए नहीं क्योंकि रैफरेंस का उत्तर न आने तक पूर्व की विधि ***गुरूबख्श सिंह सिब्बा विरूद्ध स्टेट आफ पंजाब, (1980) 2 एस.सी.सी. 565,*** लागू होगी जिसमें संवैधानिक पीठ में यह प्रतिपादित किया गया है कि अग्रिम जमानत सीमित अवधि के लिए नहीं होना चाहिए।

82. जमानत की राशि युक्तियुक्त होना

198. न्यायाधीश/मजिस्ट्रेट को जमानत आदेश करते समय जमानत की राशि युक्तियुक्त रखना चाहिए। मुख्य लक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना होना चाहिए। कई बार अत्यधिक राशि की जमानत की मांग कर ली जाती है जिसका प्रबंध करना कमजोर वर्ग के अभियुक्तगण के लिए काफी खर्च वाला और कष्टप्रद होता है। अतः अभियुक्त यदि उसी न्यायक्षेत्र का स्थानीय निवासी है और उसके फरार होने की कोई संभावना अभिलेख से दर्शित नहीं होती हो तो बड़ी राशि की जमानत की मांग नहीं करना चाहिए।

83. जमानतदार के प्रपत्र

199. जमानतदार भू अधिकार और ऋण पुस्तिका पट्टा आदि दस्तावेज पेश करते हैं। इन पर विचार करते समय भी मुख्य लक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना होना चाहिए व जमानतदार यदि एक से अधिक जमानत भी दे चुका है और इसे व्यवसाय की तरह नहीं करता है तब पट्टा, पावती, विक्रय पत्र आदि दस्तावेज पेश होने पर अत्यधिक कठोर दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए।

84. जमानत निरस्ती के बारे में

200. कभी-कभी कुछ मामलों में जमानत निरस्ती के लिए धारा 437 (5) या धारा 439 (2) दं.प्र.सं के तहत आवेदन प्रस्तुत होते हैं। सामान्यतः जमानत निरस्ती का आदेश अपवाद स्वरूप पस्थितियों में और जहां बहुत अच्छे कारण उपलब्ध हों वहीं किये जाने चाहिए।

201. ऐसे आवेदन प्राप्त होने पर उन्हें विविध आपराधिक प्रकरण की पंजी में दर्ज करना चाहिए। अभियुक्त या अभियुक्तगण को कारण बताओ सूचना पत्र जारी करना चाहिए। यदि वे उपस्थित होते हैं और कोई जवाब प्रस्तुत करते हैं तो उसे अभिलेख पर लेना चाहिए, आवश्यक होने पर साक्ष्य भी अभिलिखित कर सकते हैं और फिर ये निष्कर्ष देना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने जमानत की किन्हीं शर्तों का उल्लंघन किया है और क्या उसकी जमानत निरस्त करने के पर्याप्त कारण अभिलेख पर हैं। एक न्यायिक आदेश ग्रीन पेपर पर पारित करना चाहिए।

202. यदि अभियुक्त ने जमानत की स्वतंत्रता का दुरूपयोग किया हो, समान अपराध दोहराया हो, गवाहों को प्रभावित करने का प्रयास किया हो, विदेश भाग जाने का प्रयास कर रहा हो, अनुसंधान में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहा हो, अनुसंधान अधिकारी या जमानतदार की पहुंच के बाहर जाने का प्रयास कर रहा हो, तभी जमानत निरस्त किया जाना चाहिए। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***असलम बी देसाई विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, (1992) 4 एस.सी.सी. 272, महबूब दाउद शेख विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, (2004) 2 एस.सी.सी. 362 व सेन्ट्रल ब्यूरो आफ इन्वेस्टीगेशन विरूद्ध सुब्रमणि गोपाल कृष्ण, (2011) 5 एस.सी.सी. 296,*** अवलोकनीय है।

203. न्यायदृष्टांत ***अशोक सिंह विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., 2015 (1) एम.पी.एच.टी. 29,*** के मामले में यह प्रतिपादित किया गया है कि जमानत निम्न आधारों पर खारिज की जा सकती हैं:-

1. जब अभियुक्त अनुसंधान या विचारण के दौरान गवाहों को प्रभावित करते हुये पाया जाये।
2. जब अभियुक्त जमानत पर रहते हुये समान प्रकृति का अपराध या कोई गंभीर अपराध कारित करता है।
3. जब अभियुक्त फरार हो जाता है और इस कारण प्रकरण का विचारण विलंबित होता है।
4. जब अभियुक्त द्वारा कारित अपराध समाज में गंभीर कानून और व्यवस्था की स्थिति उत्पन्न कर दे और अभियुक्त शांतिपूर्ण जीवन जी रहे लोगों के लिये एक संकट बन जाये।
5. यदि उच्च न्यायालय यह पाती है कि अधीनस्थ न्यायालय ने जमानत देते समय अपनी न्यायिक शक्तियों का गलत तरीके से प्रयोग किया है।
6. यदि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय यह पाते हैं कि अभियुक्त ने जमानत के विशेषाधिकार का दुरूपयोग किया है।
7. यदि अभियुक्त का स्वयं का ही जीवन खतरे में हो।

204. न्यायदृष्टांत ***विकास रघुवंशी विरूद्ध स्टेट आफ एम.पी., आई.एल.आर. 2015 एम.पी. 268,*** के अनुसार जमानत निरस्त करने का आवेदन पेश करने के लिये लोकस स्टेण्डी - जनता का कोई भी सदस्य उच्च न्यायालय को इस संबंध में उसकी स्व-प्रेरणा की शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता को याद दिलाने के लिये आवेदन कर सकता है। इस मामले में यह भी प्रतिपादित किया गया कि यदि जमानत का दुरूपयोग किया गया हो तो उसे निरस्त किया जा सकता है।

205. न्यायदृष्टांत ***पूजा भाटिया विरूद्ध विष्णु नारायण शिवपुरी, 2014 (2) क्राइम्स 50 एस.सी.,*** में यह प्रतिपादित किया गया कि धारा 437 (5) दं.प्र.सं. के तहत जमानत निरस्त करते समय अभियुक्त का पश्चातवर्ती आचरण एक सुसंगत कारक होता है।

206. इस मामले में जमानत निरस्ती के अन्य सिद्धांत पुनः बतलाये गये मामले में न्यायदृष्टांत ***मंजीत प्रकाश विरूद्ध शोभा देवी, (2009) 13 एस.सी.सी. 785 और रघुबीर सिंह विरूद्ध स्टेट आफ बिहार, (1986) 4 एस.सी.सी. 481,*** को विचार में लिया गया जिसमें धारा 437 (1) एवं 439 (2) दं.प्र.सं. के अंतर्गत जमानत निरस्त करने के निम्न आधार बतलाये गयेः-

1. जब अभियुक्त स्वतंत्रता का दुरूपयोग समान प्रकार की आपराधिक गतिविधियों में संलग्न रहकर करता है।
2. अनुसंधान में हस्तक्षेप करता है।
3. गवाहों को प्रभावित करने का प्रयास करता है।
4. गवाहों को धमकाता है या इसी प्रकार की गतिविधियां करता है जिससे निर्बाध अनुसंधान में रूकावट होगी।

5. उसके अन्य देश में भागने की संभावना हो।

6. वह अनुसंधान एजेंसी को मिल न सके, इस कारण छिपने के प्रयास किये हों।

7. जमानतदार की पहुंच से बाहर जाने का प्रयास किया हो।

इस मामले में यह भी कहा गया है कि ये आधार केवल उदाहरण स्वरूप हैं संपूर्ण नहीं हैं। जमानत का निरस्त करना एक कठोर आदेश होता है क्योंकि वह किसी की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है, अतः इसे असानी से नहीं लेना चाहिए।

207. न्यायदृष्टांत ***कनवर सिंह मीणा विरूद्ध स्टेट आफ राजस्थान, ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 296,*** के अनुसार जहां जमानत आदेश विधिक रूप से त्रुटिपूर्ण हो, जो कि न्याय की हानि करने वाला हो, तो ऐसे आदेश को धारा 439 (2) दं.प्र.सं. के तहत निरस्त किया जा सकता है।

208. न्यायदृष्टांत ***शहीद खान विरूद्ध जलील खान, आई.एल.आर. 2015 एम.पी. 809,*** के अनुसार यदि एक बार जमानत दे दी जाती है तो उसे यांत्रिक तरीके से, बिना इन तथ्यों पर विचार किये कि क्या ऐसी परिस्थितियां, जिसमें एक पक्षपात रहित विचारण के लिए अभियुक्त को जमानत पर रखना उचित नहीं है, खारिज नहीं की जा सकती।

209. न्यायदृष्टांत ***मिस एक्स विरूद्ध स्टेट आफ तेलंगाना, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 2446,*** के अनुसार जमानत का निरस्तीकरण केवल तब किया जा सकता है जब बीच में (जमानत स्वीकार करने को निरस्ती का आवेदन प्रस्तुत होने के बीच) उत्पन्न होने वाली घटनाओं के आधार पर एक दृढ़ मामला जमानत निरस्ती का बनता हो। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***दौलतराम विरूद्ध स्टेट आफ तेलंगाना, (1995) 1 एस.सी.सी. 349, सी.बी.आई. हैदराबाद विरूद्ध सुब्रमणि गोपालकृष्णन, (2011) 5 एस.सी.सी. 296*** व ***दाताराम सिंह विरूद्ध स्टेट आफ यू.पी., (2018) 2 एस.सी.सी 285,*** को विचार में लिया गया है।

210. न्यायदृष्टांत ***स्टेट आफ बिहार विरूद्ध राजवल्लभ प्रसाद, 2017 (1) ए.एन.जे. (एस.सी.) (सप्लीमेंट) 10,*** के मामले में प्रतिपादित किया गया कि जघन्य अपराध में लिप्त अभियुक्त को जमानत पर रिहा किया जाता है तो वह अभियोजन के मामले को कमजोर करता है, समाज पर विपरीत प्रभाव कारित करता है। अभियुक्त के विरूद्ध धारा 82, 83 दं.प्र.सं. की कार्यवाही अग्रेषित की गई थी क्योंकि वह गिरफ्तारी से बच रहा था। अभियोक्त्री की तरफ से साक्षीगण एवं उसके परिवार के सदस्यों को धमकाये जाने की शिकायत थी। धारा 29 पॉक्सो एक्ट की उपधारणा भी थी। जमानत स्वीकार करने में त्रुटि की गई है, ऐसा माना गया।

211. न्यायदृष्टांत ***दीनू भाई, भोगा भाई सोलंकी विरूद्ध स्टेट आफ महाराष्ट्र, 2017 (4) क्राइम्स 407,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध खनन के विरूद्ध शिकायत करने वाले कार्यकर्ता की हत्या के मामले में अभियुक्त ने साक्षियों को जमानत पर रहते हुये भयभीत और अभित्रस्त किया। अभियुक्त लोकसभा सदस्य है। जमानत निरस्त की गई और विचारण के दिनों को छोड़कर अभियुक्त का राज्य में प्रवेश निषेध किया। 8 प्रत्यक्ष साक्षी के कथन होने तक जमानत निरस्त करने के निर्देश दिये गये।

85. उपसंहार

212. उपरोक्त विवेचन से जमानत के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है:-

1. धारा 436 दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार जमानतीय मामले में प्रथम बार उपस्थित होने पर जमानत अभियुक्त का अधिकार है। उसे आवेदन देने की भी आवश्यकता नहीं है और मजिस्ट्रेट को जमानतीय मामले में जमानत देने या न देने के बारे में कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं होता है। उसे प्रथम बार जमानत देना ही होता है।
2. धारा 436ए दंड प्रक्रिया संहिता का प्रथम भाग अर्द्ध आज्ञापक है जिसमें मजिस्ट्रेट यदि अभियुक्त कारावास की आधी अवधि तक अभिरक्षा में रह चुका है तो उसे जमानत का लाभ मिलना चाहिए लेकिन मजिस्ट्रेट कारण लिखते हुए ऐसा आवेदन खारिज कर सकता है लेकिन धारा 436ए का दूसरा भाग आज्ञापक है अर्थात् अभियुक्त अपराध में निहित दंड की सीमा तक यदि अभिरक्षा में रह चुका है तो मजिस्ट्रेट को उसे जमानत देना ही होगा। यहां उसे कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है।
3. धारा 167(2) दं.प्र.सं. के तहत बाध्यताकारी जमानत दिया जाना आज्ञापक है और यदि अभियुक्त मृत्यु या आजीवन कारावास या न्यूनतम 10 वर्ष की अवधि के दंडनीय अपराध में लगातार 90 दिन और अन्य अपराधों में लगातार 60 दिन से अभिरक्षा में है तो उसे क्रमशः 91वें दिन एवं 61वें दिन बाध्यकारी जमानत का अधिकार उत्पन्न हो जाता है। मजिस्ट्रेट को कोई विवेकाधिकार प्राप्त नहीं होता है। अपराध की गंभीरता भी विचारणीय नहीं होती है।
4. धारा 437 दंड प्रक्रिया संहिता में जमानत देना या न देना मजिस्ट्रेट के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है और यह विवेकाधिकार कुछ न्यायिक सिद्धांतों से शासित होता है।
5. धारा 437 (6) दं.प्र.सं. के अधीन जमानत आवेदन पर आदेश करना आज्ञापक है, जमानत लेना आज्ञापक नहीं है। मजिस्ट्रेट कारण लिखते हुए यदि मामला अपवाद स्वरूप का है तो आवेदन खारिज कर सकता है।
6. धारा 439 दं.प्र.सं. में जमानत देना या न देना सत्र न्यायाधीश या अपर सत्र न्यायाधीश के विवेकाधिकार पर निर्भर है जो कुछ न्यायिक सिद्धांतों से शासित होता है।
7. धारा 438 दं.प्र.सं. में अग्रिम जमानत असाधारण स्वरूप की शक्ति है जो अपवाद स्वरूप मामलों में जहां अभियुक्त को अजमानतीय अपराध में असत्य लिप्त करने की संभावना प्रथम दृष्ट्या प्रतीत होती है वहीं दिया जाता है।
8. यदि जमानत के बारे में विधायिका ने कोई बाधा सृजित की है जैसे धारा 37 एन.डी.पी.एस. एक्ट या धारा 59 ए(2) मध्यप्रदेश आबकारी अधिनियम आदि और वरिष्ठ न्यायालय इस विधिक बाधा को विचार में लिए बिना यदि किसी अभियुक्त को जमानत का लाभ दे देती है तो सह-अभियुक्त को समानता के अधिकार के सिद्धांत के आधार पर जमानत का लाभ दिये जाने की पात्रता नहीं होती है।

9. धारा 167 (2) दं.प्र.सं के तहत दी गयी बाध्यताकारी जमानत के कारण सह-अभियुक्त को समानता के सिद्धांत के आधार पर जमानत की पात्रता नहीं होती है क्योंकि यह जमानत एक निश्चित अवधि में अभियोग पत्र प्रस्तुत न किए जाने के कारण अभियुक्त को एक विशेष जमानत का अधिकार देती है।

10. परिस्थितियों में परिवर्तन के बिना यदि द्वितीय जमानत आवेदन पत्र स्वीकार किया जाता है तो इसे अपने ही आदेश का पुनरावलोकन माना जाता है जो दं.प्र.सं. में अनुमत नहीं है।

11. यदि किसी अभियुक्त का एक जमानत आवेदन पत्र किसी एक न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट ने सुना और निराकृत किया है तो उसके पश्चात्वर्ती सभी आवेदन पत्र उसी न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट के सामने सुनवाई के लिए रखा जाना चाहिए। ये स्थिति अभियोग पत्र पेश होने तक के लिए है। अभियोग पत्र पेश हो जाने पर जिस न्यायालय में मामला चल रहा है या सुनवाई के लिए भेजा गया है उसे पश्चात्वर्ती सभी जमानत आवेदन पत्र सुनने की शक्तियां होती हैं।

12. यदि वरिष्ठ न्यायालय द्वारा ऐसे निर्देश हों कि अभियुक्त विचारण न्यायालय में या मजिस्ट्रेट के समक्ष जमानत आवेदन पेश करेगा और उसे वह न्यायालय उसी दिन निराकृत करेगी या अनुचित विलंब के बिना निराकृत करेगी तो इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि ऐसे निर्देशो का तात्पर्य यह है कि जमानत देना ही है। यदि मामला जमानत योग्य है तो जमानत दी जाना चाहिए अन्यथा खारिज भी कर सकते हैं।

13. किसी भी मजिस्ट्रेट को किसी भी विशेष अधिनियम के मामले में प्रथम बार अभिरक्षा देने में दं.प्र.सं. में कोई रोक नहीं है। अतः विशेष अधिनियम में भी मजिस्ट्रेट प्रथम रिमांड दे सकता है।

14. रिमांड ड्यूटी के दौरान यदि वरिष्ठ न्यायालय का कोई आदेश पेश होता है जिसमें विचारण न्यायालय के संतोषप्रद जमानत पेश करने के निर्देश हों तो ड्यूटी मजिस्ट्रेट ऐसे आदेश के अनुपालन में जमानत मुचलका लेकर तसदीक कर सकता है क्योंकि वह उस दिन विचारण न्यायालय के आवश्यक कार्य के लिए प्रभारी होता है। वरिष्ठ न्यायालय के आदेशानुसार जमानत तसदीक करना एक प्रशासकीय कार्य भी माना जाता है।

अभिरक्षा, जमानत, अग्रिम जमानत, जमानत निरस्त करने के बारे में उक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यदि आवेदन पत्रों का निराकरण करेंगे तो कोई कठिनाई नहीं आएगी। हमें भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्रत्येक भारतीय नागरिक को जो मौलिक अधिकार दिया गया है उसे ध्यान में रखना है और सामाजिक शांति को भी ध्यान में रखना है और दोनों के बीच एक उचित संतुलन बनाते हुए दांडिक विधि शास्त्र के मूलभूत सिद्धांत ''बेल नॉट जेल'' को लागू करना है और ''जेल नॉट बेल'' का जो सिद्धांत पिछले कुछ वर्षों से दिखलाई दे रहा है उससे मुक्ति पाना है।

•

मोटर यान अधिनियम के अधीन मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण

प्रदीप कुमार व्यास

संचालक

मध्यप्रदेश राज्य न्यायिक अकादमी

किसी स्त्री या पुरूष के जीवन का मूल्य तय करना एक अत्यंत कठिन कार्य है। किसी भी राशि या मूल्य से एक व्यक्ति की कमी को पूरा नहीं किया जा सकता। माता-पिता के लिये उनकी संतान की कीमत, संतान के लिये माता या पिता की कीमत, पति के लिये पत्नी की या पत्नी के लिये पति की कीमत निकालना अत्यंत कठिन कार्य है लेकिन कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं। मोटर दुर्घटना दावा अधिकरणों को विधायिका ने इसी समस्या के समाधान का और किसी स्त्री या पुरूष की वाहन दुर्घटना में मृत्यु हो जाने पर प्रतिकर तय करने का एक महत्वपूर्ण एवं कठिन दायित्व सौंपा है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न न्यायदृष्टांतों के माध्यम से इस महत्वपूर्ण कार्य को आसान करने का समय-समय पर प्रयास किया है। जिन न्यायदृष्टांतों को ध्यान में रखना होता है उनमें महत्वपूर्ण न्यायदृष्टांत ***सरला वर्मा विरूद्ध देहली ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन, 2009 ए.सी.जे. 1298 एस.सी.,*** का है जो मृत्यु प्रकरणों के मामले में लैण्ड मार्क डिसीजन है जिसने मृत्यु प्रकरणों के मामलों में प्रतिकर निर्धारण में एकरूपता लाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है।

किसी व्यक्ति की वाहन दुर्घटना में मृत्यु हो जाने पर उसके वैध प्रतिनिधि एक क्लेम प्रस्तुत करते हैं जो

1. वहां प्रस्तुत किया जा सकता है जिस अधिकरण के क्षेत्राधिकार में दुर्घटना हुई है अथवा,
2. जहाँ मृतक के वैध प्रतिनिधि निवास करते हैं अथवा,
3. जहाँ विपक्षी या उनमें से कोई निवास करता है।

ऐसा क्लेम प्रस्तुत होने पर विपक्षी का जबाव लेकर, वाद प्रश्न विरचित कर, उभयपक्ष की साक्ष्य लेकर और तर्क सुनकर, अधिनिर्णय पारित करना होता है।

इन मामलों में एक वाद प्रश्न यह रहता है कि

''क्या आवेदकगण मृतक के वैध प्रतिनिधि होने से प्रतिकर पाने के पात्र हैं? यदि हां, तो किससे व कितना?''

इस वाद प्रश्न के निराकरण में हमें क्या प्रक्रिया अपनाना है, इस पर हम चर्चा करेंगे।

1. मृत्यु प्रकरणों में प्रतिकर निर्धारण की प्रक्रिया-

मृत्यु प्रकरणों में न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में प्रतिकर के निर्धारण की प्रक्रिया और उसके स्टैप्स बतलाये गये हैं जिन्हें तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ के न्यायदृष्टांत ***रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन, 2013 ए.सी.जे. 1253 एस.सी.,*** में निर्णय चरण 40 (4) में एप्रूव किया है और यह मत दिया है कि न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) के निर्णय चरण 9 में प्रतिकर निर्धारण के लिए जो चरण और दिशा निर्देश दिये हैं, उन्हें सभी अधिकरण फॉलो करें।

पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ के नवीनतम न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी, 2017 (4) एम.ए.सी.डी. 1375 (एस.सी.)***, निर्णय चरण-61 (V) एवं (VI) में यह प्रतिपादित किया गया है कि मल्टीप्लीसेंड, व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च, गुणांक के चयन में अधिकरण न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) के निर्णय चरण-30 से 32 एवं 42 से मार्गदर्शन लेंवे।

इस तरह न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) के अनुसार आवेदक को मृत्यु प्रकरणों में मूल रूप से तीन तथ्य स्थापित करने की आवश्यकता होती है:-

ए. मृतक की उम्र।

बी. मृतक की आय।

सी. आश्रितों की संख्या।

अधिकरणों को 'आश्रितता की हानि' या 'लाॅस आॅफ डिपेंडेन्सी' निर्धारित करने में निम्न बिन्दु निर्धारित करने होते हैं:-

1. एडीशन/डिडक्शन या जोड़ना/घटाना जो कि आय में किए जाने हैं।
2. मृतक के व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च संबंधी कटौती।
3. मृतक की उम्र के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाला गुणांक।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में मृत्यु प्रकरणों में प्रतिकर के निर्धारण में एकरूपता और स्थिरता लाने के लिए निम्नलिखित सुस्थापित कदम बतलाये हैं:-

प्रथम चरण या प्रथम स्टेप - गुण्य या मल्टीप्लीसेंड का निर्धारणः

मृतक की वार्षिक आय निकालना चाहिए और इस आय में भविष्य की संभावनायें जोड़ना चाहिए। उसमें से उसका व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च कम करना चाहिए और बची हुई आय मृतक परिवार के आश्रित सदस्यों पर खर्च करता था, ऐसा विचार में लेते हुए मल्टीप्लीसेंड निकालना चाहिए।

भविष्य की संभावनाओं पर आगे चर्चा करेंगे।

द्वितीय चरण या द्वितीय स्टेप - गुणांक या मल्टीप्लायर का निर्धारणः

मृतक की उम्र को ध्यान में रखते हुए गुणांक का चयन करना चाहिए जिसके लिए न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में बनाई गई टेबिल या तालिका को ध्यान में रखना चाहिए।

तालिका/टेबिल नीचे दी गई है।

तृतीय चरण या तृतीय स्टेप -

गुण्य या मल्टीप्लीसेंड को गुणांक या मल्टीप्लायर से गुणा करना चाहिए।

प्राप्त राशि में साहचर्य हानि एवं दाह संस्कार खर्च जोड़ते हैं। इस प्रकार प्रतिकर की राशि की गणना की जाती है।

2. उम्र का निर्धारण-

मृतक की उम्र तात्विक होती है, अतः अधिकरणों को मूलतः मृतक की उम्र निकालना होती है।

चूंकि आश्रितों की संख्या के अनुसार मृतक के व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च की रेन्ज बदल जाती है, अतः यह परीक्षण भी कर लेना चाहिए कि जितने आश्रित बतलाये गये हैं उतने हैं भी या नहीं और उनकी उम्र क्या है।

उम्र के निर्धारण के लिए निम्नलिखित दस्तावेजों से सहायता मिल सकती हैः-

1.	आधारकार्ड	2.	चालन अनुज्ञप्ति
3.	आयकर का पेनकार्ड	4.	मतदाता परिचय पत्र
5.	स्कूल का रिकॉर्ड	6.	शव परीक्षण प्रतिवेदन, एम.एल.सी.
7.	राशन कार्ड	8.	जन्म प्रमाण पत्र
9.	बी.पी.एल. कार्ड या गरीबी रेखा के नीचे के लोगों का कार्ड	10.	मौखिक साक्ष्य

अधिकरणों को प्रश्न पूछकर उक्त दस्तावेजों की स्थिति स्पष्ट करना चाहिए और प्रारंभिक साक्ष्य के समय ही इस बारे में उचित कदम उठा लेना चाहिए।

चूंकि गुणांक प्रयुक्त करते समय उक्त तालिका के अनुसार पांच वर्ष की रेन्ज में गुणांक एक ही रहता है, अतः उक्त में से कोई दस्तावेज न हो, तब भी मौखिक साक्ष्य से लगभग उम्र निकालना चाहिए।

3. आय या आमदनी का निर्धारण-

आमदनी के निर्धारण में मौखिक साक्ष्य, वेतन पर्ची, आयकर रिटर्न आदि से सहायता ले सकते हैं। आमदनी या आय के बारे में महत्वपूर्ण वैधानिक स्थितियाँ निम्न प्रकार से हैः-

1. गृह स्वामिनी या हाउस वाईफ के मामले मेंः- न्यायदृष्टांत ***लता वाधवा विरूद्ध स्टेट आफ बिहार, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 3218,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ निर्णय चरण 10 के अनुसार गृह स्वामिनी की मृत्यु के प्रतिकर के मामलों में उसके द्वारा घर में दी जाने वाली सेवाओं को देखें तो कम से कम 3000/- रूपये प्रतिमाह 34 से 59 वर्ष के बीच की उम्र के मामलों में मानना चाहिए और 62 से 72 वर्ष की उम्र में 20,000/- रूपये प्रतिवर्ष मानना चाहिए।

इसी मामले में यह भी कहा गया कि हाउस वाईफ की मृत्यु के प्रतिकर के मामलों में व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च नहीं काटना चाहिए।

न्यायदृष्टांत ***अरूण कुमार अग्रवाल विरूद्ध नेशनल इन्श्योरेन्स कंपनी लिमिटेड, (2010) 9 एस.सी.सी. 218,*** के मामले में यह अभिमत दिया गया है कि हाउस वाईफ के मामले में प्रतिकर निर्धारण के उद्देश्य से हाउस वाईफ/माता की सेवाओं का कुछ आर्थिक अनुमानित मूल्य होना चाहिए और मोटर यान अधिनियम की द्वितीय अनुसूची के अनुच्छेद 6 पर विश्वास किया जा सकता है, चाहे मामला धारा 166 मोटर यान अधिनियम का हो।

न्यायदृष्टांत ***जितेन्द्र के. त्रिवेदी विरूद्ध कासम दाउद, 2015 ए.सी.जी. 708,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि एक गृह स्वामिनी द्वारा किये गये गृह कार्य की कीमत निकालना कठिन है। उसके द्वारा की गई घरेलू सेवाओं और घर में किये गये योगदान को देखते हुये यह युक्तियुक्त होगा कि उसकी आमदनी 3,000/- रूपये प्रतिमाह नियत की जावे।

न्यायदृष्टांत ***बृजलाल विरूद्ध विजय सिंह, 2011 (3) एम.पी.एल.जे. 314,*** के मामले में 28 वर्ष की उम्र की हाउस वाईफ की मृत्यु के मामले में उसकी आमदनी 3000/- रूपये मानते हुए और 1/4 भाग व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च काटते हुए प्रतिकर दिलवाया गया।

न्यायदृष्टांत ***लक्ष्मीदर नायक विरूद्ध जुगलकिशोर, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 204,*** में एक कृषि मजदूर गृहणी की मासिक आय 4500/- रूपये मानकर 1/3 भाग व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च काटते हुये 3000/- प्रतिमाह आश्रितता प्रमाणित मानी गई।

2. आमदनी का प्रमाण न होने पर:- जहां मृतक की आमदनी के बारे में कोई विश्वसनीय साक्ष्य अभिलेख पर न हो या जो साक्ष्य दी गई है वह अतिरंजित होने से अधिकरण विश्वसनीय नहीं पाता है, वहां दुर्घटना के समय जो न्यूनतम मजदूरी एक मजदूर को दी जाती थी उसे नोशनल इन्कम मानकर प्रतिकर दिलवाया गया। दुर्घटना दिनांक 14.11.2004 को सर्वोच्च न्यायालय ने 3000/- रूपये प्रतिमाह नोशनल इन्कम मानकर प्रतिकर दिलवाया। अवलोकनीय न्यायदृष्टांत ***गोविन्द यादव विरूद्ध न्यू इंडिया इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड, (2011) 10 एस.सी.सी. 683*** है।

न्यायदृष्टांत ***रामजी लाल विरूद्ध ओंकार लाल, 2004 ए.सी.जे. 238 एम.पी. (डी.बी.),*** के मामले में यह अभिमत दिया गया है कि मृतक कलेक्टर द्वारा निर्धारित न्यूनतम वेतन अर्जित करता था। यह सुरक्षित रूप से उपधारित किया जा सकता है कि 1993 में न्यूनतम मजदूरी 40/- रूपये प्रतिदिन के लगभग थी और एक माह में 25 दिन काम किया जाता है। यह मानते हुए मासिक आमदनी 1000/- रूपये और वार्षिक आमदनी 12000/- रूपये मानकर प्रतिकर निर्धारित किया गया।

न्यायदृष्टांत ***किरण देवी विरूद्ध सुरजीत यादव, 2 (2010) ए.सी.सी. 289,*** दिल्ली उच्च न्यायालय के मामले में 44 वर्ष के व्यक्ति की मृत्यु के मामले में जहां आमदनी का कोई प्रमाण नहीं था, वहां दुर्घटना के समय राज्य सरकार के द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी और उसमें वृद्धि का ज्युडीशियल नोटिस लेते हुए अवार्ॅड किया गया।

मृतक टेक्सी ड्राईवर 33 वर्ष का था। उसकी आमदनी के बारे में निश्चित साक्ष्य नहीं थी। 3000/- रूपये मासिक आमदनी मानकर प्रतिकर निर्धारित किया गया। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***न्यू इंडिया एंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध कल्पना, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 1243,*** अवलोकनीय है।

मृतक 19 वर्षीय ट्रक क्लीनर था। उसकी आमदनी 4250/- रूपये मानते हुये प्रतिकर दिलवाया गया। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***नाथालड्डा हरिजन विरूद्ध विजय बहरा, 2016 ए.सी.जे. 2398 एस.सी.,*** अवलोकनीय है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के तहत सक्षम प्राधिकारी कुशल और अकुशल श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी घोषित करते हैं, जिसके बारे में न्यायालय धारा 57 भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत न्यायिक अवेक्षा या ज्यूडिशियल नोटिस ले सकते हैं।

न्यायदृष्टांत ***सुखदेवी विरूद्ध देवेन्द्र कुमार, आई.एल.आर. 2014 एम.पी. 172,*** के अनुसार जहां मृतक के वैध प्रतिनिधि मृतक की आमदनी के बारे में कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं लाते हैं, वहां दावा अधिकरण को मूल्य सूचकांक में वृद्धि और न्यूनतम मजदूरी में इसी कारण बढ़ोत्तरी के बारे में

ज्यूडिशियल नोटिस लेना चाहिये और मृतक की आय औसत न्यूनतम मजदूरी को विचार में लेकर गणना करना चाहिये। मामले में न्यायदृष्टांत ***कनवर देवी विरूद्ध बंसल रोड़वेज, 2008 ए.सी.जे. 2182 और नेशनल इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड विरूद्ध रेणू देवी, (2008) 3 ए.सी.सी. 134,*** को विचार में लिया गया।

एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाकर देखें तो कुशल मजदूर की मासिक आय 5 से 6 हजार रूपये प्रतिमाह और अकुशल मजदूर की मासिक आय 4 से 5 हजार रूपये प्रतिमाह होना उपधारित किया जा सकता है।

3. कृषि से आय के मामले:-जहां कृषि से आमदनी होती है, वहां आमदनी की हानि का सामान्य नियम प्रत्यक्ष रूप से लागू नहीं होता है।

कृषि भूमि उत्तराधिकारियों को उत्तराधिकार में मिल जाती है।

कृषि से आय के मामलों में न्यायदृष्टांत ***पुन्नू स्वामी उर्फ कृष्णन् विरूद्ध वी.ए. माहन्नन, ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 2014,*** के मामले में नोशनल इन्कम के आधार पर प्रतिकर निर्धारण किया गया था जिसे उचित माना गया।

न्यायदृष्टांत ***स्टेट आॅफ हरियाणा विरूद्ध जसवीर कौर, (2003) 7 एस.सी.सी. 484,*** के मामले में मृतक की आमदनी 3000/- रूपये मानकर प्रतिकर निर्धारित किया गया।

न्यायदृष्टांत ***न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध चारली, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 2157,*** के मामले में भी कृषि भूमि से आय अर्जित होती है, अतः आमदनी की हानि का सामान्य नियम लागू न होने की विधि प्रतिपादित की गई।

मृतक उम्र 47 वर्ष एक कृषक था जिसके पास 12 एकड़ कृषि भूमि थी और वह दूध का व्यवसाय भी करता था। अधिकरण ने उसकी आमदनी 2,000/- रूपये प्रतिमाह निर्धारित की। माननीय उच्च न्यायालय ने 5,000/- रूपये प्रतिमाह आमदनी निर्धारित की। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***श्रीमती कृष्णा तिवारी विरूद्ध रामकुमार, आई.एल.आर. 2015 एम.पी. 977,*** अवलोकनीय है।

4. जहां आमदनी आहत की मृत्यु के बाद भी जारी रहेः- कुछ मामलों में आहत की मृत्यु के बाद भी आमदनी जारी रहती है वहां सिर्फ यह देखना होगा कि आहत की मृत्यु के बाद उस आमदनी को जारी रखने में क्या अतिरिक्त खर्च करने पड़े जैसे तीन बस का मालिक जिसे कृषि से भी आय होती थी और एक बस वह स्वयं चलाता था। उसकी मृत्यु के बाद कृषि की आमदनी और बसों से प्राप्त आमदनी जारी रही, केवल एक बस का ड्राइवर और एक प्रबंधक रखना पड़ा। अतः एक ड्राइवर और एक मैनेजर के वेतन को आधार मानकर उसके आधार पर प्रतिकर निर्धारित किया गया। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध योगेश देवी, (2012) 3 एस.सी.सी. 613,*** अवलोकनीय है।

5. डी.ए. एण्ड एच.आर.ए.:- किसी कर्मचारी को वेतन के साथ जो डियरनेस अलाउन्स और हाउस रेन्ट अलाउन्स मिलता है, उसका लाभ कर्मचारी को अकेले को न मिलकर उसके पूरे परिवार को मिलता है। अतः इस राशि को भी मृतक की आय के निर्धारण में जोड़ना चाहिए। इस संबंध में

न्यायदृष्टांत ***रघुवीर सिंह विरूद्ध हरि सिंह, (2009) 15 एस.सी.सी. 363*** एवं ***मोहम्मद अमीरूदीन विरूद्ध यूनाईटेड इंडिया इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड, (2011) 1 एस.सी.सी. 304,*** अवलोकनीय हैं।

मृतक की आय को जोड़ने में एच.आर.ए., मेडिकल भत्ता, सीटी कम्पेन्सेटरी अलाउन्स, जो कटौती ई.पी.एफ. और जी.आई.एस. में होती है, उसे भी जोड़ना चाहिए। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***सुनील शर्मा विरूद्ध बछिन्द्र सिंह, 2011 ए.आई.आर. एस.सी.डब्लू. 2811,*** अवलोकनीय है।

6. ट्यूशन से आयः- किसी भी शासकीय सेवक को ट्यूशन की अनुमति नहीं होती है। अतः ट्यूशन की आमदनी मृतक की आय में नहीं जोड़ी जा सकती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध सरोज, 2007 ए.सी.जे. 558 एम.पी. (डी.बी.),*** अवलोकनीय है।

7. वेतन पुनरीक्षणः- मृत्यु के बाद और अन्तिम सुनवाई के पहले यदि वेतन पुनरीक्षण होता है तो इसे मृतक की आमदनी में विचार में नहीं लिया जा सकता। इस संबंध में सरला वर्मा (उपरोक्त) का न्यायदृष्टांत अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***ओरियन्टल इन्श्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध जस्सुबैन, ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 1734,*** के मामले में मृतक का वेतन उसकी मृत्यु के समय भूतलक्षी प्रभाव से पुनरीक्षित नहीं हुआ था, केवल बाद में वेतन पुनरीक्षित हुआ इसलिए उसे विचार में नहीं लिया जा सकता है, ऐसा अभिनिर्धारित किया गया।

8. बान्ड, ब्याज, अवयस्क पुत्र की आमदनी:- मृतक ने आयकर रिर्टन में बान्ड की आमदनी उसके अवयस्क पुत्र की आमदनी तथा उसके व्यापार की आमदनी दिखलाई थी। यह पूरी आमदनी मृतक की आमदनी के रूप में नहीं मानी जा सकती। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***न्यू इंडिया एश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रमीला, 2007 ए.सी.जे. 2840 (डी.बी.),*** अवलोकनीय है।

मृतक ने उसके आयकर रिटर्न में ब्याज की आमदनी दिखलाई। उसे मृतक की आमदनी में नहीं जोड़ा जा सकता क्योंकि यह ब्याज आश्रितों को वैसे भी मिलता रहेगा। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***प्रेमचंद्र खाटवानी विरूद्ध गोपाल ठाकरे, 2005 ए.सी.जे. 980 एम.पी. (डी.बी.),*** अवलोकनीय है।

9. कन्वेन्स अलाउन्स और ओवर टाइमः- मृतक की आमदनी जोड़ने में कन्वेन्स अलाउन्स और ओवर टाइम कम कर देना चाहिए। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***सुखमणि विरूद्ध जगदीश, 2011 (4) एम.पी.एच.टी. 261,*** अवलोकनीय है।

10. जी.पी.एफ., एल.आई.सी., लोन की किश्तः- वेतन प्रमाण पत्र में जी.पी.एफ, एल.आई.सी., रीपेमेन्ट आफ लोन की कटौती को मृतक की आमदनी में से कम नहीं करना चाहिए, केवल आयकर और सरचार्ज की कटौती को ही कम करना चाहिए। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***श्यामवती शर्मा विरूद्ध करम सिंह, एम.ए.सी.डी. 2010 (एस.सी.) 245,*** अवलोकनीय है।

वास्तविक वेतन में आयकर काटने के बाद जो वेतन बचता है, उसे माना गया है। इस संबंध में सरला वर्मा (उपरोक्त) एवं ***विमल कनवर विरूद्ध किशोर दान, 2013 ए.सी.जे. 1441 एस.सी.,*** का न्यायदृष्टांत अवलोकनीय है।

उक्त न्यायदृष्टांत ***विमल कनवर*** (उपरोक्त) के अनुसार भविष्य निधि, पेंशन, बीमा से मिली राशि को मोटरयान अधिनियम के तहत वित्तीय लाभ नहीं माना गया है और इनका कटोत्रा या डिडक्शन नहीं करना चाहिए।

11. अनुकंपा नियुक्ति:- न्यायदृष्टांत ***भाखरा बेस मेनेजमेन्ट बोर्ड विरूद्ध श्रीमति कान्ता अग्रवाल, ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 3118,*** में यह प्रतिपादित किया गया है कि वाहन दुर्घटना में मृत्यु के प्रतिकर के मामले में मृतक की दुर्घटना में हुई मृत्यु से उसके वैध प्रतिनिधियों को जो हानि और लाभ हुआ है, उसका संतुलन होना चाहिए। आवेदक पत्नी को मृतक के स्थान पर अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त हुई, इस तथ्य को प्रतिकर के निर्धारण के समय विचार में लेना चाहिए।

क्या अनुकम्पा नियुक्ति अनावेदकगण ने दी है? इसे भी ध्यान में रखना चाहिए। अनावेदकगण ने अनुकम्पा नियुक्ति दी है, तो यह एक विचारणीय तथ्य हो सकता है अन्यथा नहीं।

अनुकंपा नियुक्ति मिल जाने के आधार पर प्रतिकर पर ब्याज दिलवाना उचित नहीं है। एक्सग्रेशिया पेमेन्ट को प्रतिकर से कम किया जा सकता है लेकिन मृतक के सेवा लाभ, जो उसकी पत्नी को मिले हैं, वे कम नहीं किये जा सकते हैं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***उमा बाई विरूद्ध खेमचंद्र, 2001 (1) एम.पी.एल.जे. 407,*** अवलोकनीय है।

नवीनतम न्यायदृष्टांत ***विमल कनवर विरूद्ध किशोर दान, 2013 ए.सी.जे. 1441 एस.सी.,*** के अनुसार अनुकम्पा नियुक्ति के कारण मिला वेतन, प्रतिकर के निर्धारण में कम नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इसे वित्तीय लाभ नहीं माना जा सकता।

न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध रेखा बेन, 2017 ए.सी.जे. 205 एस.सी.,*** के अनुसार अनुकम्पा नियुक्ति से प्राप्त वेतन प्रतिकर में से कम नहीं कर सकते। अनुकम्पा नियुक्ति का स्त्रोत या सोर्स अलग है और प्रतिकर का सोर्स अलग है। प्रतिकर का सोर्स वाहन दुर्घटना है। आश्रित अपना जीवन यापन कर रहे हैं इस कारण प्रतिकर में से इसे कम नहीं कर सकते।

12. एक्सग्रेशिया भुगतानः- न्यायदृष्टांत ***संध्या विरूद्ध गुड्डू 2015 ए.सी.जे. 168,*** में माननीय मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि राज्य सरकार व भारत संघ और उसके अधीन उद्यम, जिसमें बैंक भी शामिल हैं, उन्होंने एक नीति जारी की है कि परिवार के सदस्य द्वारा अनुकंपा नियुक्ति का आवेदन किया जाता है और अनुकंपा नियुक्ति नहीं दी जाती है, तब परिवार को एक्सग्रेशिया राशि भुगतान की जायेगी। अतः यह राशि प्रतिकर में से नहीं काटी जा सकती। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***भवरी बाई विरूद्ध यूनियन आफ इंडिया, 2009 ए.सी.जे. 1319 एम.पी.डी.बी.,*** पर भरोसा किया गया जिसमें न्यायदृष्टांत ***यूनाईटेड इंडिया इंश्योरेंश कंपनी विरूद्ध पत्रिका जैन महाजन, 2002 ए.सी.जे. 1441,*** को विभेदित किया गया है।

न्यायदृष्टांत ***रिलांयस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध शशि शर्मा, ए.आई.आर. 2016 एस.सी. 4465,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ के अनुसार मोटर यान अधिनियम 1988 के तहत मिलने वाले प्रतिकर में से जो एक्सग्रेशिया भुगतान किसी कर्मचारी के वैध प्रतिनिधियों को कम्पैश्नेट आधार पर मिलता है उसे कम नहीं किया जा सकता। कर्मचारी के लिये मिलने वाली अन्य आर्थिक

सहायता में इसे विचार में ले सकते हैं अन्यथा दोहरा भुगतान हो जायेगा। इस न्यायदृष्टांत पर विचार करें तो कोई भी भुगतान दोहरा नहीं होना चाहिये, यह ध्यान रखना चाहिये।

13. जीवन बीमा निगम के अधीन भुगतान:- जीवन बीमा निगम के अधीन मृतक के आश्रितों को जो भुगतान प्राप्त होता है, उसे प्रतिकर में से नहीं काटा जा सकता। ऐसे आर्थिक लाभ, जो आवेदक को दुर्घटना में हुई मृत्यु के संबंध में मिले हों, केवल उन्हें कम किया जा सकता है। एलआईसी का भुगतान एक संविदात्मक भुगतान है, जबकि मोटर यान अधिनियम के तहत प्रतिकर एक वैधानिक भुगतान है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***हैलन सी. रिवैलो विरूद्ध महाराष्ट्र स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 3191*** व ***यूनाईटेड इंडिया इन्श्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध पट्रेसिया जिन महाजन, ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 2607,*** अवलोकनीय हैं।

14. आहत की मृत्यु के बाद का दुकान किराया:- आहत उसके जीवन काल में एक दुकान चलाता था जिसे आवेदकगण ने उसकी मृत्यु के बाद किराये से दे दिया। इस किराये की राशि को मृतक की आय में से कम नहीं किया जा सकता। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***विमला देवी विरूद्ध जनरल मेनेजर, एम.पी.एस.आर.टी.सी., 1996 ए.सी.जे. 876 (डी.बी.),*** अवलोकनीय है।

15. फैमिली पेन्शनः- फैमिली पेन्शन की राशि यदि मोटर दुर्घटना में हुई मृत्यु के परिणाम स्वरूप है, तभी काटी जा सकती है अन्यथा नहीं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***जे.पी. गुप्ता विरूद्ध नेशनल इन्श्योरेन्स कंपनी लिमिटेड, 2004 (3) एम.पी.एच.टी. 344 (डी.बी.),*** अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***लालदाई विरूद्ध हिमाचल रोड ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन, 2008 ए.सी.जे. 1107 एस.सी.,*** के अनुसार आश्रितता की गणना में फेमिली पेंशन नहीं काटी जा सकती। फेमिली पेंशन तो आश्रितों को अन्यथा भी मिलती। न्यायदृष्टांत ***हेलन सी रिवेरो विरूद्ध महाराष्ट्र स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन, ए.आई.आर 1998 एस.सी. 3191,*** पर भरोसा किया गया है।

16. विदेश में कार्यरत् व्यक्ति:- न्यायदृष्टांत ***चंदरी देवी विरूद्ध जसपाल सिंह, 2015 ए.सी.जे. 1612,*** के मामले में एक 32 वर्षीय व्यक्ति, जो जर्मनी में एक भारतीय रेस्टोरेंट में कार्यरत् होकर 62,975/- रूपए प्रतिमाह कमाता था, की भारत में मृत्यु पर उसकी आमदनी का प्रश्न था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि मृतक के समान कार्य करने वाला एक रसोईया वर्ष 2006 में अर्थात मृत्यु के समय भारत में कितना कमा लेता होगा, यह विचार करना होगा और उसकी आय 15,000/- रूपये प्रतिमाह निर्धारित की गई। इस तरह अनिवासीय भारतीय या एन.आर.आई के मामले में उक्त विधि ध्यान में रखना चाहिए।

17. अन्य लाभ:- किसी कर्मचारी की आय में न केवल वेतन बल्कि अन्य लाभ जैसे भविष्य निधि में अंशदान, ग्रेच्युटी, डी.ए., एच.आर.ए., सी.सी.ए., मेडिकल अलाउन्स, ई.पी.एफ., जी.आई.एस. शामिल होते हैं लेकिन टी.ए., न्यूज पेपर, टेलीफोन, सर्वेन्ट, कार मेन्टेनेन्स आदि इसमें शामिल नहीं होते हैं। साथ ही इन्कम टेक्स, प्रोफेशनल टेक्स भी इसमें नहीं जोड़े जाते हैं। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***नेशनल इन्श्योरेन्स कंपनी लिमिटेड विरूद्ध इंदिरा श्रीवास्तव, (2008) 2 एस.सी.सी. 763,*** अवलोकनीय है।

18. आयकर रिटर्नः- इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***आई.सी.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध अजय के. मोहन्ती, (2018) 3 एस.सी.सी. 686,*** अवलोकनीय है जिसमें विगत 3 वर्षों के आयकर रिटर्नों का औसत विचार में लेकर आमदनी प्रमाणित मानी गई।

न्यायदृष्टांत ***यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध इंदिरा देवी, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 3107,*** के मामले में वेतन प्रमाण पत्र और आयकर रिटर्न में विरोधाभास था। अधिकरण ने वेतन प्रमाण पत्र पर विश्वास किया। अन्य स्त्रोतों से भी आय की संभावना थी, इस कारण आयकर रिटर्न के आधार पर वेतन प्रमाण पत्र के आधार पर आय के निर्धारण की विधि प्रतिपादित की गई।

19. इम्प्लाई फैमिली बैनीफिट स्कीम (ईएफबी) या परिवार सुविधा योजना, भविष्य निधि, पेंशन, बीमा, अनुकंपा नियुक्ति का वेतनः- न्यायदृष्टांत ***सेबस्टिनी लाकरा विरूद्ध नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एआईआर 2018 एससी 5034,*** के अनुसार ये राशियां प्रतिकर में से कम नहीं की जा सकतीं।

20. मुख्य सिद्धांतः- घातक दुर्घटना अधिनियम के मामलों में क्षति के निर्धारण में यह एक सामान्य नियम है कि आश्रितों को दुर्घटना में हुई मृत्यु से जो भी लाभ होते हैं, उनको विचार में लेना चाहिए और हानि और लाभ जो आश्रितों को मृत्यु के परिणाम स्वरूप हुए हैं, उसमें एक संतुलन बनाना चाहिए। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***गोबाल्ड मोटर सर्विस लिमिटिड विरूद्ध आर.एम.के. वेलू स्वामी, ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 1,*** अवलोकनीय है।

इस प्रकार मृतक की आय जोड़ते समय उक्त समस्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मृत्यु के समय मृतक की आय निकालना चाहिए।

4. गुणांक के बारे में नवीनतम वैधानिक स्थिति

न्यायदृष्टांत ***रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन, 2013 ए.सी.जे. 1253,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ के मामले में यह प्रतिपादित किया गया कि जहां मृतक 15 वर्ष की उम्र तक का हो, वहां न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में तैयार की गई तालिका या टेबिल के कॉलम नंबर 6 में किये गये सुधार के अनुसार गुणांक लागू करना चाहिए, चाहे दावा धारा 166 या 163ए मोटरयान अधिनियम में से किसी में भी पेश किया गया हो और जहां मृतक की उम्र 15 वर्ष और उससे अधिक हो, वहां न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में तैयार की गई टेबिल कॉलम नंबर 4 सहपठित निर्णय चरण 21 के अनुसार गुणांक लगाना चाहिए।

नवीनतम वैधानिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई टेबिल इस प्रकार है-

मृतक की उम्र	**गुणांक**
15 वर्ष तक	20
15 से 20 वर्ष तक	18
21 से 25 वर्ष तक	18
26 से 30 वर्ष तक	17

31 से 35 वर्ष तक	16
36 से 40 वर्ष तक	15
41 से 45 वर्ष तक	14
46 से 50 वर्ष तक	13
51 से 55 वर्ष तक	11
56 से 60 वर्ष तक	9
61 से 65 वर्ष तक	7
66 से 70 वर्ष तक या 65 वर्ष से अधिक	5

नवीनतम न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5157,*** पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ, निर्णय चरण-61 (VI) में यह प्रतिपादित किया गया है कि गुणांक के चयन में न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में दी गई तालिका और उसके निर्णय चरण 42 के आधार पर किया जायेगा। इस प्रकार उक्त तालिका को पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ के इस न्यायदृष्टांत में भी पुष्ट किया गया है।

5. गुणांक किसकी उम्र पर

5ए-पूर्व की विधिक स्थिति

पूर्व की विधिक स्थिति, जो अब प्रभाव में नहीं है, इस प्रकार रही है कि जहां केवल माता-पिता या पेरेन्ट्स आश्रित हों, वहां उनकी उम्र सुसंगत तथ्य होती है और गुणांक मृतक या आश्रित में से, जिसकी उम्र अधिक हो, उसके आधार पर चयन किया जाता है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***म्यूनिसिपल कारपोरेशन आॅफ ग्रेटर बाम्बे विरूद्ध लक्ष्मण अय्यर, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 4182*** व ***रमेश सिंह विरूद्ध सतबीर सिंह, ए.आई.आर 2008 एस.सी. 1233,*** अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***जाकिर विरूद्ध दिनेश, 2015 ए.सी.जे. 961,*** के मामले में मृतक अविवाहित था। दावेदार माता-पिता थे। गुणांक का चयन माता-पिता की उम्र के आधार पर करने की विधि प्रतिपादित की गई।

न्यायदृष्टांत ***कानसिंह विरूद्ध तुकाराम, 2015 ए.सी.जे. 594,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अविवाहित मृतक के मामले में माता-पिता की उम्र के आधार पर 11 का गुणांक उचित माना।

न्यायदृष्टांत ***मुन्ना लाल जैन विरूद्ध विपिन शर्मा, 2015 (6) एस.सी.सी. 347,*** में तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ ने न्यायदृष्टांत रेशमा कुमारी (उपरोक्त) और सरला वर्मा (उपरोक्त) का उल्लेख करते हुये मृतक की उम्र के आधार पर गुणांक के चयन की विधि प्रतिपादित की है लेकिन इस मामले में न्यायदृष्टांत ***न्यू इंडिया इंश्योरेंश कंपनी लिमिटिड विरूद्ध श्रीमती शांति पाठक, ए.आई.आर. 2007 एस.सी. 2649,*** तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ को विचार में नहीं लिया गया था जिसमें यह प्रतिपादित किया गया था कि यदि मृतक अविवाहित हो और दावेदार माता-पिता हों, तब माता-पिता की उम्र के आधार पर गुणांक का चयन किया जायेगा।

5बी-वर्तमान विधिक स्थिति

वर्तमान विधिक स्थिति, जो प्रभाव में है, इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5157,*** पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ, निर्णय चरण 61 (VII) में यह प्रतिपादित किया गया है कि गुणांक के चयन में मृतक की उम्र आधार मानी जायेगी।

न्यायदृष्टांत ***मुन्नुस्वामी विरूद्ध दी मैनेजिंग डायरेक्टर, तमिलनाडू स्टेट ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन लिमिटेड, एम.ए.सी.डी., 2018 (1) (एस.सी.) 50,*** में मृतक एक अविवाहित निजी कार कंपनी में कार्य करने वाला था और गुणांक 18 का प्रयोग किया गया। इस मामले में प्रणय सेठी (उपरोक्त) को विचार में लिया गया।

न्यायदृष्टांत ***रामाराव लाला बोरसे विरूद्ध न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड, ए.आईआर 2018 एस.सी. 657,*** निर्णय दिनांक 19 जनवरी, 2018 में मृतक कुंवारा था। सात के स्थान पर 17 का गुणांक प्रयुक्त करने के आदेश दिये गये। इस मामले में प्रणय सेठी (उपरोक्त) को विचार में लिया गया।

न्यायदृष्टांत ***नागरमल विरूद्ध ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 568,*** निर्णय दिनांक 19 जनवरी 2018, में मृतक कुंवारा था, सी.ए. कर रहा था। 17 का गुणांक प्रयुक्त किया गया। इस मामले में भी प्रणय सेठी (उपरोक्त) को विचार में लिया गया।

न्यायदृष्टांत ***सुबेसिंह विरूद्ध श्याम सिंह, (2018) 3 एस.सी.सी. 18 ,*** निर्णय दिनांक 09/02/2018, में यही प्रश्न विचारणीय था कि माननीय उच्च न्यायालय में 14 का गुणांक माता पिता की उम्र के आधार पर सही निर्धारित किया गया या नहीं? यह प्रतिपादित किया गया कि गुणांक के चयन में मृतक की उम्र तात्विक होती है और 18 का गुणांक प्रयुक्त करने के आदेश दिये गये। इस मामले में प्रणय सेठी (उपरोक्त) को विचार में लिया गया।

अतः नवीनतम विधिक स्थिति यह स्पष्ट होती है कि गुणांक का चयन करने में मृतक की उम्र को आधार मानना है।

6. साहचर्य हानि या कन्सोर्शियम

6ए- पूर्व की विधिक स्थिति

न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त), निर्णय चरण 9, में साहचर्य की हानि के शीर्ष में 5000/- से 10000/- रूपये की रेंज में राशि दिलवाने का अभिमत दिया गया था।

न्यायदृष्टांत ***राजेश विरूद्ध राजवीर, (2013) 9 एस.सी.सी. 54,*** निर्णय चरण 20 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिमत दिया है कि साहचर्य की हानि के शीर्ष में यही केवल न्यायसंगत और युक्तियुक्त होगा कि अधिकरण कम से कम एक लाख रूपये अवार्ड करे।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि कन्सोर्शियम पति-पत्नि का एक ऐसा अधिकार है जो संगति, परवाह या ध्यान रखना, आराम, सुख-चैन, सहायता, मार्गदर्शन, सांत्वना, अफेक्शन, लैंगिग संबंध से संबंधित अधिकार है।

साहचर्य की हानि या कन्सोर्शियम केवल स्पाउस के मामले में ही दिलवाया जाये, यह भी कहा गया है।

6बी- साहचर्य हानि के बारे में नवीनतम विधिक स्थिति

न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5157,*** पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ, निर्णय चरण-61 (VIII) में यह प्रतिपादित किया गया है कि साहचर्य हानि रूपए 40,000/- (चालीस हजार रूपये) दिलवायी जावे।

इस तरह नवीनतम विधिक स्थिति के प्रकाश में साहचर्य हानि, स्पाउस अर्थात् पति या पत्नि की मृत्यु के मामले में एक दूसरे को मात्र चालीस हजार रूपये दिलवाना है।

न्यायदृष्टांत ***मेग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध नानूराम उर्फ चुहरूराम, 2018 ऐ.सी.जे. 2782 एस.सी.,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अविवाहित पुत्र की मृत्यु के मामले में उसके पिता और अविवाहित बहन को भी साहचर्य हानि दिलवाई और उसे पुत्र सुलभ साहचर्य हानि बतलाई है। इस मामले में पैतृक साहचर्य और संतान संबंधी साहचर्य को भी साहचर्य में शामिल माना गया है।

अतः उचित मामलों में इस विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुये पति या पत्नी के अलावा अन्य परिवार के सदस्यों को भी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में साहचर्य हानि दिलवाई जा सकती है।

7. दाह संस्कार खर्च या फ्यूनरल एक्सपेंस

7ए- पूर्व की विधिक स्थिति

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायदृष्टांत राजेश (उपरोक्त) पैरा 21 में यह बतलाया कि वे इस तथ्य का ज्यूडिशियल नोटिस लेते हैं या न्यायिक अवेक्षा करते हैं कि अधिकरण दाह संस्कार खर्च दिलवाने में काफी फ्रूगल या मितव्ययी होते हैं। दाह संस्कार खर्च केवल दाह संस्कार का शुल्क चुकाने तक सीमित नहीं है बल्कि प्रत्येक धर्म में किसी व्यक्ति की मृत्यु पर कई खर्च होते हैं, अतः बढ़ती कीमतों को देखते हुए इस शीर्ष में कम से कम 25 हजार रूपये दिलाये जावें, यदि अधिक खर्च की कोई साक्ष्य अभिलेख पर न हो।

7बी-वर्तमान विधिक स्थिति

न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5157,*** पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ, निर्णय चरण 61 (VIII) में यह प्रतिपादित किया गया है कि दाह संस्कार खर्च रूपए 15,000/- (पन्द्रह हजार रूपये) दिलवाये जावें।

इस तरह नवीनतम विधिक स्थिति के प्रकाश में दाह संस्कार खर्च मात्र 15,000/- रूपये दिलवाना है।

8. भविष्य की संभावनायें या फ्यूचर प्रासपैक्ट्स

08ए- पूर्व की विधिक स्थिति

न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में, जहां मृतक स्थायी नौकरी में हो, वहां भविष्य की

संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए अवार्ड पारित करने का अभिमत दिया गया था लेकिन जहां मृतक स्वयं के रोजगार में या निर्धारित वेतन पर कार्य करता हो, वहां उसकी वास्तविक आय या एक्चुअल इनकम ही विचार में लेने का मत दिया गया था।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माह अप्रैल 2013 में इस शीर्ष पर दो मामलों में विचार किया। पहला, राजेश विरूद्ध राजवीर (उपरोक्त) मामला और दूसरा, ***रेशमा कुमारी विरूद्ध मदनमोहन, 2013 ए.सी.जे. 1253,*** का मामला। इन दोनों पर हम क्रमवार विचार करेंगे और यह देखेंगे कि सही वैधानिक स्थिति क्या है?

न्यायदृष्टांत ***राजेश विरूद्ध राजवीर*** (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की उक्त तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ ने यह अभिमत दिया कि जहां मृतक स्वयं के रोजगार या सेल्फ इंम्पलाॅयमेंट में या निर्धारित वेतन पर कार्यरत हो वहां भी भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए अवार्ड पारित किया जाये।

वास्तविक आय उस आय को माना गया है जो आयकर को काटने के बाद मिलती है, यदि मृतक आयकर दाता हो।

भविष्य की संभावनाओं के बारे में वास्तविक आय का निम्नलिखित प्रतिशत निम्नलिखित उम्र में ध्यान में रखना है:-

ए. मृतक की उम्र यदि 40 वर्ष से कम हो, तब उसकी वास्तविक आय का 50 प्रतिशत।

बी. मृतक की उम्र यदि 40 से 50 वर्ष के बीच हो, तब उसकी वास्तविक आय का 30 प्रतिशत।

सी. मृतक की उम्र यदि 50 से 60 वर्ष के बीच हो, तब उसकी वास्तविक आय का 15 प्रतिशत।

डी. उसके बाद अर्थात् 60 वर्ष की उम्र के बाद कुछ नहीं।

निर्णय चरण 11 एवं 12 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजेश विरूद्ध राजवीर (उपरोक्त) के मामले में इस स्थिति को स्पष्ट किया है।

न्यायदृष्टांत ***संतोष देवी विरूद्ध नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 2185,*** दो न्यायमूर्तिगण की पीठ, में यह अभिमत दिया गया कि स्वयं के नियोजन या निर्धारित मजदूरी पर कार्य करने वाले मृतक/आहत के मामले में यह कहना युक्तियुक्त होगा कि उसकी आय में 30 प्रतिशत वृद्धि होती है।

न्यायदृष्टांत ***के. आर. मधुसूदन विरूद्ध एडमिनिस्ट्रेटिव आफीसर, ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 979,*** दो न्यायमूर्तिगण की पीठ, के अनुसार जहां मृतक 50 वर्ष से अधिक की उम्र का हो और उसकी आमदनी बढ़ने के बारे में स्पष्ट और अकाट्य साक्ष्य हो, वहां सरला वर्मा (उपरोक्त) के मामले में 50 वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्तियों में भविष्य की संभावनाएं न मानने का नियम लागू नहीं होता है लेकिन न्यायदृष्टांत रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन, 2013 ए.सी.जे. 1253, तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 2/4/2013 को निर्णय चरण 36

एवं 40 (5) में यह अभिमत दिया है कि अधिकरण भविष्य की संभावनाओं के बारे में न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) के निर्णय चरण 11 में जो निष्कर्ष दिये हैं उनको फाॅलो करें। निर्णय चरण 36 के अनुसार इस नियम से विचलन तभी न्यायसंगत होगा जब बहुत अपवाद स्वरूप मामले हों और असामान्य पस्थितियां हों।

इस निर्णय में यह भी अभिमत दिया गया है कि सरला वर्मा (उपरोक्त) के मामले में निर्णय चरण 9 में जो प्रतिकर निर्धारण के कदम और दिशा निर्देश बतलाए हैं, उन्हें मृत्यु प्रकरणों में प्रतिकर निर्धारण में अधिकरणों को पालन करना है। साथ ही व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च की कटौती में सरला वर्मा (उपरोक्त) के निर्णय 14 और 15 में दिये गये मानक का पालन सामान्यतः करना है और पैरा 38 में दिये गये आॅब्जरवेशन भी ध्यान में रखना है।

इस निर्णय में यह भी अभिमत दिया गया है कि इस मामले में दिये गये अभिमत सभी लंबित मामले पर लागू होंगे।

चूंकि ***राजेश विरूद्ध राजबीर, 2013 ए.सी.जे. 1403***, का निर्णय, दिनांक 12/4/2013 का, तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ का है जबकि रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन, 2013 ए.सी.जे. 1253, का उक्त निर्णय दिनांक 2/4/2013 का तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ का है अर्थात् दोनों ही निर्णय सर्वोच्च न्यायालय की समान संख्या की पीठ के हैं, अतः लाॅ आॅफ प्रिसीडेंट के अनुसार दिनांक 2/4/2013 का रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन (उपरोक्त) का निर्णय बंधनकारी है क्योंकि राजेश विरूद्ध राजबीर (उपरोक्त) के मामले में उक्त रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन (उपरोक्त) को विचार में नहीं लिया गया है।

जब भी भविष्य की संभावनाओं पर विचार करें, तब ***रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन, 2013 ए.सी.जे. 1253,*** के अभिमत को अवश्य ध्यान में रखें एवं वास्तविक आय तथा वास्तविक आय का उक्त प्रतिशत जोड़कर, फिर जो आय आती है, उसे मृतक की आय के रूप में विचार में लिया जाना चाहिए एवं केवल स्थाई नौकरी वाले मृतक, जो 50 वर्ष की उम्र तक के हों, के बारे में ही भविष्य की संभावनाओं का उक्त अनुसार प्रतिशत मूल आय में जोड़ना चाहिए व न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में इस बारे में उसके निर्णय चरण 11 में दिये गये निर्देशों को ध्यान में रखने का कष्ट करेंगे जिसके अनुसार यदि मृतक की उम्र 40 वर्ष से कम हो तब उसकी वास्तविक आय का 50%, मृतक की उम्र 40 से 50 वर्ष के बीच हो तब उसकी वास्तविक आय का 30% भविष्य की संभावना या फ्यूचर प्रास्पैक्ट्स के रूप में उक्त राशि मृतक के, यदि वह आयकर दाता हो तो आयकर काटने के बाद की आय में और जोड़ देंगे और अपवाद स्वरूप मामलों में और असामान्य परिस्थितियों में ही सरला वर्मा (उपरोक्त) के निर्णय चरण 11 में दिये निर्देशों से विचलन हो सकता है।

न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंश कंपनी लिमिटेड विरूद्ध पुष्पा व अन्य, 2015 (9) एससीसी 166,*** के मामले में भविष्य की संभावनाओं के लिये न्यायदृष्टांत राजेश विरूद्ध राजवीर (उपरोक्त) और ***रेशमा कुमारी विरूद्ध मदनमोहन*** (उपरोक्त) में प्रतिपादित भिन्न मतों को बड़ी बेंच को रेफर किया गया है और न्यायदृष्टांत ***शशिकला विरूद्ध गंगा लक्ष्मण्णम्मा, 2015 (9) एस.सीसी. 150,*** में भी यही स्थिति है। जब तक रेफरेंस का उत्तर नहीं आ जाता, तब तक ***रेशमा कुमारी विरूद्ध मदनमोहन*** (उपरोक्त) में प्रतिपादित विधि लागू होती रहेगी।

8बी- वर्तमान विधिक स्थिति

01- मृतक के स्थायी जॉब में होने की दशा में, न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 5157,*** पांच न्यायमूर्तिगण की पीठ, निर्णय चरण-61 (III) में यह प्रतिपादित किया गया है किः-

जहां मृतक स्थायी जॉब में हो, वहां भविष्य की संभावना, यदि मृतक की उम्र 40 वर्ष से कम है, तब वास्तविक वेतन का 50 प्रतिशत और जोड़ा जायेगा।

यदि मृतक की उम्र 40 से 50 वर्ष के भीतर है, तब उसके वास्तविक वेतन का 30 प्रतिशत भविष्य की संभावनाओं के रूप में और जोड़ा जायेगा।

यदि मृतक की उम्र 50 से 60 वर्ष के भीतर है, तब उसके वास्तविक वेतन का 15 प्रतिशत भविष्य की संभावनाओं के रूप में और जोड़ा जायेगा।

02- मृतक के स्वरोजगार या नियत वेतन पर होने की दशा में न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी*** (उपरोक्त) में यह प्रतिपादित किया गया है किः-

जहां मृतक स्व-रोजगार वाला हो या एक नियत वेतन पर काम करने वाला हो, वहां भविष्य की संभावना, यदि मृतक की उम्र 40 वर्ष से कम है, तब स्थापित आय का 40 प्रतिशत और जोड़ा जायेगा।

यदि मृतक की उम्र 40 से 50 वर्ष के भीतर है, तब उसकी स्थापित आय का 25 प्रतिशत भविष्य की संभावनाओं के रूप में और जोड़ा जायेगा।

यदि मृतक की उम्र 50 से 60 वर्ष के भीतर है, तब उसकी स्थापित आय का 10 प्रतिशत भविष्य की संभावनाओं के रूप में और जोड़ा जायेगा।

कुछ विद्वानों का अब भी यह मत है कि यदि मृतक स्थायी जॉब में हो तब ही उसकी भविष्य की संभावनायें उक्तानुसार जोड़ी जायेंगी और यदि मृतक स्वरोजगार में हो या नियत वेतन पर हो, तब उसकी स्थापित इन्कम (Established Income) होने पर अर्थात् आय साबित होने पर ही भविष्य की संभावनायें जोड़ी जायेंगी लेकिन न्यायदृष्टांत ***हेमराज विरूद्ध ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2018 ए.सी.जे. 5 एस.सी.,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है कि न्यायालय गैस वर्क के आधार पर जो आमदनी निर्धारित करता है उसमें भी भविष्य की संभावनाओं को विचार में लिया जाना चाहिये। इस मामले में न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी*** (उपरोक्त) पर भरोसा किया गया है।

न्यायदृष्टांत ***रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध शालू शर्मा, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 712,*** में भी 2 फरवरी, 2018 को न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी*** (उपरोक्त) को विचार में लेते हुये मृतक, जो मेसर्स महक केबल नेटवर्क के नाम से व्यवसाय करता था और 42 वर्षीय था, उसकी भविष्य की संभावनायें 25 प्रतिशत विचार में ली हैं। यह न्यायदृष्टांत तीन न्यायमूर्तिगण की पीठ का है।

उक्त न्यायदृष्टांत ***मुन्नुस्वामी विरूद्ध दी मैनेजिंग डायरेक्टर तमिलनाडू स्टेट ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन लिमिटेड, (2018) 2 एस.सी.सी. 765,*** निर्णय दिनांक 09 फरवरी, 2018, के मामले में मृतक प्रायवेट कार कंपनी में कर्मचारी था। उसकी उम्र के हिसाब से 40 प्रतिशत भविष्य की संभावनायें, मासिक आमदनी 4000/- रूपये में जोड़ी गईं। इस मामले में ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी*** (उपरोक्त) को विचार में लिया गया।

न्यायदृष्टांत ***रामाराव लाला बोरसे विरूद्ध न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 657,*** निर्णय दिनांक 19 जनवरी, 2018, में मृतक की उम्र 29 वर्ष के आधार पर भविष्य की संभावनायें 50 प्रतिशत उसकी मासिक आमदनी में जोड़ी गईं। इस मामले में भी ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी*** (उपरोक्त) को विचार में लिया गया।

न्यायदृष्टांत ***नागरमल विरूद्ध ओरियेंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ए.आई.आर. 2018 एस.सी. 568,*** निर्णय दिनांक 19 जनवरी 2018, में 20 वर्षीय मृतक, सी.ए. कर रहा था। उसकी आमदनी 6000/- रूपये मानते हुये भविष्य की संभावनायें 40 प्रतिशत उसकी मासिक आमदनी में और जोड़ी गईं। इस मामले में नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी (उपरोक्त) को विचार में लिया गया।

न्यायदृष्टांत ***ब्रांच मैनेजर, ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध श्रीमती रंजू यादव, 2018 (2) एमपीएलजे 371 (डी.बी.),*** में मृतक स्वनियोजन में था, स्थाई नौकरी में नहीं था। उसकी भविष्य की संभावनायें विचार में लेने की विधि प्रतिपादित की गई। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी (उपरोक्त) के मामले पर भरोसा किया गया।

न्यायदृष्टांत ***सविता विरूद्ध डिविजनल मैनेजर, महाराष्ट्र स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन, 2018 एसीजे 2863 एससी,*** के मामले में मृतक 34 वर्षीय कृषक था व अन्य काम भी करता था। अतः न्यायदृष्टांत नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी (उपरोक्त) का अनुसरण करते हुए 40 प्रतिशत भविष्य की संभावनाएं जोड़ने के आदेश दिए गए।

न्यायदृष्टांत ***मेग्मा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध नन्नूराम उर्फ चुहरूराम, 2018 एसीजे 2782 एससी,*** के अनुसार भविष्यवर्ती लाभ न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी*** (उपरोक्त) का अनुसरण करके दिलवाना चाहिए।

अतः अब भविष्य की संभावनायें, चाहे मृतक स्थायी जॉब में हो या स्वनियोजन में हो या नियत वेतन पर कार्य करता हो या उसका वेतन गैस वर्क के आधार पर प्रमाणित माना गया हो, प्रत्येक दशा में उसकी उम्र के अनुसार उक्तानुसार स्थाई जॉब और अन्य मामलों में भविष्य की संभावनायें जोड़ना है।

9. व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च

न्यायदृष्टांत ***रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन, 2013 ए.सी.जे. 1253,*** में निर्णय के चरण 39 में कहा गया है कि व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च के बारे में न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त), निर्णय चरण 14 और 15, का सामान्यतः पालन किया जाना चाहिए जब तक कि उससे विचलित होने

की परिस्थितियां न हों। इसी मामले में निर्णय चरण 38 में कहा गया है कि व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च में भिन्नता आ सकती है और ये केवल आश्रितों की संख्या पर निर्भर नहीं होता है।

न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) में व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च निम्न प्रकार से बतलाया गया हैः-

1. यदि मृतक विवाहित हो और उसके परिवार में दो से तीन आश्रित हों, तब आय का 1/3 भाग।
2. यदि मृतक विवाहित हो और उसके परिवार में चार से छः आश्रित हों, तब आय का 1/4 भाग।
3. यदि मृतक विवाहित हो और उसके परिवार में छः से अधिक आश्रित हों, तब आय का 1/5 भाग।
4. यदि मृतक अविवाहित हो, तब आय का 1/2 भाग या 50 प्रतिशत।
5. यदि मृतक अविवाहित हो और आश्रितों की संख्या अधिक हो जैसे विधवा माता और न कमाने वाले छोटे भाई-बहन, तब आय का 1/3 भाग।
6. पिता, भाई और बहनें को आश्रित नहीं माना जाता है जब तक कि कोई विपरीत साक्ष्य अभिलेख पर न हो।

संतोष देवी, ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 2185 (उपरोक्त) में यह भी प्रतिपादित किया गया कि एक व्यक्ति जिसकी आमदनी 1500/- रूपये प्रतिमाह हो और उसके परिवार में पांच सदस्य हों, वह स्वयं पर उसकी आमदनी का 1/10 भाग खर्च करता है और शेष उसके परिवार पर खर्च करता है, यह माना जा सकता है।

इसी मामले में यह भी कहा गया कि वयस्क पुत्र, जब तक कि उसकी आय का कोई पृथक स्त्रोत न हो, आश्रित माना जाता है।

न्यायदृष्टांत ***न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध गोपाली, ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 3381,*** के अनुसार एक आहत जो 3000/- रूपये प्रतिमाह से कम कमाता है और जिसके परिवार में 9 सदस्य हैं, उस दशा में उसका व्यक्तिगत खर्च उसकी आमदनी का 1/3 भाग काटने का नियम अवास्तविक है।

न्यायदृष्टांत ***चंदा देवी विरूद्ध प्रदीप कुमार, 2006 (3) एम.पी.डब्ल्यू.एन. 122,*** के अनुसार जहां विधवा के पास उसकी स्वयं की कमाई के साधन हों तब भी वह युक्तियुक्त प्रतिकर पाने के अयोग्य नहीं हो जाती है।

न्यायदृष्टांत ***चंदन सिंह विरूद्ध एस.ई.डब्ल्यू. कन्सट्रक्शन कंपनी, 2003 (1) जे.एल.जे. 246,*** के अनुसार जहां आश्रित कमाने वाले सदस्य हों तो मात्र इस कारण प्रतिकर से इंकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह विधायिका का उद्देश्य नहीं है। इससे दोषकर्ताओं को लाभ होगा जो कि विधायिका का उद्देश्य नहीं है।

इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च या लिविंग एक्सपेंस निकालते समय उक्त वैधानिक स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए।

मृतक के अविवाहित होने पर न्यायदृष्टांत ***रामाराव लाला बोरासी,*** (उपरोक्त) व ***नागरमल,*** (उपरोक्त) में व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च आमदनी का 50 प्रतिशत काटा गया है लेकिन न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेस कंपनी लिमिटिड विरूद्ध प्रणय सेठी,*** (उपरोक्त) के निर्णय चरण- 61 (V) में यह प्रतिपादित किया गया है कि व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च के निर्धारण में अधिकरण न्यायदृष्टांत सरला वर्मा (उपरोक्त) के निर्णय के चरण 30 से 32 से मार्गदर्शन लेंगे। इस प्रकार नवीनतम न्यायदृष्टांत में भी व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च के बारे में उक्त विधिक स्थिति को पुष्ट किया गया है जिसे मानना है।

10. अवयस्क बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन की हानि

उक्त न्यायदृष्टांत ***राजेश विरूद्ध राजबीर*** (उपरोक्त) में निर्णय चरण 20 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस शीर्ष को भी रीविजिट किया है लेकिन यह कहा है कि यदि वैध प्रतिनिधियों को अन्यथा युक्तियुक्त प्रतिकर अवार्ड कर दिया हो तब इस शीर्ष में अधिक राशि दिलवाना उचित नहीं होगा। न्यायदृष्टांत वाले मामले में इस शीर्ष में एक लाख रूपये दिलवाये गये हैं।

अतः इस शीर्ष में प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार अधिकरण एक युक्तियुक्त प्रतिकर दिलवा सकते हैं, यदि आवश्यक हो।

पिता को पुत्र का आश्रित नहीं माना गया है लेकिन लव एडं अफेक्शन के शीर्ष में पिता को प्रतिकर दिलवाया जा सकता है, यह भी ध्यान रखना चाहिए।

न्यायदृष्टांत ***राजेश विरूद्ध राजवीर*** (उपरोक्त) को न्यायदृष्टांत ***प्रणय सेठी*** (उपरोक्त) में बंधनकारी न होना निर्णय चरण 61 (II) में बतलाया गया है। अतः अब अवयस्क बच्चों की देखभाल और मार्गदर्शन के शीर्ष में प्रतिकर दिलवाना आवश्यक नहीं है।

11. आवेदन में मांगे गए प्रतिकर से अधिक प्रतिकर

राजेश विरूद्ध राजवीर (उपरोक्त) के मामले में निर्णय चरण 19 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिमत दिया है कि यह अधिकरण का कत्र्तव्य है कि वे युक्तियुक्त प्रतिकर निर्धारित करें और क्लेम आवेदन में मांगे गये प्रतिकर पर ध्यान न दें अर्थात् क्लेम आवेदन में कम प्रतिकर मांगा गया है तब भी अधिकरण युक्तियुक्त प्रतिकर निर्धारित कर सकती है।

धारा 158 (6) मोटरयान अधिनियम के प्रतिवेदन को भी क्लेम आवेदन माना जाता है जिसमें प्रतिकर की राशि का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं होता है। निर्णय चरण 18 में इस बारे विवेचना की गई है।

न्यायदृष्टांत ***नागप्पा विरूद्ध गुरूदयाल, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 674, ए.पी.एस.आर.टी.सी. विरूद्ध एम. रमादेवी, ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 1221*** एवं ***इब्राहिम विरूद्ध राजू, (2011) 10 एस.सी.सी. 634,*** भी इस संबंध में अवलोकनीय हैं।

युक्तियुक्त प्रतिकर के सिद्धांत के लिए न्यायदृष्टांत ***स्टेट आॅफ हरियाणा विरूद्ध जसवीर कौर, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 3696, सैयद बसीर अहमद विरूद्ध मोहम्मद जीमल, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 1219, मैनेजिंग डायरेक्टर टी.एन. एच. टी. सी. लिमिटेड विरूद्ध के.आई. बिन्दु, 2005 ए.आई.आर एस.सी.डब्ल्यू 5343 एवं निग्गमा विरूद्ध यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड, ए.आई.आर 2009 एस.सी. 3056,*** अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***संध्यारानी देब्बारमा विरूद्ध नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 2016 ए.सी.जे. 2717 एस.सी.,*** के अनुसार क्या परम्परागत शीर्ष या कन्वैन्शनल हैड जैसे साहचर्य हानि, दाह संस्कार खर्च, संपदा हानि आदि से इस आधार पर इंकार कर सकते हैं कि आश्रितता की हानि इतनी है कि उसका ब्याज ही 10,000/- रूपए प्रतिमाह बिना मूलधन खर्च किये हो जायेगा? यह प्रतिपादित किया गया कि ऐसा नहीं किया जा सकता।

प्रतिकर न तो विन्डफॉल या हवा में गिरे हुए फल के समान अत्यधिक होना चाहिए और न ही प्रतिकर अदा करने के लिए उत्तरदायी लोगों के लिए दण्डात्मक होना चाहिए। आवेदक को यथासंभव दुर्घटना के पूर्व की स्थिति में स्थापित किया जा सके यही प्रयास होना चाहिए जैसा कि सैयद बसीर अहमद (उपरोक्त) वाले मामले में कहा गया है।

इस प्रकार यदि आवेदन में कम प्रतिकर भी मांगा गया है और गणना के बाद प्रतिकर उससे अधिक बनता है तब भी अधिकरण में ऐसा युक्तियुक्त प्रतिकर दिलवा सकती है और उसे दिलवाना चाहिए।

12. वास्तविक गणना

उक्त अनुसार मृतक की उम्र निकालना चाहिए।

मृतक की उक्त वैधानिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए आमदनी निकालना चाहिए।

आमदनी में से उक्त अनुसार व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च घटाना चाहिए।

आमदनी में भविष्य की संभावनाओं का उक्त अनुसार प्रतिशत जोड़ना चाहिए।

प्राप्त राशि को उक्त अनुसार आयु प्रवर्ग को देखते हुए दिये गये गुणांक से गुणा करना चाहिए।

प्राप्त राशि में स्पाउस की दशा में 40000/- रूपये कन्सोर्शियम या साहचर्य हानि जोड़ना चाहिए।

उक्त अनुसार प्राप्त राशि में 15000/- रूपये दाह संस्कार खर्च जोड़ना चाहिए।

इस प्रकार किसी व्यक्ति की मृत्यु के मामले में कुल प्रतिकर निकाला जाता है।

13. अवयस्क बच्चों के मामलों में प्रतिकर

न्यायदृष्टांत ***मंजू देवी विरूद्ध मुसाफिर, 2005 ए.सी.जे. 99 एस.सी.,*** में तेरह साल के एक बच्चे के मामले में उसकी नोशनल इन्कम 15,000/- रूपये वार्षिक मान कर पन्द्रह का गुणांक प्रयुक्त कर 2,25,000/- प्रतिकर दिलवाया गया। अब 20 का गुणांक प्रयुक्त होगा जैसा कि रेशमा कुमारी विरूद्ध मदन मोहन (उपरोक्त) के मामले में निर्णय चरण 40 (2) में प्रतिपादित किया गया है। अतः

15,000/- गुणित 20 बराबर 3,00,000/- रूपये प्रतिकर बनेगा जिसमें दाह संस्कार खर्च 15,000/- रूपये जोड़ने पर कम से कम 3,15,000/- रूपये दिलवा ही सकते हैं। यदि 15,000/- में भविष्य की संभावनाएँ 40 प्रतिशत उक्त न्यायदृष्टांत प्रणय सेठी के अनुसार 6000/- जोड़े तो कुल आय 21,000/- होती है जिसमें 20 का गुणांक प्रयोग करने पर 4,20,000/- प्रतिकर बनता है जिसमें दाह संस्कार खर्च 15,000/- सम्पदा हानि 15,000/- व पुत्र सुलभ साहचर्य हानि 40,000/- जोड़ने पर 4,90,000/- प्रतिकर दिलवाना चाहिए।

न्यायदृष्टांत ***आर. एम. मलिक विरूद्ध किरण पाल, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 2506,*** भी बच्चों की मृत्यु के मामलों में अवलोकनीय है।

14. ब्याज

प्रतिकर की राशि पर ब्याज की दर प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इसका कोई हार्ड एवं फास्ट रूल नहीं बनाया जा सकता। सामान्यतः ब्याज दर सुसंगत समय पर बैंक की ब्याज दर पर निर्भर करती है। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***अबाती बेज बरूहा विरूद्ध डिप्टी डायरेक्टर जनरल, जियोलॉजिकल सर्वे आॅफ इंडिया, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 1817,*** अवलोकनीय है।

ब्याज क्लेम आवेदन दिनांक के पूर्व से नहीं दिलवाया जा सकता। इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध नरेन्द्र पांडुरंग कदम, ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 782,*** अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***तमिलनाडु स्टेट ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन लिमिटेड विरूद्ध एस. राजाप्रिया, 2005 ए.सी.जे. 1441 एस.सी.,*** में बैंक जमा पर ब्याज दर को देखते हुए प्रतिकर पर 7.51 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज दिलवाया गया।

न्यायदृष्टांत ***नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड विरूद्ध केशव बहादुर, (2004) 2 एस.सी.सी. 370,*** के अनुसार दण्डात्मक ब्याज दर कानून में अनुमत नहीं है। अतः अधिकरण को इस वैधानिक स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए।

समुचित मामलों में जहां आवेदक अनावेदकगण की तामील में साक्ष्य पेश करने में और अन्यथा भी विलंब कारित करता है और इन संक्षिप्त विचारण प्रक्रिया वाले 6 माह से एक वर्ष के भीतर निपट जाने वाले क्लेम प्रकरणों को वर्षों तक चलाता है, तब उसे कारण अभिलिखित करते हुये आवेदन प्रस्तुति दिनांक से ब्याज दिलाये जाने के बजाए अवार्ड दिनांक से ब्याज दिलवाना उचित होता है और यदि ऐसा करते हैं तो इससे आवेदक की ओर से क्लेम प्रकरण चलाने में गति आयेगी और ये प्रकरण तेजी से निपटेंगे।

समुचित मामलों में जहां अनावेदक बीमा कंपनी जबाव प्रस्तुत करने में, आवेदक की साक्ष्य से प्रतिपरीक्षण करने में, अनावेदक प्रमाण करवाने में, अंतिम तर्क के लिये और अन्यथा भी स्थगन लेती रहती है और इन प्रकरणों को लंबे समय तक निराकृत नहीं होने देती है वहां कारण लिखते हुये बीमा कंपनी पर 6 प्रतिशत वार्षिक के स्थान पर 9 प्रतिशत वार्षिक या इससे अधिक ब्याज भी अधिरोपित किया जा सकता है। ऐसा करने से बीमा कंपनी में भी मामले के संचालन में तेजी आयेगी।

15. प्रतिकर राशि के उचित निवेश के सिद्धांत

प्रतिकर राशि के निवेश के समय निम्नलिखित मार्गदर्शक सिद्धांत ध्यान में रखना चाहिएः-

1. अवयस्क के मामले में दावा अधिकरणों को प्रतिकर राशि लंबे समय के लिए एफ.डी. करना चाहिए, कम से कम वयस्कता तिथि तक एफ.डी. की जाना चाहिए। अवयस्क के संरक्षक द्वारा या वादमित्र द्वारा किये गये खर्च के आहरण की अनुमति दी जा सकती है।

2. जहाँ आवेदक अशिक्षित हो उन मामलों में दावा अधिकरण को उक्त सिद्धांत क्रमांक 1 ध्यान में रखना चाहिए। जहां चल या अचल संपत्ति खरीदने के लिए एक मुश्त राशि की आवश्यकता हो जैसे रिक्शा, कृषि उपकरण आदि जो जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक होते हैं, वहां अधिकरण आवेदक की प्रार्थना को वास्तविक खर्च को ध्यान में रखते हुए स्वीकार कर सकती है जब तक कि उक्त मांग केवल राशि निकालने के उद्देश्य से न की गई हो।

3. अर्धशिक्षित आवेदकगण के मामलों में दावा अधिकरण को सामान्यतः उक्त सिद्धांत क्रमांक 1 अपनाना चाहिए जब तक कि अधिकरण इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि आवेदक को उक्त कंडिका क्रमांक दो में दर्शाये कारणों से पूरा या आंशिक भुगतान आवश्यक है और इसके लिए कारण लिखते हुए आदेश करना चाहिए।

4. शिक्षित व्यक्तियों के मामले में अधिकरण, उक्त सिद्धांत क्रमांक 1 और सिद्धांत क्रमांक 2 और 3 में जो कारण बतलाये हैं उनको देखते हुए छूट दे सकते हंै। साथ ही अधिकरण को आवेदक की उम्र, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति भी ध्यान में रखना चाहिए।

ए. बी. पद्मा विरूद्ध वेणु गोपाल, (2012) 3 एस.सी.सी. 378, में यह प्रतिपादित किया गया कि शिक्षित आवेदकों के मामले में नगद भुगतान किया जाना चाहिये।

5. विधवाओं के मामलों में दावा अधिकरणों को नियम क्रमांक 1 अपनाना चाहिए।

6. व्यक्तिगत उपहति के मामलों में यदि आगे का इलाज आवश्यक हो तब दावा अधिकरण कारण लिखते हुए इलाज के वास्तविक खर्च को ध्यान में रखते हुए राशि के आहरण की अनुमति दे सकते हैं।

7. उन सब मामलों में जहां लंबी अवधि के लिए एफ.डी. की गई है उनमें अधिकरण को यह शर्त लगाना चाहिए कि बैंक एफ.डी. पर और उसके ब्याज पर किसी भी प्रकार का ऋण या अग्रिम भुगतान आवेदक या उसके संरक्षक को नहीं करें।

8. इन सभी मामलों में अधिकरणों को आवेदकगण को आवश्यक मामलों में प्रतिकर राशि के आहरण के लिए आवेदन करने की छूट देना चाहिए। जहां प्रतिकर राशि अधिक हो वहां अधिकरण को एक से अधिक एफ.डी. करवाना चाहिए ताकि आवश्यकता होने पर उन एफ.डी. का भुगतान किया जा सके व एफडी तुड़वाने पर ब्याज का नुकसान न हो।

उक्त दिशा निर्देशों को दावा अधिकरणों को सभी दुर्घटना के प्रकरणों में प्रतिकर के निवेश के समय मस्तिष्क में रखना चाहिए।

इस संबंध में न्यायदृष्टांत ***जनरल मैनेजर, केरल स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन विरूद्ध सुसम्मा थामस, ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1631,*** अवलोकनीय है।

न्यायदृष्टांत ***लीलाबैन उदयसिंह गोहिल विरूद्ध ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1605,*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि उक्त दिशा निर्देश मोटर दुर्घटना के चोटों के प्रतिकर के सभी मामलों में लागू होंगे। प्रत्येक एफ.डी.आर. पर बैंक एक नोट लगायेगी कि कोई ऋण या अग्रिम अधिकरण की अनुमति के बिना एफ.डी.आर. पर नहीं दिया जावे। इससे दावेदारों की सुरक्षा होगी और उनका शोषण रोका जा सकेगा।

16. एफ.डी. तुड़वाने के मामले

न्यायदृष्टांत ***ए.बी. पद्मा विरूद्ध वेणु गोपाल, (2012) 3 एस.सी.सी. 378,*** में यह प्रतिपादित किया गया कि मोटर दुर्घटना दावों में प्रतिकर के भुगतान में सुसम्मा थामस (उपरोक्त) के मामले में दिये गये दिशा निर्देश आवेदकगण के हितों की सुरक्षा के लिए हैं, विशेषकर अवयस्क और अशिक्षित आवेदकगण के मामले। साथ ही गलत आधारों पर राशि आहरित करने के मामले में भी उक्त दिशा निर्देश आवेदकगण के हितों की रक्षा करते हैं लेकिन अधिकरणों को प्रत्येक मामलों को उसके गुण-दोष पर परीक्षण करके देखना चाहिए और एक कठोर रूख उस समय नहीं लेना चाहिए जब ऐसी राशि को रिलीज करने के आवेदन पर वे विचार कर रहे हों। दावा अधिकरणों के रूख और दृष्टिकोण में न्याय के उद्देश्य से परिवर्तन आवश्यक है।

न्यायदृष्टांत ***मांगी बाई विरूद्ध सुरेश, ए.आई.आर. 2001 एम.पी. 34,*** के मामले में एक विधवा ने उसके अवयस्क बच्चों के भरण पोषण के लिए राशि आहरित करने का आवेदन दिया जो अधिकरण ने खारिज किया। वास्तविक तथ्य यह है कि कठिन स्थितियों में यदि ऐसी राशि रिलीज नहीं की गई तब असहाय आवेदकगण को भारी कठिनाई होती है। यदि आवेदकगण के पेट में भूख की आग लगी हो तब ऐसे असहाय आवेदकगण बैंक खाते में उनके ब्याज की वृद्धि का सपना देखने के लिए नहीं छोड़े जा सकते। इस मामले में यह कहा गया कि विधवाओं, अवयस्क लड़कियों को इस तरह अनदेखा नहीं किया जा सकता। राशि अहरित करने की अनुमति दी गई।

एक संतुलित मार्ग यह हो सकता है कि अवयस्क, जो अध्ययनरत् हों, विधवा जिसके पास भरण-पोषण के साधन न हों, ऐसा व्यक्ति जिसका आगे इलाज चलना हो, उनको त्रैमासिक ब्याज मिलता रहे, ऐसे निर्देश दिये जा सकते हैं जिससे अवयस्कों की शिक्षा, साधनहीन विधवाओं का भरण-पोषण, दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति का इलाज भी हो सकेगा और इसके बावजूद एफडी तुड़वाने के आवेदन प्रस्तुत होते हैं तो उन्हें उक्त तथ्य लिखते हुए आसानी से निराकृत किया जा सकेगा।

17. आयकर कटौती

न्यायदृष्टांत ***यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी विरूद्ध जानकी देवी, 2009 ए.सी.जे. 1937 एम.पी.,*** के अनुसार प्रतिकर राशि पर दिये जाने वाले ब्याज पर बीमा कंपनी ने आयकर काट लिया। अधिकरण ने उक्त टी.डी.एस. की राशि बीमा कंपनी को अधिकरण में जमा करने के निर्देश दिये जो उचित नहीं माने गये।

न्यायदृष्टांत ***श्यामवती विरूद्ध करम सिंह, (2010) 12 एस.सी.सी. 378, रामकृष्ण रेड्डी विरूद्ध मैनेजर एच.एम.टी.लि., 2003 ए.सी.जे. 105*** एवं ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध कणिका साबू, 2 (2010) ए.सी.जे. 105,*** भी अवलोकनीय हैं।

18. राशि का वितरण

प्रतिकर राशि के वितरण में मृतक के अवयस्क बच्चों, मृतक की विधवा को अधिक राशि वितरित करना चाहिए क्योंकि अवयस्क बच्चों का पालन-पोषण, उनकी शिक्षा मुख्य विषय होते हैं। विधवा को अपना जीवन-यापन करना होता है। उसके बाद वृद्ध माता को राशि वितरित करना चाहिए। इसके बाद वैध प्रतिनिधियों को राशि वितरित करना चाहिए।

यह वाहन दुर्घटना से पीड़ित व्यक्तियों के लोक कल्याण का कानून है इसलिए इसमें राशि वितरण में हिंदू विधि या मुस्लिम विधि के सामान्य नियमों की बजाय उक्त स्थिति ध्यान में रखना चाहिए।

19. एक आदर्श गणना

उक्त संपूर्ण विवेचन के बाद एक उदाहरण से एक मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर की गणना समझने का प्रयास करेंगे।

एक व्यक्ति जिसकी उम्र 42 वर्ष है और वह चालक होकर 5000/- रूपये प्रतिमाह कमाता है। उसके परिवार में पत्नी उम्र 38 वर्ष, पुत्री उम्र 16 वर्ष, पुत्र उम्र 13 वर्ष व विधवा माता उम्र 65 वर्ष हैं। इस व्यक्ति की वाहन दुर्घटना में मृत्यु के बाद प्रतिकर की गणना करने पर निम्न प्रकार से प्रतिकर बनता हैः-

क्र.सं.	**शीर्षक**	**गणना**
1	वेतन	5000/- प्रतिमाह
2	भविष्य की संभावना	25% = 1250
3	व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च की कटौती	कुल आय 6200 - 1250 = 5000/-
4	14 का गुणांक प्रयुक्त करने पर प्रतिकर	5000 ग 12 ग 14 = 8,40,000/-
5	सहचर्य हानि या कन्सोर्शियम	40,000/-
6	दाह संस्कार खर्च	15,000/-
7	सम्पदा हानि	15,000/-
8	कुल प्रतिकर	9,10,000/-

उपरोक्त विवेचना से एक मृत्यु प्रकरण में प्रतिकर निर्धारण के बारे में निम्नलिखित विधिक स्थिति स्पष्ट होती हैः-

1. सर्वप्रथम उक्त दस्तावेजों व मौखिक साक्ष्य पर विचार करके मृतक की उम्र निकालना चाहिए।
2. उक्त विधिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए मृतक की वार्षिक आय निकालना चाहिए।

3. मृतक स्थायी नौकरी में हो या व्यापारी, मजदूर या किसी भी वर्ग का हो, उसकी भविष्य की संभावनाएं संबंधी राशि भविष्य की संभावनाओं की तालिका या टेबल के अनुसार निकालना चाहिए।
4. मृतक की वार्षिक आय में भविष्य की संभावनाओं की राशि जोड़ना चाहिए।
5. उक्त राशि में से मृतक का व्यक्तिगत जीवन निर्वाह खर्च उक्त तालिका या टेबल के अनुसार निकालकर कम करना चाहिए। इस प्रकार प्राप्त राशि को गुण्य या मल्टीप्लेसेंट कहते हैं।
6. मृतक की उम्र के हिसाब से उक्त तालिका के अनुसार गुणांक निकालना चाहिए।
7. उक्त गुण्य या मल्टीप्लेसेंट की राशि में उक्त गुणांक का गुणा करना चाहिए।
8. प्राप्त राशि में दाह संस्कार खर्च 15000/- रू. व सम्पदा हानि 15,000/- रूपए जोड़ना चाहिए। स्पाउस या पति-पत्नी में से किसी की मृत्यु के मामले में साहचर्य हानि 40,000/- रूपए और जोड़ना चाहिए।
9. प्राप्त राशि प्रतिकर है जिस पर 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से आवेदन दिनांक से ब्याज दिलवाना चाहिए।
10. वैध प्रतिनिधियों में उक्त राशि उक्त अनुसार वितरित करना चाहिए।
11. वितरित राशि में उक्त अनुसार नगद भुगतान या एफ.डी. करवाना चाहिए।

इस प्रकार किसी व्यक्ति की मृत्यु के मोटर दुर्घटना दावा प्रकरणों की उक्त वैधानिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए उक्त अनुसार प्रतिकर दिलवाया जा सकता है। यदि विद्वान सदस्य मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण उक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखकर प्रतिकर की गणना करेंगे तो निश्चित रूप से न्यायदृष्टांत ***सरला वर्मा*** (उपरोक्त) ने जो एकरूपता लाने की बात कही है, उस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकेगा।

•

यदि ईश्वर आपके हाथ से कुछ लेते हैं तो यह मत सोचिये कि वे आपको दंडित कर रहे हैं, वे तो केवल आपके हाथ इसलिए खाली करते हैं कि आप उन हाथों में उससे भी अच्छी कोई चीज ले सकें।

..... एक विद्वान

मैदान में हारा हुआ इंसान फिर से जीत सकता है लेकिन मन से हारा हुआ इंसान कभी नहीं जीत सकता।

..... एक विद्वान

PART – II
NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS

***151. ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.) – Sections 12 and 13**

(i) Striking out defence; effect of – Once defendant's right to defence has been striked out due to non-compliance of Section 13 (1), decree under Section 12 (1)(a) ought to be passed by the Court. (*Sushma v. Late Gulabchandra and others, 2011 (2) MPLJ 39* and *Santosh Kumar Sharma v. Sooraj Prasad Shrivastava, 2014 (4) MPLJ 3,* relied on)

(ii) Sub-letting as a ground for eviction – Accommodation in question given on rent to father for non-commercial purpose without describing nature of business – Father was conducting business of furniture and permitted his son to open mobile shop in a part of the shop – Held, in absence of description of nature of business, it cannot be said that father has sub-let the part of accommodation.

(iii) Denial of title of landlord – *Bonafide* denial of title of landlord by the tenant due to pendency of title suit in Court does not come under the category of nuisance.

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.) - धाराएं 12 एवं 13

(i) प्रतिरक्षा काट दिये जाने का प्रभाव - जब एक बार धारा 13 (1) के अननुपालन के कारण प्रतिवादी की प्रतिरक्षा काट दी गई है, तब न्यायालय को धारा 12 (1)(क) के अंतर्गत आज्ञप्ति पारित करना चाहिए। (***सुषमा विरूद्ध स्वर्गीय गुलाबचंद्र एवं अन्य, 2011 (2) एम.पी.एल.जे. 39*** तथा ***संतोष कुमार शर्मा विरूद्ध सूरज प्रसाद श्रीवास्तव, 2014 (4) एम.पी.एल.जे. 3,*** अवलंबित)

(ii) उपभाड़ेदारी का बेदखली का आधार - व्यवसाय की प्रकृति का उल्लेख किये बिना प्रश्नगत स्थान पिता को गैर-व्यवसायिक प्रयोजन के लिये भाड़े पर दिया गया था - पिता द्वारा फर्नीचर का व्यवसाय चलाया जा रहा था और उसने अपने पुत्र को दुकान के एक भाग में मोबाइल की दुकान खोलने की अनुमति दी - अभिनिर्धारित, व्यवसाय की प्रकृति के उल्लेख के अभाव में, यह नहीं कहा जा सकता कि पिता ने स्थान के भाग को उपभाड़े पर दिया है।

(iii) भू-स्वामी के स्वत्व से इंकार - न्यायालय में स्वत्व से संबंधित वाद के न्यायालय में लंबित रहने के कारण अभिधारी द्वारा भू-स्वामी के स्वत्व को सद्भाविक रूप से इंकार करना न्यूसेंस की श्रेणी में नहीं आता है।

Sushil Nigam v. Jahur Khan and another

Judgment dated 30.01.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Second Appeal No. 474 of 2013, reported in 2019 (2)MPLJ 196

•

152. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 1 Rule 10

(i) Necessary and proper party – Doctrine of *dominus litus* – Plaintiffs cannot be compelled to add a stranger to the suit where he is not a necessary party.

(ii) Test to determine a necessary party; explained:–

(1) There must be a right to some relief against such party in respect of controversy involved in the proceedings.

(2) No effective decree can be passed in absence of such party.

(iii) Necessary and proper party in eviction suit – Held, a stranger making his claim independently and adversely to the title of landlord is neither a necessary nor a proper party – His addition would convert a 'suit of eviction' into a 'suit of title'.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 1 नियम 10

(i) आवश्यक और उचित पक्षकार - वाद के स्वामी का सिद्धांत - वादीगण को एक अजनबी को उसके वाद में संयोजित करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है जहां वह आवश्यक पक्षकार नहीं है।

(ii) आवश्यक पक्षकार निर्धारित करने के लिए परीक्षण समझाया गयाः-

(1) कार्यवाही में अंतग्रस्त विवाद के संबंध में ऐसे पक्षकार के विरूद्ध किसी अनुतोष का अधिकार होना चाहिए।

(2) ऐसे पक्षकार की अनुपस्थिति में कोई प्रभावी आज्ञप्ति पारित नहीं की जा सकती है।

(iii) निष्कासन के वाद में आवश्यक और उचित पक्षकार - अभिनिर्धारित, एक अजनबी, जो भवन स्वामी के स्वत्व के विरूद्ध स्वतंत्र रूप से अपना दावा करता है, न तो आवश्यक पक्षकार है और न ही उचित पक्षकार - उसका संयोजन 'निष्कासन के वाद' को 'स्वत्व के वाद' में परिवर्तित कर देगा।

Nitin Sirbhaiya v. Divya Badhwani and others

Order dated 20.07.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Writ Petition No. 5707 of 2014, reported in ILR 2017 MP 1860

Relevant extracts from the order:

It would be apposite to consider sub-Rule (2) of Order 1 Rule 10 of CPC, which empowers the Court to add a person who ought to have been joined or whose presence before the Court may be necessary in order to enable the Court effectively and completely to adjudicate upon and settle all the questions involved in the suit. There are two tests which are to be satisfied for determining who is a necessary party:

(1) There must be a right to some relief against such party in respect of controversy involved in the proceedings.

(2) No effective decree can be passed in absence of such party.

Thus, two tests are required to be satisfied to determine the question who is a necessary party. If the person seeking addition is added in such suit, the scope of the suit cannot be enlarged and it would be practically converted into a suit for title, therefore, for effective adjudication of the controversy involved in the suit presence of such party cannot be said to be necessary.

From the above discussion, it is clear as a day light that "necessary party" are those persons in whose absence no decree can be passed by the Court and there must be a right to some relief against such party in respect of controversy involved in the proceedings and "proper party" are those whose presence is necessary before the Court effectively and completely to adjudicate upon and settle all the questions involved in the suit against such person. Keeping the above principle in mind, it is to be considered on the basis of admitted facts of this case whether the petitioner herein, who is a stranger to the suit, is a "necessary party" or a "proper party". Thus, the petitioner is not a necessary party since an effective decree could be passed in his absence as he has not purchased the suit property from the plaintiffs nor is a tenant of the plaintiffs' house.

That apart, there is another principle which cannot be forgotten. The respondents No.1 and 2/plaintiffs who have filed the suit are *dominus litus*, who cannot be forced to add party against whom they do not want to get any relief, unless it is a rule of law, as already discussed above.

x x x

In view of the aforesaid, in the considered opinion of this Court, a stranger to the suit making his claim independently and adverse to the title of the plaintiff, is neither "necessary party" nor is "proper party", therefore, the petitioner is not entitled to join as party defendant in the suit.

•

***153. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 6 Rule 17**

Amendment of plaint – Faulty description of plaintiff in plaint due to incorrect drafting by the counsel – Such inadvertent mistake of counsel cannot be refused to be corrected when such mistake is apparent from reading the plaint.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 6 नियम 17

वादपत्र में संशोधन - अधिवक्ता द्वारा किए गए गलत प्रारूपण के कारण वादपत्र में वादी का त्रुटिपूर्ण वर्णन - जब ऐसी त्रुटि वादपत्र को पढ़ने से दर्शित हो तब अधिवक्ता की ऐसी लापरवाहीपूर्ण त्रुटि को सुधारने से इंकार नहीं किया जा सकता।

Varuna Pahwa v. Mrs. Renu Chaudhary

Judgment dated 01.03.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 2431 of 2019, reported in AIR 2019 SC 1186

•

***154. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 6 Rule 17**

Whether belated amendment, which is not necessary for determining the issue, can be allowed when trial is over and the case is fixed for final arguments? Held, No.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 6 नियम 17

क्या विलंबित संशोधन, जो कि विवाद्यक निर्धारण हेतु आवश्यक नहीं है, तब अनुमत किया जा सकता है जब विचारण समाप्त हो चुका है एवं प्रकरण अंतिम तर्क हेतु नियत है? अभिनिर्धारित, नहीं।

Vijay Hathising Shah and another v. Gitaben Parshottamdas Mukhi and others

Judgment dated 25.02.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 2012 of 2019, reported in AIR 2019 SC 1119

•

***155. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 7 Rule 11**

Rejection of plaint, on ground of limitation – If suit is clearly barred by limitation but cleverly drafted to overcome limitation, suit can be rejected under Order 7 Rule 11(d). (*N.V. Srinivasa Murthy and others v. Mariyamma (dead) by proposed L.R.'s and other, AIR 2005 SC 2897,* relied on)

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 7 नियम 11

परिसीमा के आधार पर वादपत्र का नामंजूर किया जाना - यदि वाद स्पष्टतः परिसीमा द्वारा बाधित है किन्तु परिसीमा के भीतर लाये जाने के उद्देश्य से चातुर्यपूर्ण तरीके से प्रारूपित किया गया हो, तो वाद आदेश 7 नियम 11(घ) के अंतर्गत नामंजूर किया जा सकता है। (***एन.व्ही. श्रीनिवास मूर्थी एवं अन्य विरूद्ध मरियम्मा (मृत) द्वारा प्रस्तावित विधिक प्रतिनिधिगण एवं अन्य, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 2897,*** **अवलंबित)**

Raghwendra Sharan Singh v. Ram Prasanna Singh (Dead) by L.R.'s

Judgment dated 13.03.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 2960 of 2019, reported in AIR 2019 SC 1430

•

***156. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 21 Rule 15 and Order 1 Rule 9**

Execution of preliminary decree, maintainability of – Execution of decree for partition without impleading necessary parties *i.e.* judgment debtor or even Collector, amounts to non-joinder of parties.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 21 नियम 15 एवं आदेश 1 नियम 9

प्रारंभिक आज्ञप्ति का निष्पादन, पोषणीयता - आवश्यक पक्षकार अर्थात निर्णीत ऋणी या यहां तक कि कलेक्टर को संयोजित किये बिना विभाजन आज्ञप्ति का निष्पादन, पक्षकारों के असंयोजन की कोटि में आता है।

Sajjan Singh v. Kantabai alias Baban Bai and others

Order dated 12.02.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in Miscallenous Petition No. 3534 of 2018, reported in AIR 2019 MP 67

•

***157. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 21 Rule 90**

Dismissal of an application filed under Order 21 Rule 90, whether operates as a bar for subsequent filing of fresh suit? Suit decreed for grant of maintenance and charge created on properties of husband – Husband sold property during *lis* to 'X' - Auction sale of property by Court for enforcement of decree – 'X' claiming to be bonafide purchaser filed an objection to auction sale under Order 21 Rule 90 – Application dismissed – 'X' filed suit for declaration of title and possession by suppressing factum of dismissal of application of objection – Held, 'X' is precluded by virtue of provisions of Order 21 Rule 92(3) from bringing a fresh suit.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 21 नियम 90

आदेश 21 नियम 90 के अधीन संस्थित आवेदन का खारिज किया जाना, क्या पश्चात् में नया वाद संस्थित करने पर वर्जन के रूप में लागू होता है? पति की संपत्ति पर सृजित भार तथा भरणपोषण अनुदत्त कराये जाने बावत् वाद आज्ञप्त किया गया - वाद के लंबित रहते दौरान पति द्वारा संपत्ति 'एक्स' को विक्रय की गई - आज्ञप्ति को प्रभावी बनाने के लिए न्यायालय द्वारा संपत्ति की नीलामी बिक्री की गई - 'एक्स' द्वारा सद्भावी क्रेता का दावा करते हुए आदेश 21 नियम 90 के अंतर्गत नीलामी विक्रय के संबंध में आक्षेप किया गया - आवेदन खारिज किया गया - 'एक्स' द्वारा आक्षेप के आवेदन की खारिजी के तथ्य को छुपाते हुए घोषणा तथा आधिपत्य हेतु वाद संस्थित किया गया - अभिनिर्धारित, 'एक्स' आदेष 21 नियम 92(3) के आधार पर नया वाद संस्थित करने से प्रवारित है।

Siddagangaiah (dead) through L.R.'s v. N. K. Girijaja Shetty (dead) through L.R.'s

Judgment dated 11.05.2018 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 5007 of 2018, reported in 2019 (2) MPLJ 116 (SC)

•

***158. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 39 Rule 1 and 2**

ELECTRICITY ACT, 2003 – Section 67

Interim injunction; denail of – Suit filed for restraining construction of electricity sub-station on disputed land – At the stage when electricity sub-station had already been constructed and was being energized for supply of electricity, granting an injunction against construction of electricity sub-station would seriously affect public interest and welfare scheme for providing electricity to people in locality – No irreparable loss or injury shall be caused by denial of injunction as compensation shall be granted under Section 67 of Electricity Act, 2003, if found entitled – Denial of interim injunction is justified.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 39 नियम 1 एवं 2

विद्युत अधिनियम, 2003 - धारा 67

अंतरिम निषेधाज्ञा जारी करने से इंकार करना - वाद विवादग्रस्त भूमि पर बिजली उपकेन्द्र के निर्माण को अवरूद्व कराने हेतु संस्थित किया गया - उस प्रक्रम पर जब बिजली उपकेन्द्र का निर्माण लगभग पूर्ण हो चुका था और बिजली आपूर्ति परिदत्त किया जा रहा था, बिजली उपकेन्द्र के निर्माण के विरूद्ध निषेधाज्ञा जारी करना लोकहित तथा आसपास के लोगों को बिजली उपलब्ध कराने की जन कल्याणकारी योजना को गंभीर रूप से प्रभावित करेगा - निषेधाज्ञा जारी करने से इंकार करने पर कोई अपूर्णीय क्षति या हानि कारित नहीं होगी क्योंकि यदि हकदार पाया जाता है, तो धारा 67 विद्युत अधिनियम के अंतर्गत प्रतिकर प्रदान किया जायेगा - अंतरिम निषेधाज्ञा जारी करने से इंकार करना न्यायोचित है।

State of Jharkhand v. Surendra Kumar Srivastava and others

Judgment dated 03.01.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 21 of 2019, reported in (2019) 4 SCC 214

•

***159.CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 39 Rule 2A**

Disobedience of an injunction order – Sale of disputed property executed by power of attorney holder and not by principal itself – Power of attorney holder executed sale deed in good faith without having knowledge of order of the Court – Principal is not criminally liable for acts of his agent.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 39 नियम 2क

निषेधाज्ञा आदेश की अवज्ञा - विवादग्रस्त संपत्ति का विक्रय मुख्तारनामा धारक द्वारा निष्पादित किया गया न कि स्वयं मालिक द्वारा - मुख्तारनामा धारक द्वारा विक्रय विलेख का निष्पादन न्यायालय के आदेश के ज्ञान के बिना सद्भाव में किया गया - मालिक उसके अभिकर्ता के कृत्यों के लिये आपराधिक रूप से दायी नहीं है।

Smt. Kalpana Mudgal v. Vinod Kumar Sharma and others

Order dated 29.01.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Civil Revision No. 470 of 2018, reported in AIR 2019 MP 78

•

160. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 125

(i) Maintenance application – Delay in reporting cruelty – Effect explained – Held, generally the wife does not lodge a report so that the situation does not get aggravated – But, when things go out of control and become intolerable, the wife takes the drastic step of lodging the report against her husband.

(ii) Maintenance – Fundamental principles behind Section 125 CrPC – Explained.

(iii) Entitlement of wife to maintenance – Sufficient cause for wife to live separately – Wife filed a complaint under Domestic Violence Act which was later compromised – She later filed a complaint under Section 498A IPC also – Wife suffering from disease of fits – Husband not providing her any maintenance – Held, this amounts to desertion and cruelty by husband which is a ground for wife to live separately.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125

(i) भरण-पोषण के लिए आवेदन - क्रूरता की रिपोर्ट में विलंब - प्रभाव समझाया गया - अभिनिर्धारित, समान्यता पत्नी क्रूरता की रिपोर्ट नहीं करती है ताकि स्थितियां और गंभीर न हों - परंतु, जब परिस्थितियां नियंत्रण से बाहर और असहनीय हो जाती हैं, तब पत्नी अपने पति के विरूद्ध रिपोर्ट लेखबद्ध कराने का कठोर कदम उठाती है।

(ii) भरण-पोषण - धारा 125 दं.प्र.सं. के पीछे के मौलिक सिद्धांत - समझाए गए।

(iii) पत्नी का भरण-पोषण पाने की हकदार होना - पत्नी का पति से अलग रहने का पर्याप्त कारण - पत्नी ने घरेलू हिंसा अधिनियम के अधीन एक शिकायत प्रस्तुत की थी जिसमें बाद में समझौता हो गया - उसने बाद में धारा 498ए भा.दं.सं. के अधीन परिवाद भी प्रस्तुत किया - पत्नी मिर्गी के रोग से पीड़ित थी - पति उसे कोई भी भरण-पोषण नहीं दे रहा था - अभिनिर्धारित, यह पति द्वारा परित्याग एवं क्रूरता की श्रेणी में आता है जो पत्नी को उससे पृथक रहने का आधार है।

Nirmala Dhurve (Smt.) v. Ramgopal

Judgment dated 15.03.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Criminal Revision No. 687 of 2015, reported in ILR 2017 MP 1972

Relevant extracts from the judgment:

As regarding misbehaviour or cruelty caused to the petitioner-wife, it would not be exaggeration to state that, in such a situation generally the wife does not lodge a report so that the situation should not aggravate thinking that some day the behaviour would change and she tends to live in her matrimonial home. But, when things go out of control and become intolerable, the wife takes the drastic step of lodging the report against her husband, finding no chance of any re-conciliation.

x x x

The inherent and fundamental principle behind Section 125 of the Code of Criminal Procedure is for amelioration of the financial state of affairs as well as mental agony and anguish which a woman suffers when she is compelled to leave her matrimonial home.

In ***Shamima Farooqui v. Shahid Khan, (2015) 5 SCC 705,*** the Hon'ble Apex Court observed that the statute commands that there has to be some acceptable arrangements so that she can sustain herself. As long as the applicant is alive, she is entitled to grant maintenance within the parameters of Section 125 of the Code of Criminal Procedure. It has to be adequate so that she can live with dignity, as she would have lived in her matrimonial home. She cannot be compelled to become destitute or beggar. The principle of sustenance gets more heightened when she needs treatment. The sustenance does not mean and can never be allowed to mean mere survival. The Hon'ble Apex Court in the case of ***Shamima Farooqui*** (supra) has observed that the woman who is constrained to leave marital home should not be allowed to feel that she has fallen from the grace and move hither and tither arranging for sustenance. She is entitled to lead life in the similar manner as she would have lived in the house of her husband.

x x x

As it has been held earlier that petitioner/wife is living separately because she was subjected to cruelty and was not being provided proper medical treatment, she has the right to live separately from her husband. Hence, she is entitled to claim maintenance from her husband. In the case of ***Lajja Bai v. Ram Singh, 1996 (II) MPWN 142,*** it is held that if a woman is living separately from her husband to avoid dowry-related harassment and torture, then she is entitled to live separately and she can claim maintenance from her husband.

Keeping in view the above circumstances and the fact that husband is not providing any maintenance to her, whereas she is having ailment, therefore, she needed the most. Rejection of the application under Section 125 Cr.P.C., neither proper nor good in the eye of law.

•

161. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 125

EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 67 and 68

(i) Proof of documents – Admission – Once the fact of execution of document is admitted by both the parties, there is no legal necessity for the applicant to establish such document by leading evidence.

(ii) Entitlement of wife to maintenance – Validity of marriage was in question – Held, where applicant and respondent entered into marriage and started living as husband and wife for considerable period of time, respondent had complete knowledge of previous marriage of the applicant, then the respondent husband cannot be permitted tochallenge the validity of marriage – A party to a marriage cannot take advantage of one's own wrong – It is his legal obligation to maintain his wife.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएं 67 एवं 68

(i) दस्तावेजों का प्रमाण - स्वीकारोक्ति - जब एक बार दस्तावेज के निष्पादन के तथ्य को दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, वहां आवेदक को ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य द्वारा स्थापित करने की कोई विधिक आवष्यकता नहीं है।

(ii) पत्नी की भरण पोषण पाने की पात्रता - विवाह की वैधता प्रश्नगत थी - अभिनिर्धारित, जहां आवेदिका और प्रत्यर्थी ने विवाह किया और काफी समय तक पति-पत्नी के रूप में रहने लगे थे, प्रत्यर्थी को आवेदिका के पूर्व विवाह का पूर्ण ज्ञान था, वहां प्रत्यर्थी-पति को विवाह की वैधता को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती - विवाह का एक पक्ष स्वयं के दोष का लाभ नहीं उठा सकता है - अपनी पत्नी का भरण-पोषण करना उसका विधिक दायित्व है।

Laxmi Yadav v. Barelal Yadav

Order dated 28.06.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Criminal Revision No. 888 of 2015, reported in ILR 2017 MP 2006

Relevant extracts from the order:

Having considered the rival contentions put forth on behalf of the parties and perusal of the record, this Court is of the opinion that the Family Court has erred in rejecting the application moved by the applicant under Section 125 of CrPC on the ground that the applicant has failed to establish her marriage with the respondent. In order to arrive at this conclusion, this Court has taken note of the fact that in the reply filed by the respondent in response to the application under Section 125 of CrPC, he has categorically admitted execution of document

dated 14.3.2011 before the Public Notary. However, the reason which is assigned to disown such document is that he got swayed away by the interaction with the applicant and, therefore, signed such document. In the considered opinion of this Court, such justification cannot be taken as sufficient for holding that the document is not binding on the respondent, as the same could have been brushed aside if the respondent could have proved before the Family Court that the document was executed in coercion or bymisrepresentation. Once the respondent has admitted his signature on the instrument then it obviously means that he also admits the contents mentioned therein. Perusal of the contents shows that the applicant fairly declared about the existence of earlier marriage with Mukesh and had categorically stated that such marriage is no longer in existence on account of divorce. Further, both the parties have declared that they have entered into the marriage by following the Hindu rituals.

The Supreme Court in the case of ***Muddasani Venkata Narsaiah v. Muddasani Sarojana, (2016) 12 SCC 288,*** has held that once the fact of execution of document is admitted by both the parties then there is no legal necessity for the plaintiff or the applicant to establish such document by leading evidence.

x x x

While taking this view of the matter this Court feels it necessary to deal with the instant case from another view point which proposes that the applicant and respondent did not enter into a valid marriage. In this regard, the basis of discussion is the law laid down in the case of ***Badshah v. Urmila Badshah Godse, (2014) 1 SCC 188,*** in which the Supreme Court has categorically observed that once the party started residing together for a considerable period of time as husband-wife whereas, the husband did not inform the wife about the existence of earlier marriage and later on resisted the claim of the wife under Section 125 of CrPC on the ground that there is absence of valid marriage, proceeded to hold that such defence by the husband cannot be permitted because the same would amount to taking advantage of your own wrong.

In the light of such observation, if the facts of the present case are examined then it is clear that the respondent entered into the marriage with the applicant and started residing with her for a considerable period of time in the capacity of husband after having complete knowledge of the existence of previous marriage of the applicant and when she made an application under Section 125 of CrPC, the respondent has taken a plea that no valid marriage existed between the parties, which cannot be allowed as the same would amount to taking advantage of his own wrong and as they have resided as husband-wife for a considerable period of time, it is his legal obligation to maintain her.

•

***162. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 195 (1)(b) and 340**

(i) Perjury – When these provisions of Sections 195 (1)(b) and 340 CrPC are applicable? Held, to invoke Section 340 read with 195 (1)(b) CrPC, questionable statement should have been made deliberately and consciously – It should have been found to be false comparing it with unimpeachable evidence, documentary or otherwise.

(ii) Perjury – Husband filed application of anticipatory bail alleging desertion and illicit relationship of wife – Investigating officer filed preliminary investigation report that such allegations are false – High Court allowed application under Section 340 read with Section 195 (1)(b) CrPC – In appeal, order set aside – Held, statements made in bail application are yet to be tested as evidence has not yet been led – Preliminary investigation report is not unimpeachable evidence to prove the statements to be false.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं 195 (1)(ख) एवं 340

(i) मिथ्या साक्ष्य - कब धारा 195 (1)(ख) एवं 340 के प्रावधान लागू होते हैं? अभिनिर्धारित, दं.प्र.सं. की धारा 195 (1)(ख) सहपठित धारा 340 को लागू करने के लिए प्रश्नगत प्रकथन जानबूझकर और सचेत रूप से किया गया हो - इसे अचूक साक्ष्य, दस्तावेजी अथवा अन्यथा से, तुलना करने पर गलत पाया जाना चाहिए।

(ii) मिथ्या साक्ष्य - पति ने पत्नी पर निर्वासन और अवैध संबंध का आरोप लगाते हुए अग्रिम जमानत का आवेदन प्रस्तुत किया - अनुसंधान अधिकारी ने प्रारंभिक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की कि ऐसे आरोप झूठे हैं - उच्च न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 340 सहपठित धारा 195 (1)(ख) का आवेदन स्वीकार किया - अपील में, आदेश अपास्त किया गया - अभिनिर्धारित, जमानत आवेदन में दिए गए कथनों का अभी परीक्षण किया जाना है क्योंकि अभी तक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं हुई है - कथनों को असत्य साबित करने के लिए प्रारंभिक जांच रिपोर्ट स्पष्ट साक्ष्य नहीं है।

Aarish Asgar Qureshi v. Fareed Ahmed Qureshi and another

Judgment dated 26.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 387 of 2019, reported in 2019 (2) Crimes 43 (SC)

•

163. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 235 (2) and 354

(i) Pre-sentence hearing – Accused must be provided real and effective opportunity to adduce material relating to mitigating circumstances – This hearing may be provided on the same day after passing of judgment of conviction, if accused is ready

to submit his arguments – On facts and circumstances of a case, Court may fix a separate date for hearing on sentence – Hearing to be measured qualitatively and not quantitatively.

(ii) Pre-sentence hearing – Imposition of minimum sentence – Held, where minimum sentence is proposed to be imposed, question of presentence hearing does not arise.

(iii) Pre-sentence hearing – Effect of non-compliance of Section 235 (2) CrPC – Held, appellate Court can remedy the effect either by remanding the matter or by itself giving an effective opportunity to the accused – Directions issued for trial Courts and appellate Courts.

(iv) Death sentence – Rarest of rare cases – Mitigating circumstances – Whether mental illness after conviction is a mitigating circumstance? Held, Yes – Person with mental illness is not capable of understanding the deterrent effect and purpose of death sentence – Post conviction mental illness is recognized as mitigating factor in death penalty – 'Test of severity' for assessing mental illness propounded – Directions issued.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं 235 (2) एवं 354

(i) दण्ड-पूर्व सुनवाई - अभियुक्त को गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियों से संबंधित सामग्री प्रस्तुत करने के लिए वास्तविक और प्रभावी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए - यह सुनवाई दोषसिद्धि के पश्चात् उसी दिन भी प्रदान की जा सकती है, यदि अभियुक्त अपने तर्क प्रस्तुत करने के लिए तैयार है - मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर, न्यायालय दण्ड पर सुनवाई के लिए एक पृथक तिथि भी नियत कर सकती है - सुनवाई को गुणात्मक रूप से मापा जाना चाहिए न कि मात्रात्मक रूप से।

(ii) दण्ड-पूर्व सुनवाई - न्यूनतम दण्ड अधिरोपित करना - अभिनिर्धारित, जहां न्यूनतम दण्ड प्रस्तावित किया जाता है, वहां दण्ड-पूर्व सुनवाई का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

(iii) दण्ड-पूर्व सुनवाई - धारा 235 (2) दं.प्र.सं के उल्लंघन का प्रभाव -अभिनिर्धारित, अपीलीय न्यायालय मामले को प्रतिप्रेषित कर अथवा अभियुक्त को स्वयं एक प्रभावी अवसर देकर उल्लंघन के प्रभाव का निवारण कर सकती है - विचारण न्यायालय एवं अपीलीय न्यायालय के लिए निर्देश जारी किए गए।

(iv) मृत्यु दण्ड - विरल से विरलतम मामला - गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियां - क्या दोषसिद्धि के पश्चात मानसिक बीमारी, गंभीरता कम करने वाली परिस्थिति है? अभिनिर्धारित, हां - मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्ति मृत्यु दण्ड के घातक प्रभाव और उद्देश्य को समझने में सक्षम नहीं है - दोषसिद्धि के पश्चात की मानसिक बीमारी को मृत्यु दण्ड के लिए एक गंभीरता कम करने वाली

परिस्थिति के रूप में पहचाना जाता है - मानसिक बीमारी का आंकलन करने के लिए 'गंभीरता का परीक्षण' का सिद्धांत प्रतिपादित - निर्देश जारी किए गए।

Accused 'X' v. State of Maharashtra

Judgment dated 12.04.2019 passed by the Supreme Court in Review Petition (Criminal) No. 301 of 2008, reported in 2019 (2) Crimes 175 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

It may not be out of context to note that in case the minimum sentence is proposed to be imposed upon the accused, the question of providing an opportunity under Section 235 (2) would not arise. (See ***Tarlok Singh v. State of Punjab, (1977) 3 SCC 218; Ramdeo Chauhan v. State of Assam, (2001) 5 SCC 714***).

x x x

There cannot be any doubt that at the stage of hearing on sentence, generally, the accused argues based on the mitigating circumstances in his favour for imposition of lesser sentence. On the other hand, the State/the complainant would argue based on the aggravating circumstances against the accused to support the contention relating to imposition of higher sentence. The object of Section 235 (2) of the Cr.P.C is to provide an opportunity for accused to adduce mitigating circumstances. This does not mean, however, that the trial Court can fulfill the requirements of Section 235 (2) of the Cr.P.C. only by adjourning the matter for one or two days to hear the parties on sentence. If the accused is ready to submit his arguments on this aspect on the very day of the pronouncement of the judgment of conviction, it is open for the trial Court to hear the parties on sentence on the same day after passing the judgment of conviction. In a given case, based on facts and circumstances, the trial Court may choose to hear the parties on the next day or after two days as well.

In light of the above discussion, we are of the opinion that as long as the spirit and purpose of Section 235 (2) is met, inasmuch as the accused is afforded a real and effective opportunity to plead his case with respect to sentencing, whether simply by way of oral submissions or by also bringing pertinent material on record, there is no bar on the pre-sentencing hearing taking place on the same day as the pre-conviction hearing. Depending on the facts and circumstances, a separate date may be required for hearing on sentence, but it is equally permissible to argue on the question of sentence on the same day if the parties wish to do so.

x x x

Now, we need to consider the impact of non-compliance of procedure provided under Section 235 (2) of CrPC by the trial Court. Even assuming that a procedural irregularity is committed by the trial Court to a certain extent on the question of hearing on sentence, the violation can be remedied by the

appellate Court by providing sufficient opportunity of being heard on sentence. It must be kept in mind that Section 465 of the CrPC mandates that no finding, sentence or order passed by the Court of competent jurisdiction shall be reversed or altered by the Court of appeal on account of any error, omission or irregularity in the order, judgment and other proceedings before or during trial unless such error, omission or irregularity results in a failure of justice. Such non-compliance can be remedied by the appellate Court by either remanding the matter in appropriate cases or by itself giving an effective opportunity to the accused.

As noted above, many cases have grappled with the question as to the choice between the two. The approach of this Court needs to be rationalized and understood in the light of cautionary approach discussed above. From the aforesaid discussion, following dicta emerge-

i. That the term 'hearing' occurring under Section 235 (2) requires the accused and prosecution at their option, to be given a meaningful opportunity.
ii. Meaningful hearing under Section 235 (2) of CrPC, in the usual course, is not conditional upon time or number of days granted for the same. It is to be measured qualitatively and not quantitatively.
iii. The trial Court need to comply with the mandate of Section 235 (2) of CrPC with best efforts.
iv. Non-compliance can be rectified at the appellate stage as well, by providing meaningful opportunity.
v. If such an opportunity is not provided by the trial Court, the appellate Court needs to balance various considerations and either afford an opportunity before itself or remand back to trial Court, in appropriate case, for fresh consideration.
vi. However, the accused need to satisfy the appellate Courts, *inter alia* by pleading on the grounds as to existence of mitigating circumstances, for its further consideration.
vii. Being aware of certain harsh realities such as long protracted delays or jail appeals through legal aid etc., wherein the appellate Court, in appropriate cases, may take recourse of independent inquiries on relevant facts ordered by the Court itself.
viii. If no such grounds are brought by the accused before the appellate Courts, then it is not obligated to take recourse under Section 235 (2) of CrPC.

x x x

We note that, usually, mitigating factors are associated with the criminal and aggravating factors are relatable to commission of the crime. These mitigating factors include considerations such as the accused's age, socio-economic condition etc. We note that the ground claimed by 'accused x' is arising after a

long-time gap after crime and conviction. Therefore, the justification to include the same as a mitigating factor does not tie in with the equities of the case, rather the normative justification is founded in the Constitution as well as the jurisprudence of the 'rarest of the rare' doctrine. It is now settled that the death penalty can only be imposed in the rarest of the rare case which requires a consideration of the totality of circumstances. In this light, we have to assess the inclusion of post-conviction mental illness as a determining factor to disqualify as a 'rarest of the rare' case.

All human beings possess the capacities inherent in their nature even though, because of infancy, disability, or senility, they may not yet, not now, or no longer have the ability to exercise them. When such disability occurs, a person may not be in a position to understand the implications of his actions and the consequence it entails. In this situation, the execution of such a person would lower the majesty of law.

Article 20 (1) of the Indian Constitution imbibes the idea communication/ knowledge for the accused about the crime and its punishment. It is this communicative element, which is ingrained in the sentence (death penalty), that gives meaning to the punishments in a criminal proceeding. The notion of death penalty and the sufferance it brings along, causes incapacitation and is idealized to invoke a sense of deterrence. If the accused is not able to understand the impact and purpose of his execution, because of his disability, then the *raison d' tre* for the execution itself collapses.

All human beings possess the capacities inherent in their nature even though, because of infancy, disability, or senility, they may not yet, not now, or no longer have the ability to exercise them. When such disability occurs, a person may not be in a position to understand the implications of his actions and the consequence it entails. In this situation, the execution of such a person would lower the majesty of law.

In line with the above discussion, we note that there appear to be no set disorders/disabilities for evaluating the 'severe mental illness', however a 'test of severity' can be a guiding factor for recognizing those mental illness which qualify for an exemption. Therefore, the test envisaged herein predicates that the offender needs to have a severe mental illness or disability, which simply means that a medical professional would objectively consider the illness to be most serious so that he cannot understand or comprehend the nature and purpose behind the imposition of such punishment. These disorders generally include schizophrenia, other serious psychotic disorders, and dissociative disorders-with schizophrenia.

Following directions need to be followed in the future cases in light of the above discussions.

a. That the post-conviction severe mental illness will be a mitigating factor that the appellate Court, in appropriate cases, needs to consider while sentencing an accused to death penalty.
b. The assessment of such disability should be conducted by a multi-disciplinary team of qualified professionals (experienced medical practitioners,criminologists etc), including professional with expertise in accused's particular mental illness.
c. The burden is on the accused to prove by a preponderance of clear evidence that he is suffering with severe mental illness. The accused has to demonstrate active, residual or prodromal symptoms, that the severe mental disability was manifesting.
d. The State may offer evidence to rebut such claim.
e. Court in appropriate cases could setup a panel to submit an expert report.
f. 'Test of severity' envisaged herein predicates that the offender needs to have a severe mental illness or disability, which simply means that objectively the illness needs to be most serious that the accused cannot understand or comprehend the nature and purpose behind the imposition of such punishment.

•

164. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 311

(i) Examination of material witness – Factors to be considered – Factors of duration of a case or delay in trial are irrelevant when a prayer is made for examination of a material witness.

(ii) Who is material witness? Held, the determinative factor is whether summoning of said witness is, in fact essential to the just decision of case – Deceased died an unnatural death in Nigeria – First post-mortem was carried out by a Doctor in Nigeria – Cause of death stated therein was "asphyxia secondary to strangulation" – Second post-mortem conducted in India after 15 days – Medical Board opined that no definite opinion could be given regarding cause of death – Accused neither accepted copy of first post-mortem report nor denied to cross-examine the said doctor – Held, the doctor who conducted first post-mortem is a material witness.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 311

(i) महत्वपूर्ण साक्षी की परीक्षा - विचार किए जाने वाले कारक - जब एक महत्वपूर्ण साक्षी की परीक्षा के लिए प्रार्थना की जाती है तब किसी मामले की लंबित रहने की अवधि अथवा विचारण में विलंब के कारक अप्रासंगिक होते हैं।

(ii) तात्विक साक्षी कौन है? अभिनिर्धारित, निर्धारक कारक यह है कि क्या उक्त साक्षी को बुलाना वास्तव में मामले के सही निर्णय के लिए आवश्यक है - मृतक की

नाइजीरिया में अप्राकृतिक मृत्यु हुई - प्रथम पोस्टमार्टम नाइजीरिया में डाक्टर द्वारा किया गया था - मृत्यु का कारण ''गला घोंटने से उत्पन्न श्वासावरोध'' था - 15 दिवस पश्चात भारत में दूसरा पोस्टमार्टम किया गया - मेडिकल बोर्ड ने राय दी कि मृत्यु के कारण के बारे में कोई निश्चित अभिमत नहीं दिया जा सकता है - अभियुक्त ने न तो पहली पीएम रिपोर्ट स्वीकार की और न ही उस चिकित्सक के प्रतिपरीक्षण से इनकार किया - अभिनिर्धारित, वह चिकित्सक जिसने प्रथम पोस्टमार्टम किया था, एक तात्विक साक्षी है।

Manju Devi v. State of Rajasthan

Judgment dated 16.04.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 688 of 2019, reported in 2019 (2) Crimes 193 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

Though it is expected that the trial of a sessions case should proceed with reasonable expedition and pendency of such a matter for about 8-9 years is not desirable but then, the length/duration of a case cannot displace the basic requirement of ensuring the just decision after taking all the necessary and material evidence on record. In other words, the age of a case, by itself, cannot be decisive of the matter when a prayer is made for examination of a material witness.

x x x

It needs hardly any emphasis that the discretionary powers like those under Section 311 CrPC are essentially intended to ensure that every necessary and appropriate measure is taken by the Court to keep the record straight and to clear any ambiguity in so far as the evidence is concerned as also to ensure that no prejudice is caused to anyone. The principles underlying Section 311 CrPC and amplitude of the powers of the Court thereunder have been explained by this Court in several decisions.

The indisputable fact situation of the case remains that the daughter of the appellant died an unnatural death on 14.01.2010 in Nigeria, where she was living with her husband (the respondent No. 2), who is standing the trial for offences under Sections 302, 304-B and 498-A IPC. The first post-mortem of the dead-body of the daughter of appellant was carried out on 16.01.2010 in Aminu Kanu Teaching Hospital, Nigeria by the said Dr. I. Yusuf. A copy of the post-mortem report prepared by the said doctor in Nigeria has, of course, been placed on record wherein, the cause of death is stated as “asphyxia secondary to strangulation”. Though the dead-body of the daughter of appellant was brought to India on 29.01.2010 and Medical Board was constituted for conducting the post-mortem but then, the Board found that no definite opinion could be given regarding the time and cause of death. The investigating agency, for the reasons best known to it, did not cite the said doctor, who conducted the first post-

mortem in Nigeria as a witness. It is also not the case on behalf of the accused that the copy of the post-mortem report dated 16.01.2010 prepared in Nigeria was not disputed and/or he would not be seeking to cross-examine the said doctor, if he is examined as a witness in this matter. In the given set of facts and circumstances, evident it is that the testimony of the said doctor who conducted the first post-mortem in Nigeria is germane to the questions involved in this matter; and for a just decision of the case with adequate opportunity to both the parties to put forward their case, the application under Section 311 CrPC ought to have been allowed.

•

165. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 311

(i) Summoning of witness – Section 311 has two parts, first is discretionary while second is mandatory and imposes obligation on the Court – This power should be invoked by the Court only to meet the ends of Justice.

(ii) Summoning of witness – Successive application – First application for summoning handwriting expert by prosecution was allowed in the year 2004 – The witness didn't turn up and successive applications were filed to re-summon that witness – Prosecution failed to secure his attendance in 13 years – Several last opportunities and direction to conclude trial within a time frame were also given by High Court – Held, Courts should not encourage filing of successive applications for recall of a witness where reasons for non-examination are not satisfactory.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 311

(i) साक्षी को बुलाया जाना - धारा 311 के दो भाग हैं, पहला विवेकाधीन है जबकि दूसरा अनिवार्य है और न्यायालय पर दायित्व अधिरोपित करता है - यह शक्ति न्यायालय द्वारा न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ही उपयोग की जानी चाहिए।

(ii) साक्षी को बुलाया जाना - उत्तरोत्तर आवेदन - अभियोजन पक्ष द्वारा हस्तलेख विशेषज्ञ को बुलाने के लिए प्रथम आवेदन सन् 2004 में स्वीकर किया गया था - साक्षी उपस्थित नहीं हुआ था और उसे पुनः बुलाने के लिए उत्तरोत्तर आवेदन प्रस्तुत किए गए थे - अभियोजन पक्ष 13 वर्ष में उसकी उपस्थिति सुनिश्चित कराने में विफल रहा था - उच्च न्यायालय द्वारा भी कई अंतिम अवसर और समय सीमा के भीतर मामले का निराकरण करने के लिए निर्देश दिए गए थे - अभिनिर्धारित, न्यायालयों को साक्षी को पुनः आहूत करने के उत्तरोत्तर आवेदन प्रोत्साहित नहीं करने चाहिए जब परीक्षण न कराने के कारण संतोषजनक नहीं हैं।

Swapan Kumar Chatterjee v. Central Bureau of Investigation

Judgment dated 04.01.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 15 of 2019, reported in 2019 (2) Crimes 32 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

The first part of this Section which is permissive gives purely discretionary authority to the criminal Court and enables it at any stage of inquiry, trial or other proceedings under the Code to act in one of the three ways, namely, (i) to summon any person as a witness; or (ii) to examine any person in attendance, though not summoned as a witness; or (iii) to recall and re-examine any person already examined. The second part, which is mandatory, imposes an obligation on the Court (i) to summon and examine or (ii) to recall and re-examine any such person if his evidence appears to be essential to the just decision of the case.

x x x

It is well settled that the power conferred under Section 311 should be invoked by the Court only to meet the ends of justice. The power is to be exercised only for strong and valid reasons and it should be exercised with great caution and circumspection. The Court has wide power under this Section to even recall witnesses for reexamination or further examination, necessary in the interest of justice, but the same has to be exercised after taking into consideration the facts and circumstances of each case. The power under this provision shall not be exercised if the Court is of the view that the application has been filed as an abuse of the process of law.

Where the prosecution evidence has been closed long back and the reasons for non-examination of the witness earlier is not satisfactory, the summoning of the witness at belated stage would cause great prejudice to the accused and should not be allowed. Similarly, the Court should not encourage the filing of successive applications for recall of a witness under this provision.

In the instant case, the case was registered in the year 1983. 29 prosecution witnesses have already been examined. The application of the prosecution to examine Mr. H.S. Tuteja was allowed in the year 2004. However, prosecution has failed to keep him in Court for his examination. Thereafter, multiple applications have been filed to summon him and all of them have been allowed. However, the prosecution has failed to procure his attendance in the Court.

As mentioned earlier, on 28.07.2011 the High Court of Calcutta gave the prosecution a last opportunity to procure his attendance and declared that in case of failure on the part of the CBI to procure the attendance of witnesses and get them examined, the trial Court will proceed further with the trial without granting any further adjournment to the CBI. Even thereafter, the applications filed by the CBI have been allowed.

On 15.09.2014, yet again, the High Court in a criminal revision application observed that since the trial is pending for a long time, steps must be taken by the trial Court to conclude the trial as expeditiously as possible, preferably within six months. Even thereafter, the trial Court has allowed the application filed by the prosecution for summoning Mr. H.S. Tuteja, which order has been confirmed by the High Court. In our view, the High Court ought to have accepted the appeal and rejected the application of the prosecution for summoning the witness, Mr. H.S. Tuteja.

•

***166. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 315**

Examination of accused as defence witness; permissibility of – In ordinary course, since Section 315 of the Code does not prescribe any time limit for filing an application, Court shall not reject permission to examine the accused as a defence witness unless convincing reasons are not available on record.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 315

अभियुक्त की बचाव साक्षी के रूप में परीक्षा की अनुज्ञेयता - सामान्य अनुक्रम में, चूंकि संहिता की धारा 315, आवेदन किये जाने हेतु कोई परिसीमा विहित नहीं करती, न्यायालय अभियुक्त को बचाव साक्षी के रूप में परीक्षण की अनुज्ञा को नामंजूर नहीं करेगा जब तक कि अभिलेख पर विश्वासप्रद कारण उपलब्ध न हों।

N. Saminathan v. M.P. Thangavelu

Order dated 19.12.2018 passed by the Madras High Court in Criminal Revision No. 43 of 2018, reported in 2019 CrLJ 1160

•

167. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 319

Summoning of additional accused persons on the basis of mere disclosure of names by some witnesses during trial – No primary evidence by witnesses to disclose role of persons sought to be arraigned – Held, it is not strong and cogent evidence to add such persons as additional accused, especially when complaint is filed against family members and where names or their identities are not disclosed at first opportunity, neither in FIR nor in the statement recorded under Section 161 of the Code.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319

विचारण के दौरान कुछ साक्षियों द्वारा मात्र नामों के प्रकटन के आधार पर अतिरिक्त अभियुक्तगण को समन करना - साक्षीगण द्वारा अभियुक्त के रूप में जोडे जाने वाले व्यक्तियों की भूमिका दर्शित करने वाली कोई प्राथमिक साक्ष्य नहीं दी गई - अभिनिर्धारित, ऐसे व्यक्तियों को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में जोड़ने के लिये यह

एक दृढ़ एवं अकाट्य साक्ष्य नहीं है, विशिष्टतः तब, जब परिवाद कुटुम्ब के सदस्यों के विरूद्ध संस्थित किया गया हो और जिसमें उनके नामों या पहचान को प्रथम अवसर पर, न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में और न ही संहिता की धारा 161 के अंतर्गत अभिलिखित कथनों में, उजागर किया गया हो।

Periyasami and others v. S. Nallasamy

Judgment dated 14.03.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 456 of 2019, reported in AIR 2019 SC 1426

Relevant extracts from the judgment:

In the First Information Report or in the statements recorded under Section 161 of the Code, the names of the appellants or any other description have not been given so as to identify them. The allegations in the FIR are vague and can be used any time to include any person in the absence of description in the First Information Report to identify such person. There is no assertion in respect of the villages to which the additional accused belongs. Therefore, there is no strong or cogent evidence to make the appellants stand the trial for the offences under Sections 147, 448, 294 and 506 of IPC in view of the judgment in ***Hardeep Singh v. State of Punjab, (2014) 3 SCC 92.*** The additional accused cannot be summoned under Section 319 of the Code in casual and cavalier manner in the absence of strong and cogent evidence. Under Section 319 of the Code additional accused can be summoned only if there is more than *prima facie* case as is required at the time of framing of charge but which is less than the satisfaction required at the time of conclusion of the trial convicting the accused.

The High Court has set aside the order passed by the learned Magistrate only on the basis of the statements of some of the witnesses examined by the Complainant. Mere disclosing the names of the appellants cannot be said to be strong and cogent evidence to make them to stand trial for the offence under Section 319 of the Code, especially when the Complainant is a husband and has initiated criminal proceedings against family of his in-laws and when their names or other identity were not disclosed at the first opportunity.

•

***168. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 319**

(i) Summoning of additional accused – A person can be added as accused invoking Section 319 of the Code not only for the same offence for which accused is tried but for any offence – Any such offence shall be such that in respect of which all accused could be tried together.

(ii) Summoning a person as accused – To summon an accused u/S 319 of the Code, there has to be *prima facie* evidence against such accused – Complaint or testimony of the witnesses must indicate the role played by proposed accused in commission of an offence. (*Hardeep Singh v. State of Punjab and other, (2014) 3*

SCC 92 **and** *Sarabjit Singh and another v. State of Punjab and another, AIR 2009 SC 2792,* **relied on)**

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319

(i) अतिरिक्त अभियुक्त को समन किया जाना - संहिता की धारा 319 का अवलंब लेते हुये किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में न केवल उस अपराध के लिये जोड़ा जा सकता है जिसके लिये अभियुक्त विचारित किया जा रहा है बल्कि किसी भी अपराध के लिये जोड़ा जा सकता है - कोई भी अन्य अपराध ऐसा अपराध होना चाहिए जिसके लिये सभी अभियुक्तगण विचारित किये जा सकते थे।

(ii) किसी व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में समन करना - संहिता की धारा 319 के अंतर्गत किसी अभियुक्त को समन करने के लिए, ऐसे अभियुक्त के विरूद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य होनी चाहिए - परिवाद अथवा साक्षियों की परिसाक्ष्य से प्रस्तावित अभियुक्त द्वारा अपराध कारित करने में अदा की गई भूमिका इंगित होनी चाहिए। (***हरदीप सिंह विरूद्ध पंजाब राज्य तथा अन्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92*** तथा ***सरबजीत सिंह तथा अन्य विरूद्ध पंजाब राज्य तथा अन्य, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 2792,*** अवलंबित)

Sunil Kumar Gupta and others v. State of Uttar Pradesh and others
Judgment dated 27.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 395 of 2019, reported in AIR 2019 SC 1174

•

***169. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 357A**

Additional compensation to acid victim; grant of – Victim aged 19 years suffered 16% burn injuries caused due to acid attack – Held, each accused person is liable to pay additional compensation of` 1,50,000/- each and State shall also pay compensation as admissible under Scheme as in vogue to acid attack victim. (*Laxmi v. Union of India and other, (2014) 4 SCC 427* **and** *State of M.P. v. Mehtaab, 2015 (5) SCC 197,* **relied on)**

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 357क

अम्ल पीड़िता को अतिरिक्त प्रतिकर प्रदान किया जाना - अम्ल हमले के कारण 19 वर्षीय पीड़िता को 16% जलने से उपहतियां कारित हुईं - अभिनिर्धारित, प्रत्येक अभियुक्त अतिरिक्त प्रतिकर के रूप में रूपये 1,50,000/- अदा करने हेतु दायी है तथा राज्य भी अम्ल हमलों के पीड़ितों के लिये प्रचलित योजना के अनुसार स्वीकार्य प्रतिकर प्रदान करेगा। (***लक्ष्मी विरूद्ध भारत संघ एवं अन्य, (2014) 4 एससीसी 427 एवं म.प्र. राज्य वि. मेहताब, (2015) 5 एस.सी.सी. 197,*** अवलंबित)

State of Himachal Pradesh and another v. Vijay Kumar alias Pappu and another

Judgment dated 15.03.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 753 of 2010, reported in AIR 2019 SC 1543

•

170. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 389

DRUGS AND COSMETICS ACT, 1940 – Section 27

NARCOTIC DRUGS AND PSYCHOTROPIC SUBSTANCES ACT, 1985 – Sections 8, 22 and 80

Suspension of sentence; sustainability of – Accused persons found in possession of "manufactured drugs" without any authorization – It cannot be said that they have committed an offence only under the Drugs and Cosmetics Act, 1940 – Section 80 of NDPS Act mandates that provisions of the Act are in addition to provisions of the 1940 Act – Statute further clarifies that provision of NDPS Act are not in derogation of the 1940 Act – Order, that accused persons be tried under the 1940 Act instead of NDPS Act as they are found in possession of manufactured drugs, is improper.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 389

औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 - धारा 27

स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धाराएं 8, 22 एवं 80

दण्डादेश के निलम्बन का कायम रखा जाना - अभियुक्तगण के आधिपत्य में बिना किसी प्राधिकार के 'विनिर्मित औषधि' पाई गई - यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने अपराध केवल औषधि एवं प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 के अधीन कारित किया है - एनडीपीएस अधिनियम की धारा 80 यह प्रावधानित करती है कि अधिनियम केप्रावधान 1940 के अधिनियम के प्रावधानों के अतिरिक्त होंगे - अधिनियम आगे यह भी स्पष्ट करता है कि एन.डी.पी.एस. अधिनियम के प्रावधान, 1940 के अधिनियम के अल्पीकरण में नहीं है - आदेश, कि चूंकि अभियुक्तगण के कब्जे में विनिर्मित औषधि पाई गई थी इसलिए उनका विचारण एनडीपीएस अधिनियम के बजाय 1940 अधिनियम के अंतर्गत किया जावे, अनुचित है।

State of Punjab v. Rakesh Kumar

Judgment dated 03.12.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1512 of 2018, reported in 2019 CrLJ 982 (3 Judge Bench)

Relevant extracts from the judgment:

In the present case, the accused-respondents were found in bulk possession of manufactured drugs without any valid authorization. The counsel on behalf of

the appellant-State has extensively stressed that the actions of the accused-respondents amounts to clear violation of Section 8 of the N.D.P.S Act as it clearly prohibits possession of narcotic substances except for medicinal or scientific purposes. In furtherance of the same, the counsel on behalf of the appellant-State has put emphasis on the judgment rendered by this Court in the case of ***Union of India v. Sanjeev V. Deshpande, AIR 2014 SC 3625,*** wherein it was held that:

> "25. In other words, DEALING IN narcotic drugs and psychotropic substances is permissible only when such DEALING is for medical purposes or scientific purposes. Further, the mere fact that the DEALING IN narcotic drugs and psychotropic substances is for a medical or scientific purpose does not by itself lift the embargo created under Section 8(c). Such a dealing must be in the manner and extent provided by the provisions of the Act, Rules or Orders made thereunder. Sections 9 and 10 enable the Central and the State Governments respectively to make rules permitting and regulating various aspects contemplated under Section 8(c), of DEALING IN narcotic drugs and psychotropic substances.
>
> 26. The Act does not contemplate framing of rules for prohibiting the various activities of DEALING IN narcotic drugs and psychotropic substances. Such prohibition is already contained in Section 8(c). It only contemplates of the framing of Rules for permitting and regulating any activity of DEALING IN narcotic drugs or psychotropic substances..."

x x x

However, we are unable to agree on the conclusion reached by the High Court for reasons stated further. First, we note that Section 80 of the NDPS Act, clearly lays down that application of the Drugs and Cosmetics Act is not barred and provisions of NDPS Act can be applicable in addition to that of the provisions of the Drugs and Cosmetics Act. The statute further clarifies that the provisions of the NDPS Act are not in derogation of the Drugs and Cosmetics Act, 1940. This Court, in the case of ***Union of India v. Sanjeev V. Deshpande*** (supra), has held that,

> "35. ...essentially the Drugs and Cosmetics Act, 1940 deals with various operations of manufacture, sale, purchase etc. of drugs generally whereas Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985 deals with a more specific class of drugs and, therefore, a special law on the subject. Further the provisions of the Act operate in addition to the provisions of 1940 Act."

The aforesaid decision further clarifies that, the NDPS Act, should not be read in exclusion to Drugs and Cosmetics Act, 1940. Additionally, it is the prerogative of the State to prosecute the offender in accordance with law. In the present case, since the action of the accused-Respondents amounted to a *prima facie* violation of Section 8 of the NDPS Act, they were charged under Section 22 of the NDPS Act.

In light of above observations, we find that the decision rendered by the High Court holding that the accused-respondents must be tried under the Drugs and Cosmetics Act, 1940 instead of the NDPS Act, as they were found in possession of the "manufactured drugs", does not hold good in law. Further, in the present case, the accused-respondents had approached the High Court seeking suspension of sentence. However, in granting the aforesaid relief, the High Court erroneously made observations on the merits of the case while the appeals were still pending before it.

Considering the facts and circumstances of the present case and the gravity of offence alleged against the accused-respondents, the order of the High Court directing suspension of sentence and grant of bail is clearly unsustainable in law and the same is liable to be set aside.

•

171. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 427

NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Section 138

CRIMINAL PRACTICE:

Sentence of imprisonment – Consecutive or concurrent – Whether different sentences of imprisonment passed against accused in different cases registered under Section 138 Negotiable Instruments Act may be directed to run concurrently? Held, where there are different transactions, different criminal cases registered and cases decided by different judgments, the sentences of imprisonment cannot be directed to run concurrently under Section 427 of CrPC – However, when the cheques dishonoured arise out of the same loan transaction, it may justify the direction of concurrent running of sentences.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 427

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1882 - धारा 138

आपराधिक प्रथाः

कारावास का दण्डादेश - अनुगामी अथवा समवर्ती - क्या अभियुक्त के विरूद्ध धारा 138 परक्राम्य लिखत अधिनियम के तहत पंजीबद्ध विभिन्न मामलों में पारित विभिन्न कारावास के दण्डादेशों को समवर्ती चलाने के निर्देश दिए जा सकते हैं?अभिनिर्धारित, जहां लेनदेन पृथक-पृथक हैं, पृथक-पृथक आपराधिक मामले पंजीबद्ध

किए गए हैं और पृथक-पृथक निर्णयों द्वारा मामले निराकृत किए गए हैं, वहां कारावास के दण्डादेशों को दंप्रसं की धारा 427 के अनुसार समवर्ती चलाने के निर्देश नहीं दिए जा सकते हैं - हालांकि, जब अनादरित चेक एक ही ऋण संव्यवहार से उत्पन्न हुए हों, यह दण्डादेशों के समवर्ती चलने के आदेश को सही ठहरा सकता है।

Prabhu Dayal Rajput v. State of M.P.

Judgment dated 24.04.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in M.Cr.C. No. 4248 of 2016, reported in 2019 (1) ANJ (MP) 140

Relevant extracts from the judgment:

The general rule is that a sentence commences to run from the time of its being passed but Section 427 of the Cr.P.C. creates an exception in the case of persons already undergoing imprisonment and postpones the operation of the subsequent sentence until after expiry of the previous sentence.

When the two offences are akin or intimately connected, that factor could be a special reason for ordering the two sentences to run concurrently. Where in prosecution for offences punishable under Section 138 of the Negotiable Instruments Act, in different trials for dishonour of different cheques, different sentences were awarded, refusal to issue direction that sentences awarded shall run concurrently is just and proper.

In the present case, there are seventeen different cheques issued to different complainants and have been dishonoured known to the Court and the petitioner has been sentenced. There are different transactions and different criminal cases were registered against him which have been decided by different judgments, the sentences cannot be directed to run concurrently under Section 427 of the Cr.P.C. In this regard, reference can be made to the decision of the Apex Court in the case of ***Mohd. Akhtar Hussain v. Assistant Collector of Customs, AIR 1988 SC 2143***.

x x x

In the case of ***V.K. Bansal v. The State of Haryana and another, (2013) 7 SCC 211,*** it has been held by Hon'ble the Supreme Court that where different cheques were issued by a borrower company through appellant-accused, which subsequently stood dishonoured on presentation and consequently appellant-accused was sentenced for offence under Section 138 of NI Act, it can be regarded as arising out of same loan transaction, justifying direction of concurrent running of sentences. But where another borrower company also issued such cheques through the same appellant accused, it would constitute a separate and independent transaction and sentence awarded to the appellant accused under Section 138 of the Negotiable Instruments Act cannot be directed to run concurrently with sentence awarded in the first case.

•

172. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 439

Bail – Financial fraud of huge money was involved in the case – Conditions for bail should be proportionate to the nature and gravity of the offence – Some more stringent conditions should be imposed in addition to general conditions – Respondent ordered to be released on bail on furnishing security to the satisfaction of the trial Court for further amount of Rs. 75 Lakhs in addition to Rs. 50 Lakh deposit as directed by the High Court.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439

जमानत - मामले में अत्यधिक धन का आर्थिक कपट अंतर्वलित था - जमानत की शर्तें अपराध की गंभीरता और प्रकृति के अनुपात में होना चाहिए - सामान्य शर्तों के अतिरिक्त कुछ अधिक कठोर शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिए - उत्तरार्थी को उच्च न्यायालय द्वारा आदेशित 50 लाख रूपए जमा करने के निर्देश के अतिरिक्त विचारण न्यायालय की संतुष्टि योग्य 75 लाख रूपए की अतिरिक्त धनराशि की प्रतिभूति निष्पादित करने पर छोड़े जाने का आदेश किया गया।

Bharat Stars Services Pvt Ltd. v. Harsh Dev Thakur

Judgment dated 28.08.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1089 of 2018, reported in AIR 2019 SC 718

Relevant extracts from the judgment:

We are of the view that the condition imposed by the High Court, as per the impugned order, will not be sufficient in the peculiar facts and circumstances of the case. The High Court has directed deposit of Rs. 50 Lakhs on the premise that the financial fraud involved in the case is around Rs. 50 Lakhs. Now that it has come out that the fraud is more than Rs. 2.75 Crores, we are of the view that some more stringent conditions should be imposed on the first respondent.

Accordingly, this appeal is disposed of with the following directions :-

(a) The first respondent shall be released on bail on furnishing security to the satisfaction of the trial Court for a further amount of Rs.75 Lakhs, in addition to Rs. 50 Lakhs deposit, as directed by the High Court.

(b) He shall deposit his passport with the trial Court forthwith.

(c) He shall also present himself at the jurisdictional police station once every week.

It is made clear that the above conditions are in addition to the other conditions imposed by the High Court.

•

***173. CRIMINAL TRIAL:**

APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Eye witness – Credibility – Whether subsequent conviction andsentence of an eye witness in another case affects his credibility in present case? – Held, no.

(ii) Non-recovery of weapon; effect of – Held, in light of evidence of eye witnesses and other material adduced by prosecution, non-recovery or non-production of weapon need not materially affect the case of prosecution.

आपराधिक विचारणः

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) चक्षुदर्शी साक्षी - विश्वसनीयता - क्या किसी अन्य मामले में एक चक्षुदर्शी साक्षी की पश्चातवर्ती दोषसिद्धि एवं दण्डादेश वर्तमान मामले में उसकी विश्वसनीयता को प्रभावित करती है? - अभिनिर्धारित, नहीं।

(ii) हथियार की जप्ती न होने का प्रभाव - अभिनिर्धारित, चक्षुदर्शी साक्षियों की साक्ष्य एवं अभियोजन द्वारा प्रस्तुत अन्य सामग्री के प्रकाश में, हथियार की जप्ती या प्रस्तुति न होना, अभियोजन मामले को तात्विक रूप से प्रभावित नहीं करती।

Kalua @ Koshal Kishore v. State of Rajasthan

Judgment dated 31.01.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 139 of 2010, reported in 2019 (2) Crimes 52 (SC)

•

***174.CRIMINAL TRIAL:**

APPRECIATION OF EVIDENCE:

Circumstantial evidence – Establishing chain of circumstances – Accused and deceased living in same building – Access was highly probable – Presence of accused at the scene of the offence (house of deceased) proved by cogent evidence – Accused and his father were missing since the time of offence – Injuries on body of deceased indicate signs of struggle – Accused was unable to explain injuries on his face – Post-mortem report suggested that death was not suicidal, but deceased was hanged after she lost consciousness – Absence of enmity between accused and witnesses negate chance of false implication – Voluntary extra-judicial confession was also proved – Held, the chain of circumstances are sufficient to connect the accused with the death of the deceased.

आपराधिक विचारणः

साक्ष्य का मूल्यांकनः

परिस्थितिजन्य साक्ष्य - परिस्थितियों की श्रृंखला की स्थापना - अभियुक्त और मृतक एक ही इमारत में रहते थे - पहुँच अत्यधिक संभावित थी - घटनास्थल (मृतक का घर) पर अभियुक्त की उपस्थिति ठोस साक्ष्य से साबित हुई - अभियुक्त और उसके पिता अपराध के समय से गायब थे - मृतक के शरीर पर लगी चोटें संघर्ष के संकेत देती हैं - अभियुक्त अपने चेहरे पर आई चोटों को स्पष्ट करने में असमर्थ था - पोस्टमार्टम रिपोर्ट से प्रकट हुआ कि मृत्यु आत्महत्या नहीं थी, अपितु मृतका को अचेत होने के बाद फांसी पर चढ़ाया गया था - अभियुक्त और साक्षियों के मध्य वैमनस्यता का अभाव, मिथ्या संलिप्तिकरण की संभावना को नकारता है - स्वैच्छिक गैर-न्यायिक संस्वीकृति भी साबित हुई - अभिनिर्धारित, परिस्थितियों की श्रृंखला अभियुक्त को मृतक की मृत्यु से संयोजित करने के लिए पर्याप्त है।

Manoj Kumar v. State of Uttarakhand

Judgment dated 05.04.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 2122 of 2010, reported in 2019 (2) Crimes 102 (SC)

•

***175. EVIDENCE ACT, 1872 – Section 3**

APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Appreciation of evidence of injured witnesses – Witnesses without any ambiguity implicated accused persons for causing injuries to them and injuries to deceased resulting into death – Inconsistencies and contradictions do not affect the core of testimonies of injuredwitnesses.

(ii) Appreciation of evidence of defence witnesses – Merely because defence witnesses have not been contradicted by reference to their previous statements following Section 145 of Evidence Act, would not permit the Court to accept versions of defence witnesses.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) आहत साक्षियों की साक्ष्य का मूल्यांकन - साक्षियों ने बिना किसी संदिग्धता के अभियुक्तगण द्वारा उसे तथा मृतक को उसकी मृत्यु में परिणत होने वाली उपहतियां कारित करने हेतु आलिप्त किया - विसंगतियां और विरोधाभास आहत साक्षियों की साक्ष्य के मूल को प्रभावित नहीं करतीं।

(ii) बचाव साक्षियों के साक्ष्य का मूल्यांकन - मात्र इसलिये कि बचाव साक्षियों का साक्ष्य अधिनियम की धारा 145 का पालन करते हुए उनके पूर्वतन कथन से खण्डन नहीं किया गया है, न्यायालय को बचाव साक्षियों के कथनों को स्वीकार करने हेतु अनुमत नहीं करेगा।

Balakrishnan and others v. State of Tamil Nadu

Judgment dated 18.01.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 809 of 2010, reported in 2019 CrLJ 930

•

***176. EVIDENCE ACT, 1872 – Section 3**

APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Testimony of eye witnesses; appreciation of – Minor contradictions without affecting the substance of their statements cannot be made basis to reject entire testimony of witnesses.

(ii) When delay in lodging FIR is fatal? Deceased died after few hours of incident and by that time it was dark night – It is not possible for the complainant to go and lodge report in the police station which is 25 kms away – In such circumstances, delay in lodging FIR is not fatal to prosecution.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) चक्षुदर्शी साक्षियों की साक्ष्य का मूल्यांकन - मामूली विरोधाभास, जो साक्षी की साक्ष्य के सार को प्रभावित नहीं करते, संपूर्ण परिसाक्ष्य को नामंजूर करने का आधार नहीं बनाये जा सकते।

(ii) प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब, कब घातक है - मृतक की घटना के कुछ घण्टों बाद मृत्यु हो गई और उस समय अंधेरी रात थी - परिवादी के लिये यह संभव नहीं है कि वह 25 कि.मी. दूर पुलिस थाने जाकर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करा सके - ऐसी परिस्थितियों में, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने में हुआ विलंब अभियोजन के लिये घातक नहीं है।

Satya Raj Singh v. State of Madhya Pradesh

Judgment dated 28.01.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1314 of 2013 reported in (2019) 3 SCC 615

•

***177. EVIDENCE ACT, 1872 – Section 11**

Plea of alibi – Deceased died due to sustaining 100% burn injuries at her matrimonial home – Deceased implicated name of accused in her dying declaration – Accused not residing with deceased in matrimonial home – Medical certificate issued by Medical Superintendent which shows that the accused was admitted in hospital and underwent surgery few days before incident and unable to move out of house, is sufficient to accept the plea of alibi of the accused.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 11

अन्यत्र उपस्थिति का अभिवाक् - मृतक की मृत्यु उसके ससुराल में 100% जलने की चोटों के कारण हुई - मृतक ने उसके मृत्युकालिक कथनों में अभियुक्त का नाम आलिप्त किया - अभियुक्त मृतक के साथ ससुराल में नहीं रह रहा था - चिकित्सा अधीक्षक द्वारा जारी चिकित्सीय प्रमाण पत्र जो यह दर्शित करता है कि अभियुक्त अस्पताल में भर्ती था और घटना के कुछ दिन पूर्व उसका आॅपरेशन हुआ था तथा वह घर से बाहर निकलने में असमर्थ था, अभियुक्त की अन्यत्र उपस्थिति के अभिवाक् को स्वीकार करने के लिये पर्याप्त है।

Sow. Chhaya v. State of Maharashtra
Judgment dated 03.08.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 963 of 2018, reported in 2019 CrLJ 927

•

178. EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 68, 69 and 90
TRANSFER OF PROPERTY ACT, 1882 – Section 54

(i) Presumption – 30 years old document – Conditions for raising presumption under Section 90 explained – Held, to attract the presumption under Section 90 of Evidence Act it should be proved that –
(a) the document is more than 30 years old;
(b) it is produced from proper custody;
(c) it is on its face free from suspicion.

(ii) When proof of attestation of document is necessary? Held, proof of attestation of a document as per Section 68 of the Evidence Act is required only when the disputed document is required by law to be attested – Sale deed is not required by law to be attested – Hence, proof of attestation as per Section 68 and 69 is not mandatory.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएं 68, 69 एवं 90

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 - धारा 54

(i) उपधारणा - 30 वर्ष पुराना दस्तावेज - धारा 90 के अधीन उपधारणा करने के लिए शर्तें स्पष्ट की गईं-अभिनिर्धारित, साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 के अधीन उपधारणा को आकर्षित करने के लिए यह प्रमाणित किया जाना चाहिए कि -
(ए) दस्तावेज 30 वर्ष से अधिक पुराना है;
(बी) वह उचित अभिरक्षा से प्रस्तुत हुआ है;
(सी) वह प्रथम दृष्टि में संदेह से मुक्त है।

(ii) दस्तावेज के अनुप्रमाणन का प्रमाण कब आवश्यक है? अभिनिर्धारित, साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार दस्तावेज के अनुप्रमाणन का प्रमाण तब आवश्यक है, जब विवादित दस्तावेज विधि द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित

हो - विक्रय विलेख के विधि द्वारा अनुप्रमाणित होने की आवश्यकता नहीं है - अतः, धारा 68 और 69 के अनुसार अनुप्रमाणन का प्रमाण अनिवार्य नहीं है।

Ramcharan v. Damodar and others

Judgment dated 21.04.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Second Appeal No. 566 of 2016, reported in ILR 2017MP 1882

Relevant extracts from the judgment:

The principle underlining Section 90 is that if a document, thirty-years old or more, is produced from proper custody and is on its face free from suspicion, the Court may presume that it has been duly executed and attested. The Section empowers that Court to presume the signature and every other part of a document thirty-years old, which purports to be in handwriting of any particular person as in that person's handwriting, and in the case of a document executed or attested that it was duly executed and attested by the persons by whom it purports to be executed and attested. To attract the presumption under Section 90 of Evidence Act it should be proved that (a) the document is more than thirty years old (b) it is produced from proper custody and (c) on its face free from suspicion. To draw the presumption is not mandatory and it is left with discretion of the Court to raise presumption.

In the present case, it is not disputed that Sahdev was the owner of the disputed property. It is claimed by defendant that Sahdev had sold the disputed property to Purushottam by executing registered sale deed dated 05.04.1962. Defendant No.1 Damodar is son of Purushottam. Damodar (DW-3) in his evidence produced the sale deed dated 05.04.1962 Ex.D-7. This is a registered sale deed which shows that the disputed property was sold by Sahdev to Purushottam for consideration of Rs.100/-. The sale deed was attested by Lal Mohammad and Jwala Prasad and there was thumb impression of Sahdev affixed on it. This document is undisputedly more than thirty-years old.

x x x

Damodar (DW-3) in his statement deposed that Sahdev had executed the sale deed Ex.D-7 and sold disputed property to his father Purushottam. There is signature of Purushottam at place A to A on sale deed, the attesting witnesses Lal Mohammad and Jwala Prasad have expired some 14-15 years back. It is also not disputed that Sahdev and Purushottam are also no more. Defendant Rambai (DW-1) and witness Rammitra (DW-2) have also deposed in the same way and stated that both the parties and attesting witnesses to sale have expired now. In rebuttal the plaintiff's witnesses do not say that anyone of the attesting witnesses are still alive. Therefore, from aforesaid evidence, the findings of Courts below are correct that executants of the disputed sale deed and its attesting witnesses are not alive. Therefore no adverse inference can be drawn against defendant for not examining attesting witnesses.

•

179. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 34, 149 and 302

(i) Common intention and common object – Non-applicability of Section 149 is no bar in convicting the accused persons with the aid of Section 34.

(ii) Common intention – May be developed at the spur of moment on the spot – Accused persons were armed with sharp edged weapons – There was dispute on removal of *Katheeb* between accused party and deceased party – When both the deceased were about to leave the mosque, accused no. 2 called out and stated, "there they go! Whysimply watch? Go and stab" – On hearing this, accused no. 1 and 3 stabbed both the deceased – Held, common intention was developed between all the three accused persons on exhortation of accused no. 2.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 34, 149 एवं 302

(i) सामान्य आशय और सामान्य उद्देश्य - धारा 149 की गैर-प्रयोज्यता धारा 34 की सहायता से अभियुक्त व्यक्तियों को दोषी ठहराने में कोई रोक नहीं लगाती है।

(ii) सामान्य आशय - मौके पर क्षणिक उकसावे पर विकसित हो सकता है - अभियुक्तगण धारदार हथियारों से सुसज्जित थे - अभियुक्त पक्ष और मृतक पक्ष के मध्य कथीब को हटाने पर विवाद था - जब दोनों मृतक मस्जिद से निकलने वाले थे, तभी अभियुक्त क्रमांक 2 ने पुकार लगाई और कहा, "वे जा रहे हैं! बस देखते क्यों हो? जाओ, घोप दो" - यह सुनकर अभियुक्त क्रमांक 1 व 3 ने दोनों मृतकों पर आघात किया - अभिनिर्धारित, अभियुक्त क्रमांक 2 के उकसावे पर सभी तीनों अभियुक्तगण के मध्य सामान्य आशय विकसित हुआ था।

Palakom Abdul Rahiman v. Station House Officer, Badiadka Police Station, Kerala and another

Judgment dated 09.04.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 725 of 2012, reported in 2019 (2) Crimes 132 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

From the evidence of the prosecution, it can easily be discerned that the accused persons including accused nos. 1 and 3 and the complainant party including deceased persons and PW-2 and PW-4 alongwith others came to the mosque and after the prayer was over, a clash occurred regarding the dispute of removal of Katheeb. All the persons including accused nos. 1 and 3 who were standing in the mosque, after the prayer was over, started questioning PW-1 regarding the removal of earlier Katheeb. Both the deceased, Assainar and Abdul Rahiman, were supporting the action in removing the earlier Katheeb and when they were about to leave the mosque, accused no. 2 exhorted to stab which was heard by PW-2 and PW-4. According to PW-2, accused no. 2 called out and stated, "there they go! Why simply watch? Go and stab" and at this spur of moment, common intention was developed and accused no. 1 and accused no. 3 who were having daggers with them, stabbed deceased Assainar and Abdul Rahiman.

A careful analysis and appraisal of the evidence on record establish the presence of accused no. 1 and accused no. 3 at the time of occurrence with sharp edged weapon (dagger) with accused no. 2 who was also armed with sharp edged weapon, and had shared common intention with accused no. 2 of causing bodily injuries to the deceased Assainar and Abdul Rahiman which were sufficient in the ordinary course of nature to cause death of the deceased.

It goes without saying that it would depend on facts of each case as to whether Section 34 or Section 149 or both the provisions are attracted. The non-applicability of Section 149 IPC is no bar in convicting the accused persons under Section 302 IPC read with Section 34 IPC provided there is evidence which discloses commission of offence in furtherance of common intention.

•

***180. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 53 and 302**

SENTENCING:

Death sentence; factors to be considered for – Socio-economic factors particularly ground realities relating to access to justice and remedies to justice which are not easily available to poor and probability of reform or rehabilitation and social reintegration of accused into society must be considered.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 53 एवं 302

दण्डादेशः

मृत्यु दण्डादेश हेतु विचार योग्य कारक - सामाजिक-आर्थिक कारक विशिष्टतः न्याय तक पहुँच से संबंधित वास्तविक आधार व न्यायिक उपचार, जो कि गरीबों को सहज उपलब्ध नहीं हैं एवं अभियुक्त के सुधार या पुनर्वास व समाज से पुनः जुड़ने की संभावना को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

M. A. Antony alias Antappan v. State of Kerala

Order dated 12.12.2018 passed by the Supreme Court in Review Petition No. 245 of 2010, reported in 2019 CriLJ 1532 (3 Judge Bench)

•

***181. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 84**

SENTENCING:

Sentencing – Death sentence awarded to driver of State Transport for causing death of nine people due to denial of permission to change his duty – Plea of insanity not established by accused – Held, accused was under mental strain and stress which resulted into the incident – No criminal antecedents of accused – Accused not menace and threat to harmonious and peaceful co-existence of society – Conduct of accused satisfactory in jail – Possibility of reform cannot be denied – Death sentence modified to life imprisonment.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 84

दण्डादेशः

दण्डादेश - राज्य परिवहन के चालक को उसके कर्तव्य को परिवर्तित करने से इंकार करने के कारण नौ लोगों की मृत्यु कारित करने के लिये मृत्यु दण्ड दिया गया - अभियुक्त द्वारा पागलपन के बचाव को स्थापित नहीं किया गया - अभिनिर्धारित, अभियुक्त मानसिक तनाव और अवसाद में था जिसके कारण घटना घटी - अभियुक्त का कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है - अभियुक्त समाज के सामंजस्यपूर्ण तथा शांतिमय सह-अस्तित्व के लिये खतरा या धमकी नहीं है - जेल में अभियुक्त का आचरण संतोषजनक रहा - सुधार की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता - मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया गया।

Santosh Maruti Mane v. State of Maharashtra

Order dated 09.01.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 45 of 2019, reported in 2019 CriLJ 1331 (3 Judge Bench)

•

***182. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 279 and 304A**

EVIDENCE ACT, 1872 – Section 3

APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Rash and negligent driving – Identity of accused as driver; proof of – Defence of accused that identity of accused as driver not established, as driver of the vehicle fled from scene with his vehicle – Circumstance that accused was surrendered by his commandant is sufficient to prove the identity of accused as driver.

(ii) Rash and negligent driving – Appreciation of evidence – In post-mortem, a doctor found multiple lacerated wound on head of deceased, multiple fracture in skull and nasal bone – Observation in inquest report regarding natural death of deceased or discrepancy regarding time of reaching hospital, want of photographs or want of dent on vehicle do not create any uncertainty upon prosecution case.

(iii) Whether benefit of probation can be granted to the accused, where death is caused due to rash and negligent driving? Held, No.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 279 एवं 304क

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) उतावलेपन एवं उपेक्षापूर्ण तरीके से वाहन चलाना - चालक के रूप में अभियुक्त की पहचान का प्रमाण - अभियुक्त का बचाव कि चालक के रूप में अभियुक्त की पहचान स्थापित नहीं हुई क्योंकि वाहन का चालक अपने वाहन के साथ घटना

स्थल से भाग गया था - परिस्थिति कि अभियुक्त को उसके कमांडेंट द्वारा अभ्यर्पण करा दिया गया, चालक के रूप में अभियुक्त की पहचान साबित करने के लिये पर्याप्त है।

(ii) उतावलेपन एवं उपेक्षापूर्ण तरीके से वाहन चलाना - साक्ष्य का मूल्यांकन - शव परीक्षण में डॉक्टर ने मृतक के सिर में कई कटे-फटे घाव, कपाल और नाक की अस्थि में कई भंग पाये - मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट में मृतक की स्वभाविक मृत्यु का उल्लेख होना, या चिकित्सालय पहुंचने के समय में विसंगति, छायाचित्रों का अभाव या वाहन पर खरोंच के निशान का अभाव अभियोजन मामले में किसी प्रकार की अनिश्चितता उत्पन्न नहीं करते।

(iii) क्या अभियुक्त को परीवीक्षा का लाभ प्रदान किया जाना चाहिए जहां कि मृत्यु उतावलेपन एवं उपेक्षापूर्ण तरीके से वाहन चलाने के कारण हुई हो?अभिनिर्धारित, नहीं।

Subhash Chand v. State of Punjab

Judgment dated 25.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1827 of 2009, reported in AIR 2019 SC 1133

•

***183. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 295-A**

Whether picturization of folk song through winking amounts to insult or attempt to insult religion or religious beliefs of class of citizens? Held, No.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 295-क

क्या आँखों के इशारों के जरिये लोकगीत का चित्रण करना नागरिकों के वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान या अपमान करने के प्रयत्न की श्रेणी में आता है?अभिनिर्धारित, नहीं।

Priya Prakash Varrier v. The State of Telangana

Order dated 31.08.2018 passed by the Supreme Court in Writ Petition (Cri.) No. 44 of 2018, reported in 2019 (1) ANJ (SC) 195 (3 Judge Bench)

•

184. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 235 (2) and 354

(i) Death sentence; imposition of – Assessment of aggravating and mitigating circumstances – Law summed up – Held, three tests are required to be applied while awarding death sentence – "Crime Test", "Criminal Test" and "R-R Test" – Crime test has to be 100% and criminal test 0% – If there is any circumstance favouring the accused, like lack of intention, possibility of reformation, young age, no previous track record etc., the "Criminal Test" may favour the accused to avoid capital punishment – After both the tests are fully satisfied, then Court should apply rarest of rare (R-R) test.

(ii) Death sentence – Mitigating circumstances – Possibility of reformation is a guiding factor for assessing mitigating circumstances – Convict displaying good behaviour in prison certainly goes on to show that he is not beyond reform – Burden is on State to prove that there is no probability that accused can be reformed – Courts should insist for proper psychological/psychiatric evaluation to determine possibility of reformation.

(iii) Death sentence – Necessity of procedure for separate hearing – Held, a bifurcated hearing for conviction and sentence is necessary – Convict should be provided necessary time to furnish evidence relevant to sentencing and mitigation.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 302

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 235 (2) एवं 354

(i) मृत्यु दण्ड अधिरोपित किया जाना - गंभीरता बढ़ाने वाली एवं कम करने वाली परिस्थितियों का आंकलन - विधि समेकित की गई - अभिनिर्धारित, मृत्यु दण्ड देते समय तीन परीक्षणों को लागू करने की आवश्यकता होती है - ''अपराध परीक्षण'', ''अपराधी परीक्षण'' और ''आर-आर परीक्षण'' - अपराध परीक्षण 100% और अपराधी परीक्षण 0% होना चाहिए - यदि अभियुक्त के पक्ष में कोई भी परिस्थिति हो, जैसे आशय का अभाव, सुधार की संभावना, कम आयु, पूर्व आपराधिक इतिहास का अभाव आदि, तो ''अपराधी परीक्षण'' अभियुक्त को मृत्यु दण्ड से बचा सकता है - दोनों परीक्षणों के पूरी तरह से संतुष्ट होने के बाद ही न्यायालय को विरलतम से विरल (आर-आर) परीक्षण लागू करना चाहिए।

(ii) मृत्यु दण्ड - गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियां - गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियों का आंकलन करने में 'सुधार की संभावना' एक मार्गदर्शक कारक है - अभियुक्त द्वारा कारागार में अच्छा व्यवहार प्रदर्शित करना निश्चित रूप से यह दर्शाता है कि वह सुधार से परे नहीं है - यह साबित करने का भार राज्य पर है कि अभियुक्त के सुधार की कोई संभावना नहीं है - सुधार की संभावना निर्धारित करने के लिए न्यायालयों को उचित मनोवैज्ञानिक/मानसिक मूल्यांकन के लिए जोर देना चाहिए।

(iii) मृत्यु दण्ड - पृथक सुनवाई की प्रक्रिया की आवश्यकता - अभिनिर्धारित, दोषसिद्धि एवं दण्डादेश के लिए एक द्विभाजित सुनवाई आवश्यक है - दोषी को दण्डादेश एवं गंभीरता कम करने वाली प्रासंगिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक समय प्रदान किया जाना चाहिए।

Chhannu Lal Verma v. State of Chhastisgarh

Judgment dated 28.11.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1482 of 2018, reported in 2019 CriLJ 1146 (SC) (3 Judge Bench)

Relevant extracts from the judgment:

In ***Shankar Kisanrao Khade v. State of Maharashtra, (2013) 5 SCC 546,*** this Court looked at the manner in which the aggravating and mitigating circumstances are to be weighed and how the rarest of rare test is to be applied while awarding death sentence and held thus:

> "52. Aggravating circumstances as pointed out above, of course, are not exhaustive so also the mitigating circumstances. In my considered view, the tests that we have to apply, while awarding death sentence are "crime test", "criminal test" and the "R-R test" and not the "balancing test". To award death sentence, the "crime test" has to be fully satisfied, that is, 100% and "criminal test" 0%, that is, no mitigating circumstance favouring the accused. If there is any circumstance favouring the accused, like lack of intention to commit the crime, possibility of reformation, young age of the accused, not a menace to the society, no previous track record, etc. the "criminal test" may favour the accused to avoid the capital punishment. Even if both the tests are satisfied, that is, the aggravating circumstances to the fullest extent and no mitigating circumstances favouring the accused, still we have to apply finally the rarest of the rare case test (R-R test). R-R test depends upon the perception of the society that is "society-centric" and not "Judge-centric", that is, whether the society will approve the awarding of death sentence to certain types of crimes or not. While applying that test, the Court has to look into variety of factors like society's abhorrence, extreme indignation and antipathy to certain types of crimes like sexual assault and murder of intellectually challenged minor girls, suffering from physical disability, old and infirm women with those disabilities, etc. Examples are only illustrative and not exhaustive. The Courts award death sentence since situation demands so, due to constitutional compulsion, reflected by the will of the people and not the will of the Judges."

x x x

The conduct of the convict in prison cannot be lost sight of. The fact that the prisoner has displayed good behaviour in prison certainly goes on to show that he is not beyond reform.

In the matter of probability and possibility of reform of a criminal, we do not find that a proper psychological/psychiatric evaluation is done. Without the assistance of such a psychological/psychiatric assessment and evaluation it would not be proper to hold that there is no possibility or probability of reform. The State has to bear in mind this important aspect while proving by evidence that the convict cannot be reformed or rehabilitated.

x x x

Another aspect that has been overlooked by the High Court is the procedural impropriety of not having a separate hearing for sentencing at the stage of trial. A bifurcated hearing for conviction and sentencing was a necessary condition laid down in ***Santosh Kumar Satishbhushan Bariyar v. State of Maharashtra, 2010 AIR SCW 1130.*** By conducting the hearing for sentencing on the same day, the trial Court has failed to provide necessary time to the appellant to furnish evidence relevant to sentencing and mitigation.

•

185. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 302 and 304 Part II

APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Murder – Third clause of Section 300; explained – This clause deals with objective knowledge – Firstly, it has to be established that an injury is caused – Secondly, it has to be objectively established that injury is sufficient in ordinary course of nature to cause death – Thirdly, it must be proved that there was intention to inflict that very injury and not some other injury. (*Rajwant Singh v. State of Kerala, AIR 1966 SC 1874,* followed.)

(ii) Murder and culpable homicide not amounting to murder; distinction between – Offences of single blow – Absence of previous enmity between deceased and accused, incident happened in the heat of passion and the spur of moment, absence of pre-meditation to cause fatal injury and fire of only one gunshot without any attempt to fire another – Held, under these circumstances, it cannot be conclusively said that there was any *mens rea* on part of the accused to terminate the life of deceased.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 302 एवं 304 भाग दो

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) हत्या - धारा 300 के तृतीय खण्ड की व्याख्या की गई - यह खण्ड वस्तुनिष्ठ ज्ञान से संबंधित है - सर्वप्रथम, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि क्षति कारित हुई है - द्वितीय, यह वस्तुनिष्ठ रूप से स्थापित किया जाना चाहिए कि क्षतिप्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है - तृतीय, यह स्थापित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त का आशय वही क्षति कारित करने का था, और अन्य कोई क्षति नहीं। (***राजवंत सिंह विरूद्ध केरल राज्य, एआईआर 1966 एससी 1874,*** अनुसरित)

(ii) हत्या एवं आपराधिक मानववध जो हत्या नहीं है, में विभेद - एकल प्रहार के मामले - मृतक और अभियुक्त के मध्य पूर्व वैमनस्यता का अभाव, घटना का आवेश के प्रभाव एवं क्षण की गति में घटित हो जाना, प्राणघातक क्षति कारित करने के पूर्व-विचार का अभाव, मात्र एक गोली चलाया जाना और दूसरे का प्रयास भी नहीं करना - अभिनिर्धारित, उक्त परिस्थितियों में, यह निश्चायक रूप

से नहीं कहा जा सकता है कि मृतक के जीवन को समाप्त करने के लिए अभियुक्त का दुराशय था।

Radhakishan v. State of M.P.

Judgment dated 10.11.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Criminal Appeal No. 435 of 2000, reported in 2019 (1) ANJ (MP) 180 (DB)

Relevant extracts from the judgment:

The third clause discards the test of subjective knowledge. It deals with the acts done with the intention of causing bodily injury to a person and the bodily injury intended to be inflicted is sufficient in the ordinary course of nature to cause death. In this clause the result of the intentionally caused injury must be viewed objectively. If the injury that the offender intends causing and does cause is sufficient to cause death in the ordinary way of nature the offence is murder whether the offender intended causing death or not and whether the offender had a subjective knowledge of the consequences or not. As was laid down in ***Virsa Singh v. State of Punjab, AIR 1958 SC 465,*** for the application of this clause it must be first established that an injury is caused, next it must be established objectively what the nature of that injury in the ordinary course of nature is. If the injury is found to be sufficient to cause death, one test is satisfied. Then it must be proved that there was an intention to inflict that very injury and not some other injury and that it was not accidental or unintentional. If this is also held against the offender the offence of murder is established.

x x x

Testing the factual matrix on the anvil of the law laid down by the Apex Court it is seen from the facts and circumstances attending the present case that there was no past enmity between the deceased and the appellant. The incident appears to have taken place in the heat of passion and at the spur of the moment caused by the appellant getting infuriated at the late coming of the deceased to work. More so, there was no premeditation to cause the fatal injury. Importantly, only single gunshot was fired by the appellant without any attempt to fire another shot. Dr. N.S. Chauhan (PW-6) has though opined that the Injury No.3 was sufficient in the ordinary course of nature to cause death but looking to the attending facts and circumstances as enumerated above, it cannot be conclusively said that there was any *mens rea* on the part of the appellant to terminate the life of the deceased. Though, the appellant may be ascribed with the knowledge of inflicting injury which in the ordinary course of nature was found sufficient to cause death but in the absence of any intention in that regard, the act of the appellant cannot fall within the four corners of murder as defined in Section 300 I.P.C., punishable u/S 302 I.P.C. Thus, in the considered opinion of this Court, this is a fit case where the conviction of appellant u/S 302 I.P.C. deserves to be converted into that of Section 304 Part-II I.P.C.

•

186. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 302 and 304 Part II

APPRECIATION OF EVIDENCE:

Murder – Intention to cause death – Cases of single blow – Section 302 IPC is not ruled out because of infliction of single blow – Existence of previous enmity, absence of any exchange of words or provocation on part of deceased, accused arriving at the spot armed with axe, giving blow on vital part of body *i.e* neck, deceased dying instantaneously due to cutting of main blood vessels – These circumstances clearly portray the intention to cause death.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 302 एवं 304 भाग 2

साक्ष्य का मूल्यांकनः

हत्या-मृत्यु कारित करने का आशय-एकल प्रहार के मामले - धारा 302 भा.दं.सं. को एकल प्रहार के आधार पर इंकार नहीं किया जा सकता है - पूर्ववत् वैमनस्य का अस्तित्व, मृतक की ओर से वाद-विवाद एवं प्रकोपन का अभाव, अभियुक्त का कुल्हाड़ी के साथ मौके पर पहुंचना, उसके द्वारा शरीर के महत्वपूर्ण हिस्से यथा गर्दन पर वार किया जाना, मृतक की मृत्यु मुख्य रक्त वाहिकाओं के कटने के कारण तत्काल हो जाना - ये परिस्थितियां स्पष्ट रूप से मृत्यु कारित करने का आशय दर्शाती हैं।

Pooranlal v. State of M.P.

Judgment dated 20.06.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Criminal Appeal No. 1732 of 2005, reported in ILR 2017 MP 1944 (DB)

Relevant extracts from the judgment:

However, in the case of ***Thangaiya v. State of Tamil Nadu, (2005) SCC (Cri) 1284,*** it has been held that there is no fixed rule that whenever a single blow is inflicted, Section 302 of the I.P.C. would not be attracted. Referring to the leading case of ***Virsa Singh v. State of Punjab, AIR 1958 SC 465,*** the Supreme Court held that even if intention of the accused was limited to the infliction of a bodily injury sufficient to cause death in the ordinary course of nature, and did not extend to the intention of causing death, the offence would be murder. Illustration (c) appended to Section 300 clearly brings out this point. In para 22 of the judgment, Supreme Court further observed that:

> "It cannot be said as a rule of universal application that whenever one blow is given, Section 302 of the I.P.C. is ruled out. It would depend upon the facts of each case. The weapon used, size of the weapon, place where the assault took place, background facts leading to the assault, part of the body where the blow was given are some of the factors to be considered."

On the same point the principles laid down by the Supreme Court in the cases of ***Pappu v. State of M.P., (2006) 7 SCC 391*** and ***Dhupa Chamar v. State of Bihar, AIR 2002 SC 2834,*** may also be profitably referred to.

When we examine the facts of the present case in the backdrop of aforesaid legal position, we may note that in the instant case, there was previous enmity between the appellant and the deceased. At the time of the incident, the deceased was sitting quietly on the embankment of his field, grazing his cattle. The appellant suddenly arrived armed with an axe. He inflicted a solitary chopped wound upon the neck of the deceased breaking thyroid cartilage and cutting muscles and main blood vessels. As a result, the deceased died instantaneously. There was no exchange of words before the assault between the appellant on one hand and the deceased on the other. There was no provocation, much less grave and sudden provocation, offered on the spot by the deceased. There was no quarrel or fight. The appellant came determined to kill the deceased and without uttering a word, struck a blow with a dangerous weapon like axe, from the sharp side upon a vital part of the body like neck. The blow was delivered with sufficient force so as to cut the main blood vessels of the neck. Thus, the offence was not committed following a sudden fight or quarrel and in the heat of passion. In these circumstances the appellant cannot be attributed merely with the knowledge that his act may cause death. The circumstances in which the blow was delivered clearly betrayed the intention to cause death on the part of the appellant. It was a cold blooded, premeditated murder. As such, the act of the appellant would not fall under the ambit of Section 304 (Part-II) simply because a solitary blow was delivered.

•

***187. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 306**

Abetment to commit suicide – Abettor must have a positive role in facilitating commission of suicide – There must be proximity between act of abettor and suicide committed by deceased – Mere single incident is not sufficient to hold an abettor responsible for instigating deceased to commit suicide.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 306

आत्महत्या का दुष्प्रेरण - आत्महत्या को सुकर बनाने में दुष्प्रेरक की सकारात्मक भूमिका अवश्य होनी चाहिये - मृतक द्वारा आत्महत्या कारित करने एवं दुष्प्रेरक के कृत्य के मध्य सामीप्य होना चाहिये - एक मात्र घटना दुष्प्रेरक को मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने हेतु दायी ठहराने हेतु पर्याप्त नहीं है।

Rajesh v. State of Haryana

Judgment dated 18.01.2019 passed by the Supreme Court inCriminal Appeal No. 93 of 2019, reported in 2019 (1) ANJ (SC) (Supplementary) 73

•

***188.INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 307**

Framing of charges – Whether causing fracture of nasal bone and injuries upon nose of complainant comes within the purview of intention of accused to cause death u/S 307? Held, No.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 307

आरोप की विरचना - क्या परिवादी की नाक का अस्थि भंग एवं नाक पर चोट कारित करना अभियुक्त द्वारा धारा 307 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत मृत्यु कारित करने के आशय की परिधि में आता है? अभिनिर्धारित, नहीं।

Champa Lal Dhakar v. Naval Singh Rajput and others

Judgment dated 04.01.2019 passed by the Supreme Court inCriminal Appeal No. 1931 of 2009, reported in 2019 (1) ANJ (SC) (Supplementary) 71

•

189. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 364A and 302

EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3 and 65B

APPRECIATION OF EVIDENCE:

ELECTRONIC EVIDENCE:

(i) Related witness; Evidentiary value of – Held, evidence of a related witness cannot be discarded only on the ground that he denied his relationship with victim which is otherwise proved.

(ii) Call detail record (CDR) – Establishment of identity – SIM used to make ransom calls was issued in fictitious name – Handset in which that SIM was used was recovered on the basis of IMEI number from the possession of accused – Use of a SIM issued in name of accused in same handset was also proved by other CDR – Held, identity of accused as person making ransom calls stand proved.

(iii) Delay in FIR; effect of – Where the incident is reported to the police immediately, delay in registering FIR does not affect the credibility thereof – Missing persons report was lodged on 23.11.2005 and FIR was registered during enquiry of missing person after delay of 7 days on 01.12.2005 – Both the information were not against named persons – Held, such FIR cannot be said to be after thought.

(iv) Evidentiary value of electronic records – Held, evidence in form of electronic record would override the oral testimony – Electronic records, if proved genuine, are strong evidence.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 364क एवं 302

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएं 3 एवं 65ख

साक्ष्य का मूल्यांकनः

इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्यः

(i) संबंधी साक्षी की साक्ष्य का मूल्य - अभिनिर्धारित, संबंधी साक्षी की साक्ष्य को मात्र इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि उसने पीड़ित के साथ अपने रिश्ते को अस्वीकार कर दिया था जो अन्यथा साबित हो गया।

(ii) कॉल डिटेल रिकॉर्ड (सीडीआर) - पहचान स्थापित करना - फिरौती की मांग के लिए इस्तेमाल की गई सिम को काल्पनिक नाम से जारी किया गया था - हैंडसेट, जिसमें उक्त सिम का उपयोग किया गया था, आईएमईआई नंबर के आधार पर अभियुक्त के आधिपत्य से जप्त किया गया था - उसी हैंडसेट में अभियुक्त के नाम से जारी सिम के उपयोग को अन्य सीडीआर द्वारा साबित किया गया था - अभिनिर्धारित, फिरौती की मांग करने वाले के रूप में अभियुक्त की पहचान स्थापित होती है।

(iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट में विलंब का प्रभाव - जहां घटना की सूचना तत्काल पुलिस को दी जाती है, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में विलंब से उसकी विश्वसनीयता प्रभावित नहीं होती है - गुमशुदा व्यक्तियों की सूचना 23.11.2005 को दर्ज कराई गई थी और गुमशुदगी की जांच के दौरान प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 7 दिवस के विलंब से दिनांक 01.12.2005 को पंजीबद्ध की गई थी - दोनों जानकारी अज्ञात व्यक्तियों के विरूद्ध थी - अभिनिर्धारित, इस तरह की प्रथम सूचना रिपोर्ट को बाद विचारित नहीं कहा जा सकता है।

(iv) इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड का साक्ष्यिक मूल्य - अभिनिर्धारित, इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के रूप में साक्ष्य मौखिक साक्ष्य का अध्यारोहण करती है - इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड, यदि वास्तविक साबित हुए, तो मजबूत साक्ष्य है।

Laxmi Verma (Smt.) v. Sharik Khan and others

Judgment dated 04.05.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Criminal Revision No. 958 of 2008, reported in ILR 2017 MP 1978 (DB)

Relevant extracts from the judgment:

The aforesaid reasoning is based on a question put to this witness in his cross examination that he is the maternal uncle of Gaurav to which he has denied. In fact he has categorically stated that he is not related to the deceased Gaurav in any manner but PW/3 Pankaj Malviya has admitted in para 14 of his deposition that his mother's name is Sushila Bai, who has two other sisters viz. Laxmibai who is Gaurav's mother and Kamlabai. He has stated that Naresh Malviya is his cousin brother as Naresh's mother Kamlabai is the sister of his mother Sushilabai. Otherwise also no suggestion has been made to PW/11 Laxmi Devi that Naresh Malviya is her relative. Similarly, the question put to PW/12 Vinod Verma in his cross examination is that Naresh Malviya is the son of Laxmidevi's sister which has also been denied by him, thus, to discard the evidence of Naresh at the

outset only on the ground of his being a relative of deceased Gaurav was uncalled for. Hence the finding recorded by the learned judge regarding the evidentiary value of deposition of PW/1 Naresh Malviya is *ex-facie* wrong and cannot be sustained. Thus, the recovery of mobile handset with IMEI No.351478600620556 from Athar Ali stands proved.

x x x

Kapil Soni has been examined as PW/5. He happens to be the Branch Manager of Reliance mobile company. He has exhibited P/7 and 8 which are covering letter and call statement of mobile no. 9827532060 and mobile no. 9827082747. Vide covering letter Ex.P/7 he has proved that mobile no. 9827532060 belongs to Sangram Singh, 1100 Quarters, Arera Colony, Bhopal and also that mobile no. 9827082747 belongs to Athar Ali, 7, Hawa Mahal Road, Bhopal and the call details of the aforesaid cell no. have been provided in Annexure-1 and 2 of the said covering letter. Annexure-2 has also been proved as Ex.P/6. In Annexure-1 it is clearly mentioned that from mobile no. 9827532060 bearing IMEI no. 351478600620556 two calls were made on phone no. 07552538836 (i.e. the phone no. of Vinod Verma and Laxmi Verma) on 27 and 29.11.2005 respectively. In Ex.P/8 it can be discerned that IMEI No. 351478600620556 of both the mobile SIMs was the same. Meaning thereby that both these nos. were dialed from the same mobile handset which was earlier with Athar Ali and from which he had also called from his SIM no. 9827082747.

It is apparent from the testimony of this witness that no challenge has been made to Annexure-1 and 2 filed as the part and parcel of covering memo Ex.P/7 and thus the aforesaid call details stands proved. No challenge to the Ex.P/6, P/7 and Annexure-1 or Ex.P/8 has been made by the defence and no question has been put to this witness that mobile no. 9827082747 does not belong to Athar Ali. The only question put to this witness is that no documents of Athar Ali have been seized from this witness, which in the considered opinion of this Court cannot be said to discredit documents Ex.P/6, P/7 and P/8. Otherwise also covering letter Ex.P/7 containing the names and details of Sangram Singh and Athar Ali are based on actual hard copy record. Surprisingly, only a passing reference of this witness has been made by learned judge of the trial Court in her judgement in which the prosecution has been lamented for faulty investigation. The documents so produced by Kapil Soni PW/5 have been duly certified by the Reliance Telecom Limited, although no objection regarding compliance of provisions of Section 65-B of the Evidence Act has been raised by the parties, but this Court is of the opinion that the provisions of Section 65-B of the Evidence Act have been complied with.

Thus, from the aforesaid observation, it can be reasonably held that the validity of an IMEI number can never be doubted unless of course the same is challenged by producing cogent and clinching evidence. In the present case, as already stated above, there is no challenge by the accused Athar on this point and the validity of mobile no. 9827082747 which according to the company

record, belongs to Athar. Hence the role played by Athar in calling from his mobile to Laxmi Verma on 27th and 29th of November is positively established. In the circumstances, the finding recorded by the trial Court regarding the non-culpability of the accused Athar cannot be sustained as the same is based on erroneous reasoning and is in fact perverse and it is held that it was Athar Ali who had called from his mobile handset to the parents of the deceased Gaurav and thereafter the headless body of Gaurav was found giving rise to the only hypothesis consistent with the guilt of Athar Ali. Consequently the charges against Athar Ali under Sections 364-A and 302 of IPC stands proved.

x x x

The FIR Ex.P/23 u/s.364-A was lodged on 01.12.2005 by Laxmi Verma and recorded by Uma Shankar PW/16 during the enquiry of missing person's report no. 41/2005 also lodged by Laxmi Devi on 23.11.2005. Thus, there is a delay of around 7 days in lodging the FIR from the date of missing person report and the reason assigned for the same is on account of enquiry on the basis of missing person's report No. 41/2005. It is true that, the FIR should have been lodged immediately after the incident was reported, but the delay is attributable only to the utter apathy of the Sub-Inspector Umashankar Tiwari PW/23. Despite it being lodged after a delay of around 7 days, its benefit cannot be extended to the accused persons as it does not bear the names of any of the accused persons and in fact in spite of the delay, it is lodged against the unknown accused persons u/S 364 of IPC, thus it cannot be said that it was an afterthought. On scrutiny, this Court finds that in cross examination, Laxmi Devi PW/11 has not been asked even a single question regarding the delay caused in lodging the FIR. Thus no benefit of delayed FIR can be extended to the accused persons.

We have given anxious consideration to the judgments as cited by the learned counsel for the respondent but unable to hold that the present case squarely falls within the parameters as set out by the Hon'ble Apex Court in the aforesaid decisions regarding appreciation of evidence in the case of circumstantial evidence since we have already held that so far as the evidence of last seen together is concerned, the evidence of P.W.3 Pankaj who had last seen the accused persons on motorcycle with deceased Gaurav, the same is not reliable. Since the evidence in the present case is also in the form of electronic record and consideration of the same would certainly over-ride any oral testimony regarding the role assigned to Athar Ali as we have already held that the mobile hand-set bearing IMEI No. 351478600620550 was seized from Athar Ali and in the aforesaid mobile hand-set SIM bearing No. 9827082747 was used till 22.11.2005 and, thereafter, from the same mobile hand-set of aforesaid IMEI No., another SIM No. 9827532060 was used on 22nd and 29th November, 2005 to demand ransom on the land-line No. 07552538836. Thus, there is clinching evidence so far as the involvement of Athar Ali is concerned and his involvement in the crime cannot be brushed aside lightly.

•

190. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 376

EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 90 and 114-A

(i) Rape – 'False promise of marriage' and 'mere breach of promise to marry'; Distinction between – Held, where consent is obtained on a misconception of fact *i.e.*, promise made without any intention to marry, such consent is no consent.

(ii) Rape or consensual sex – Accused, prosecutrix and their families were known to each other – Accused was set to marry another girl but continued to promise to marry the prosecutrix – Accused called the prosecutrix on the fateful day, received her on railway station and took to his residence – Prosecutrix initially refused but accused allured her with promise to marry and had physical relation with her – Later both the families negotiated – Accused again expressed his willingness to marry prosecutrix and social function was also scheduled twice – On scheduled date, accused married the other girl in Arya Samaj – That other girl deposed that negotiations of her marriage with accused were going on since one year – Held, accused had no intention to marry prosecutrix since inception and it is a clear case of cheating and deception.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 376

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएं 90 एवं 114क

(i) बलात्कार - 'विवाह का मिथ्या वचन' एवं 'मात्र विवाह करने के वचन का भंग' में भेद - अभिनिर्धारित, जहां सहमति तथ्य की गलत धारणा पर प्राप्त की जाती है अर्थात, बिना विवाह करने के आशय से किया गया वचन, ऐसी सहमति कोई सहमति नहीं है।

(ii) बलात्कार या सहमतिपूर्ण यौन संबंध - अभियुक्त, अभियोक्त्री और उनके परिवार एक-दूसरे के परिचित थे - अभियुक्त का विवाह किसी अन्य लड़की से तय था फिर भी वह अभियोक्त्री से विवाह करने का वादा करता रहा - अभियुक्त ने प्रश्नगत दिन अभियोक्त्री को बुलाया, उसे रेलवे स्टेशन पर लिया और अपने आवास पर ले गया - अभियोक्त्री ने शुरू में इनकार किया परन्तु अभियुक्त ने विवाह करने का वचन कर उसे फुसलाया और उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए - बाद में दोनों परिवारों ने बातचीत की - अभियुक्त ने पुनः अभियोक्त्री से विवाह करने की इच्छा व्यक्त की और दो बार सामाजिक समारोह भी निर्धारित किए गए - निर्धारित तिथि पर, अभियुक्त ने आर्य समाज में दूसरी लड़की से विवाह कर लिया - उस दूसरी लड़की ने बताया कि अभियुक्त के साथ उसके विवाह की बातचीत एक वर्ष से चल रही थी - अभिनिर्धारित, अभियुक्त का प्रारंभ से ही अभियोक्त्री से विवाह करने का कोई आशय नहीं था और यह छल एवं प्रवंचना का एक स्पष्ट मामला है।

Anurag Soni v. State of Chhattisgarh

Judgment dated 05.04.2019 passed by the Supreme Court in Crimina Appeal No. 629 of 2019, reported in 2019 (2) Crimes 162 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

The sum and substance of the aforesaid decisions would be that if it is established and proved that from the inception the accused who gave the promise to the prosecutrix to marry, did not have any intention to marry and the prosecutrix gave the consent for sexual intercourse on such an assurance by the accused that he would marry her, such a consent can be said to be a consent obtained on a misconception of fact as per Section 90 of the IPC and, in such a case, such a consent would not excuse the offender and such an offender can be said to have committed the rape as defined under Section 375 of the IPC and can be convicted for the offence under Section 376 of the IPC.

Applying the law laid down by this Court in the aforesaid decisions, the following facts emerging from the evidence on record are required to be considered: (i) That the family of the prosecutrix and the accused were known to each other and, therefore, even the prosecutrix and the accused were known to each other;

(ii) That though the accused was to marry another girl - Priyanka Soni, the accused continued to talk of marriage with the prosecutrix and continued to give the promise that he will marry the prosecutrix;

(iii) That on 28.04.2013 the appellant expressed his wish telephonically to meet with the prosecutrix and responding to that the prosecutrix went to the place of the accused on 29.04.2013 by train, where the accused received her at the railway station Sakti and took her to his place of residence in Malkharauda;

(iv) That during her stay at the house of the accused from 2.00 pm on 29.04.2013 to 3.00 pm on 30.04.2013, they had physical relation thrice;

(v) That as per the case of the prosecutrix, the prosecutrix initially refused to have physical relation, but then the appellant allured her with a promise to marry and had physical relation with her;

(vi) That, thereafter the prosecutrix called the accused number of times asking him about the marriage, however, the accused did not reply positively;

(vii) That thereafter the prosecutrix informed about the incident to her family members on 06.05.2013;

(viii) That the family members of the prosecutrix negotiated with the family members of the accused;

(ix) That on 23.05.2013, the appellant expressed his willingness to marry the prosecutrix and a social function was scheduled on 30.05.2013, which did not take place;

(x) That, again the family members of both the parties had talks, in which the marriage was negotiated and a social function was scheduled on 10.06.2013, which was again not held and further, the social event was fixed for 20.06.2013;

(xi) That on 20.06.2013, the appellant telephonically informed the prosecutrix that he has already married;

(xii) That, Priyanka Soni PW-13, who is the wife of the accused stated that one year prior to the marriage that took place on 10.06.2013, the negotiations were going on; and

(xiii) That the accused married Priyanka Soni on 10.06.2013 in Arya Samaj, even prior to the social function for the marriage of the accused the prosecutrix was scheduled on 10.06.2013 and even thereafter the social event was fixed for 20.06.2013.

The prosecution has been successful by leading cogent evidence that from the very inspection the accused had no intention to marry the victim and that he had mala fide motives and had made false promise only to satisfy the lust. But for the false promise by the accused to marry the prosecutrix, the prosecutrix would not have given the consent to have the physical relationship. It was a clear case of cheating and deception.

•

191. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 376 (2)

PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012 – Sections 5 and 6

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 354

(i) Death sentence – Mitigating circumstances – No previous criminal antecedent, tender age (19 years) at commission of crime, good jail conduct are mitigating circumstances which should be considered while awarding death sentence.

(ii) Death sentence – Accused convicted under Section 376 (2) IPC read with Section 5 read with Section 6 POCSO Act and Section 302 IPC for committing rape and murder of 7½ year old girl – He was awarded death sentence by trial Court which was affirmed by the High Court – Considering the above mitigating circumstances, his death sentence was commuted to life imprisonment.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 376 (2)

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धाराएं 5 एवं 6

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 354

(i) मृत्यु दण्ड - गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियां - किसी पूर्व आपराधिक इतिहास का अभाव, अपराध के समय अल्प आयु (19 वर्ष), कारावास में अच्छा

आचरण गंभीरता कम करने वाली परिस्थितियां हैं जिन्हें मृत्यु दण्ड देते समय विचार में लेना चाहिए।

(ii) मृत्यु दण्ड - अभियुक्त भा.दं.सं. की धारा 376 (2) एवं पॉक्सो अधिनियम की धारा 5 सहपठित धारा 6 और भा.दं.सं. की धारा 302 के अधीन एक 7) वर्षीय बालिका के बलात्कार और हत्या के आरोप में दोषी पाया गया - विचारण न्यायालय द्वारा उसे मृत्यु दण्ड से दंडित किया गया जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई - गंभीरता कम करने वाली उपरोक्त परिस्थितियों के आलोक में,उसके मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया।

Vijay Raikwar v. State of M.P.

Judgment dated 05.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1112 of 2015, reported in 2019 (2) Crimes 36 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

Now, so far as the request and the prayer made on behalf of the accused to commute the death sentence to life imprisonment is concerned, having heard the learned counsel appearing on behalf of the accused on the question of death sentence imposed by the learned Sessions Court, confirmed by the High Court and considering the totality and circumstances of the case and the decisions of this Court in ***Bachan Singh v. State of Punjab, (1980) 2 SCC 684*** and ***Shyam Singh v. State of M.P., (2017) 11 SCC 265,*** we are of the opinion that the present case does not fall within the category of "rarest of rare case" warranting death penalty. We have considered each of the circumstance and the crime as well as the facts leading to the commission of the crime by the accused. Though, we acknowledge the gravity of the offence, we are unable to satisfy ourselves that this case would fall in the category of "rarest of rare cases" warranting the death sentence. The offence committed, undoubtedly, can be said to be brutal, but does not warrant death sentence. It is required to be noted that the accused was not a previous convict or a professional killer. At the time of commission of offence, he was 19 years of age. His jail conduct also reported to be good. Considering the aforesaid mitigating circumstances and considering the aforesaid decisions of this Court, we think that it will be in the interest of justice to commute the death sentence to life imprisonment.

•

192. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 405, 406, 415 and 420

(i) Criminal breach of trust – Loan transaction – Held, law recognizes difference between 'simple payment' and 'entrustment of money' – Advancement of loan is not entrustment of money – There cannot be a criminal breach of trust without clear case of entrustment.

(ii) 'Cheating' and 'mere breach of contract'; distinction between – Depends upon fraudulent intention and *mens rea* – Mere

inability to repay loan amount cannot constitute cheating unless fraudulent or dishonest intention is shown since right from the beginning of the transaction – Civil disputes should not be criminalized.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 405, 406, 415 एवं 420

(i) आपराधिक न्यासभंग - ऋण संव्यवहार - अभिनिर्धारित, विधि 'सामान्य भुगतान' और 'धन के न्यस्तिकरण' के मध्य विभेद करती है - ऋण दिया जाना धन का न्यस्तिकरण नहीं है - न्यस्तिकरण के स्पष्ट मामले के बिना आपराधिक न्यासभंग नहीं हो सकता है।

(ii) 'छल' एवं 'संविदा का उल्लंघन' में भेद - कपटपूर्ण आशय एवं आपराधिक मनः स्थिति पर निर्भर करता है - ऋण राशि चुकाने में असमर्थता तब तक छल नहीं हो सकती जब तक कि संव्यवहार के प्रारंभ से ही धोखाधड़ी या बेईमानीपूर्ण आषय परिलक्षित होता हो - सिविल विवादों का अपराधीकरण नहीं किया जाना चाहिए।

Satishchandra Ratanlal Shah v. State of Gujarat and another

Judgment dated 03.01.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 09 of 2019, reported in 2019 (2) Crimes 1 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

Turning to Section 405 read with 406 of IPC, we observe that the dispute arises out of a loan transaction between the parties. It falls from the record that the respondent no. 2 knew the appellant and the attendant circumstances before lending the loan. Further it is an admitted fact that in order to recover the aforesaid amount, the respondent no. 2 had instituted a summary civil suit which is still pending adjudication. The law clearly recognizes a difference between simple payment/investment of money and entrustment of money or property. A mere breach of a promise, agreement or contract does not, *ipso facto*, constitute the offence of the criminal breach of trust contained in Section 405 IPC without there being a clear case of entrustment.

In this context, we may note that there is nothing either in the complaint or in any material before us, pointing to the fact that any property was entrusted to the appellant at all which he dishonestly converted for his own use so as to satisfy the ingredients of Section 405 punishable under Section 406 of IPC. Hence the learned Magistrate committed a serious error in issuing process against the appellants for the said offence. Unfortunately, the High Court also failed to correct this manifest error.

x x x

Now coming to the charge under Section 415 punishable under Section 420 of IPC. In the context of contracts, the distinction between mere breach of contract and cheating would depend upon the fraudulent inducement and *mens rea*. (See ***Hridaya Ranjan Prasad Verma v. State of Bihar, (2000) 4 SCC 168***). In the

case before us, admittedly the appellant was trapped in economic crisis and therefore, he had approached the respondent no. 2 to ameliorate the situation of crisis. Further, in order to recover the aforesaid amount, the respondent no.2 had instituted a summary civil suit seeking recovery of the loan amount which is still pending adjudication. The mere inability of the appellant to return the loan amount cannot give rise to a criminal prosecution for cheating unless fraudulent or dishonest intention is shown right at the beginning of the transaction, as it is this *mens rea* which is the crux of the offence. Even if all the facts in the complaint and material are taken on their face value, no such dishonest representation or inducement could be found or inferred.

Moreover, this Court in a number of cases has usually cautioned against criminalizing civil disputes, such as breach of contractual obligations (refer to ***Gian Singh v. State of Punjab, (2012) 10 SCC 303***). The legislature intended to criminalize only those breaches which are accompanied by fraudulent, dishonest or deceptive inducements, which resulted in involuntary and inefficient transfers, under Section 415 of IPC.

•

193. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 498A

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 177

DOWRY PROHIBITION ACT, 1961 – Sections 3 and 4

Territorial jurisdiction – Matrimonial offence with respect to demand of dowry – Whether Court at paternal home of wife has territorial jurisdiction to try such offences? Held, when part of crime is committed within the territorial jurisdiction of the Court where wife's paternal home is situated, then such Court has territorial jurisdiction.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 498क

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 177

दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 - धाराएं 3 एवं 4

प्रादेशिक क्षेत्राधिकार - दहेज की मांग के संबंध में वैवाहिक अपराध - क्या पत्नी के पैतृक निवास के न्यायालय को ऐसे अपराधों का विचारण करने की क्षेत्रीय अधिकारिता है? अभिनिर्धारित, यदि अपराध का कोई भाग उस न्यायालय की क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर घटित होता है, जहां पत्नी का पैतृक निवास है, तो ऐसे न्यायालय को विचारण की क्षेत्रीय अधिकारिता होती है।

Anurag Mathur and others v. State of M.P. and another

Order dated 11.04.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in M.Cr.C. No. 2744 of 2016, reported in ILR 2017 MP 2031

Relevant extracts from the order:

In ***Sujata Mukherjee (Smt.) v. Prashant Kumar Mukherjee, (1997) 5 SCC 30,*** the parents of complainant-wife were residents of Raipur, whereas her husband, an accused, and other accused persons of the case were the residents of Raigarh. The complainant-wife had to come to Raipur to save herself from the maltreatment and humiliation being meted out to her at the hands of all the accused persons. The complainant-wife has stated in the FIR, *inter alia*, that her husband had also come to the house of her parents at Raipur and there he had also assaulted her. On the basis of the said facts, the Supreme Court has held that even though only one isolated incident of dowry related offence was committed at the complainant-wife's parental house at Raipur, the court at Raipur has territorial jurisdiction to try the case. The Supreme Court has also held that the FIR reveals that on some occasions all the accused persons had taken part in the commission of dowry related offences, on other occasion one of the accused persons had taken part in commission of the alleged offences, therefore, the Court at Raipur will have jurisdiction to try the case against all the accused persons though only the husband committed the offence at Raipur.

In ***Sunita Kumari Kashyap v. State of Bihar and another, AIR 2011 SC 1674,*** the complainant-wife's parents were residents of Gaya and her husband, an accused, and other accused persons of the case were residents of Ranchi. The accused persons harassed and tortured her for bringing less dowry. The complainant-wife has stated in the FIR that her husband brought her to Gaya from Ranchi and gave her a threat of dire consequences for not fulfilling their demand of dowry at Gaya. The Supreme Court, having placed reliance upon the decision rendered in ***Sujata Mukherjee's*** case (supra), has held that the court at Gaya will have territorial jurisdiction to try the case not only against the husband but also other accused persons of the case.

In the case in hand, respondent No.2 has specifically asserted in the FIR that petitioner No.1 came over to Bhopal on 04.02.2012 and insisted upon her and her parents to fulfill the old demand of dowry and upon their outright refusal, he committed marpeet with her. This incident is also reiterated among other incidents by respondent No. 2, her father and brother in their case diary statements. In the light of these facts, the law laid down by the Supreme Court in ***Sujata Mukherjee's*** case (supra) and ***Sunita Kumari Kashyap's*** case (supra) are squarely applicable in the present case. It is, therefore, held that the Court at Bhopal has territorial jurisdiction to try the case against all the petitioners.

•

***194. JUVENILE JUSTICE (CARE AND PROTECTION OF CHILDREN) ACT, 2000 – Section 7A**

JUVENILE JUSTICE (CARE AND PROTECTION OF CHILDREN) RULES, 2007 – Rule 12

Plea of juvenility – Plea of juvenility can be raised at any stage before any Court by an accused, including Supreme Court, even after final disposal of the case.

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 - धारा 7क

किशोर न्याय (बालकों की देख रेख एवं संरक्षण) नियम, 2007- नियम 12

किशोर होने का अभिवाक् - अभियुक्त द्वारा किसी भी प्रक्रम पर एवं किसी भी न्यायालय के समक्ष, जिसमें उच्चतम न्यायालय भी शामिल है, यहां तक कि प्रकरण के अंतिम निपटारे के बाद भी, किशोर होने का अभिवाक् लिया जा सकता है।

Raju v. State of Haryana

Judgment dated 22.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1175 of 2014, reported in AIR 2019 SC 1136 (3 Judge Bench)

•

195. LAND ACQUISITION ACT, 1894 – Sections 18 and 23

(i) Compensation; determination of – 'Comparison method' – Held, where there is vast difference (Rs.0.20/- and Rs. .2/- per sq.ft.) in the rate of land mentioned in different sale deeds just before the acquisition of nearby land, the sale deeds cannot be relied upon to apply 'comparison method'.

(ii) Interest and solatium; amount of – Effect of amendment in law – Whether amended provisions of Section 23 (1A) and 23 (2) would apply to determine the amount of interest and solatium, where land was acquired before amendment? Held, yes – Where reference Court passes order after the amendment came into force, it is duty bound to grant interest and solatium as per amended provision.

भू-अर्जन अधिनियम, 1894 - धाराएं 18 एवं 23

(i) प्रतिकर का निर्धारण - 'तुलना विधि' - अभिनिर्धारित, जहां समीपवर्ती भूमि के अधिग्रहण से ठीक पहले अलग-अलग विक्रय पत्रों में उल्लिखित प्रतिफल की दर में व्यापक अंतर (रूपये 0.20/- और रूपये 2.00/- प्रति वर्ग फीट) था, वहां विक्रय पत्रों का अवलंबन कर 'तुलना विधि' को लागू नहीं किया जा सकता है।

(ii) ब्याज और तोषण की राशि - विधि में संषोधन का प्रभाव - क्या धारा 23 (1ए) और 23 (2) के संशोधित प्रावधान ब्याज और तोषण की राशि निर्धारित करने के लिए लागू होंगे, जहां संशोधन से पूर्व ही भूमि का अधिग्रहण किया जा चुका हो?

अभिनिर्धारित, हां - जब संदर्भ न्यायालय, संशोधन लागू होने के पश्चात आदेश पारित करता है, वहां वह संशोधित प्रावधान के अनुसार ब्याज और तोषण की राशि देने के लिए बाध्य है।

Shyam Singh (Mst.) and others v. State of M.P.

Judgment dated 08.02.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in First Appeal No. 728 of 2000, reported in ILR 2017 MP 1449

Relevant extracts from the judgment:

On perusal of the record the appellants-claimants for the purpose of determination of the market value of the acquired land, have produced sale-deed for applying comparison method, in which sale-deeds Ex.P/1 dated 22.11.1979 and Ex.P/2 dated 15.12.1980 have been executed after the acquisition of the land. Sale-deed Ex.P/3 dated 1.6.1978 and Ex.P/4 dated 16.11.1978 were executed before the date of acquisition of the acquired land and they belong to the same village. Therefore, they are much relevant and can be considered for determination of market value of the acquired land. As per sale-deed, Ex.P/3, Rs. 10,000/- sqft. land have been sold for a sum of Rs. 2,000/-. Accordingly, per sqft. rate comes to 0.20 Paisa per sqft. In other words, per acre rate will be Rs. 8,712/-. By sale-deed Ex.P/4, 27.4 x 70 sqft. land was sold for Rs. 4,000/-. In other words, near about Rs. 2 per sqft. Therefore, it appears that the land of the same village during the very short span were sold on very different rates having a vast difference in the rates, i.e. Rs. 0.20/- to Rs. 2/- and there is no evidence on record to show that the aforesaid land were situated near the acquired land. Similarly, the aforesaid sale-deeds are related to small plot for construction of the houses and the acquired land is very big area and accordingly the rate is required to be fixed. There is no evidence to establish the fact that the acquired lands were the potential for the use of construction of the house. In this regard, statement of only the applicant Makardhawaj Singh, PW1 is on record, which cannot be believed without corroboration with other independent evidence, as ordinarily the claimants have the tendency to narrate the facts in exaggeration with a view to get higher compensation.

x x x

In this case, benefit of Section 23 (1-A) of the Act has not been granted on the ground that this provision has been inserted in the Statute w.e.f. 24.9.1984 and the notification for acquisition was issued on 14.3.1979. Similarly, as per the provision of Section 23 (2) of the Act, in place of 30%, 15% solatium has been awarded on the same ground.

Learned counsel for the appellants/claimants has contended that the Reference Court has passed the judgment on 26.6.2000 and the reference proceeding was pending since 5.2.1982. The Apex Court has laid down the law in the case of ***Pannalal Ghosh and others v. Land Acquisition Collector and others, (2004) 1 SCC 467,*** that in the aforesaid circumstances, the Reference Court will

grant compensation, considering the amended provision of the Act, the aforesaid contention has a substance and learned Court below has not considered the aforesaid position of law. The reference Court is duty bound to grant interest and solatium as per amended provision in the cases which are decided on 24.9.1984 or afterwards as there is no provision of exclusion of applicability of amended provision on such cases. In view of the above, it is held that the appellant/claimants are entitled to get benefit of section 23 (1-A) and 23 (2) of the Act regarding interest and solatium. In other words, the appellants are entitled on the market value of the land, 12% interest from the date of publication of notification under section 4 (1) of the Act, i.e. 14.3.1979 to the date of award of the Collector or the date of taking possession of the land, whichever is earlier and is also entitled to solatium at the rate of 30% in place of 15%.

•

196. LIMITATION ACT, 1963 – Section 5

Condonation of delay – Delay of 1942 days (*i.e.* 4 years 6 months) in filing appeal for the reason that the lawyer did not take timely steps to file an appeal is not sufficient cause to condone the delay – If a lawyer is not taking interest in attending Court on time, then party must take steps to engage another lawyer to ensure that appeal is filed on time.

परिसीमा अधिनियम, 1963 - धारा 5

विलंब क्षमा - अधिवक्ता द्वारा अपील संस्थित करने के लिये समय पर आवश्यक उपाय न किये जाने के कारण अपील संस्थित करने में 1942 दिवस (अर्थात 4 वर्ष एवं 6 माह) का विलंब, विलंब क्षमा हेतु पर्याप्त कारण नहीं है - यदि कोई अधिवक्ता समय पर न्यायालय में उपस्थित होने में रूचि नहीं ले रहा है तो पक्षकार को किसी अन्य अधिवक्ता को नियुक्त करने का उपाय करना चाहिए जिससे अपील समय पर संस्थित किया जाना सुनिश्चित हो सके।

Estate Officer, Haryana Urban Development Authority and another v. Gopi Chand Atreja

Judgment dated 12.03.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 5051 of 2009, reported in AIR 2019 SC 1423

Relevant extracts from the judgment:

If, according to the appellants-HUDA, their lawyer did not take timely steps, which resulted in causing delay in its filing/refiling, then, in our view, it cannot be regarded as a sufficient cause within the meaning of Section 5 of the Limitation Act.

In our view, it was equally the duty of the appellants (their legal managers) to see that the appeal be filed in time. If the appellants noticed that their lawyer was not taking interest in attending to the brief in question, then they should have immediately engaged some other lawyer to ensure that the appeal be filed in time by another lawyer.

In our view, it is a clear case where the appellant-HUDA, *i.e.*, their officers, who were in-charge of the legal cell failed to discharge their duty assigned to them promptly and with due diligence despite availability of all facilities and infrastructure. In such circumstances, the officers-in-charge of the case should be made answerable for the lapse on their part and make good the loss suffered by the appellants-HUDA.

•

197. LIMITATION ACT, 1963 – Sections 5 and 14

(i) Condonation of delay – "Sufficient cause" – Held, Courts should adopt liberal view and justice oriented approach while deciding sufficient cause.

(ii) Sufficient cause; factors constituting – Absence of inordinate and deliberate undue delay in making application for certified copy and receiving the said copy – Applicant residing in remote area – Certified copy obtained through counsel – These factors constitute sufficient cause.

(iii) Whether an application under Section 5 of the Limitation Act can be rejected on the ground that applicant was not diligent while making application for certified copy of the order impugned and was not receiving the same when asked to receive? Held, No – It becomes relevant only when question of delay under Section 14 arises.

परिसीमा अधिनियम, 1963 - धाराएं 5 एवं 14

(i) विलम्ब क्षमा किया जाना - ''पर्याप्त कारण'' - अभिनिर्धारित, न्यायालयों को पर्याप्त कारण तय करते समय उदार मत एवं न्याय उन्मुख दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

(ii) पर्याप्त कारण के घटक - प्रमाणित प्रतिलिपि के लिए आवेदन करने और उक्त प्रति प्राप्त करने में अयोग्य और जानबूझकर देरी नहीं की गई - आवेदक दूरस्थ क्षेत्र में रहने वाले था - उसने अभिभाषक के माध्यम से प्रमाणित प्रति प्राप्त की थी - ये कारक पर्याप्त कारण बनाते हैं।

(iii) क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन प्रस्तुत आवेदन को इस आधार पर खारिज किया जा सकता है कि आवेदक आदेश की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन करते समय तत्पर नहीं था और प्रति प्राप्त करने के लिए कहने पर भी उसे प्राप्त नहीं कर रहा था ? अभिनिर्धारित, नहीं - यह केवल तब प्रासंगिक होता है, जब धारा 14 के अधीन विलंब का प्रश्न उत्पन्न होता हो।

Ram Sewak Prajapati v. Shiv Kumar Yadav and others

Judgment dated 20.04.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Second Appeal No. 1130 of 2016, reported in ILR 2017 MP 1875

Relevant extracts from the judgment:

Prior to this, the Apex Court in the case of ***Collector, Land Acquisition, Anantnag and another v. Mst. Katiji and others, (1987) 2 SCC 107,*** held that to determine the word 'sufficient cause', Courts should adopt a liberal and justice-oriented approach.

In the case of ***State of Bihar v. Kameshwar Prasad Singh, (2000) 9 SCC 94,*** the same view has been reiterated that a lenient view should have been taken by the Lower Appellate Court. Relying on the same judgment, a Coordinate Bench of this Court in the case of ***Salikram and others v. Keshav and others, 2012 (1) MPHT 409,*** held that the appeal should not have been dismissed merely on technical ground of delay and a liberal view should have been taken.

Upon a perusal of the application, it is noted that the judgment and decree was passed on 28.04.2016, the appellant got the information from his Advocate on 25.05.2016. He made an application for obtaining certified copy on 30.05.2016 just after 5 days from the date of getting knowledge of the judgment and decree. Certified copy was received by him on 21.06.2016 through his counsel. In the impugned order, it is stated that the appellant was told to appear on 06.06.2016 but he appeared on 21.06.2016. It is also mentioned that the copy was ready on 14.06.2016. From the sequence of the dates and the facts of the present case, it cannot be said that there was any inordinate and deliberate undue delay in making the application for certified copy of the order and receiving the said copy by the counsel. The affidavit of the appellant shows that he is residing in a remote area of Jabalpur town and certainly it was not possible for him to get information day to day from his counsel. The application for obtaining certified copy and the delivery of the copy was done through the counsel and not by him personally. The view of this Court is fortified by the judgment of this Court in the case of ***Salikram*** (supra), where it has been held that in the cases of persons residing in remote rural areas and who were not informed by their counsel about obtaining of certified copy of the impugned judgment and decree and the same was made after coming to know through their counsel constitute 'sufficient cause' for condoning the delay and a lenient view ought to have been taken by the Court below. Further, non-diligence during the period of time taken regarding making application for obtaining certified copy and not receiving the same on the date when he was asked to receive the certified copy cannot be grounds to reject the application under Section 5 of Indian Limitation Act as held in the case of ***Ramlal and others v. Rewa Coalfields Ltd., AIR 1962 SC 361***.

•

***198. LIMITATION ACT, 1963 – Articles 64 and 65**

(i) Inconsistent pleading – Pleading of 'acquisition of title through predecessor' as well as 'acquisition of title by adverse possession' – Held, impermissible.

(ii) Declaratory relief on basis of adverse possession, maintainability of – Plaintiff cannot claim relief on the basis of adverse possession – It is merely a defence to be used by defendant as shield. (*Gurudwara Sahib v. Gram Panchayat Village Sirthala, 2014 (3) MPLJ 36,* relied on)

परिसीमा अधिनियम, 1963 - अनुच्छेद 64 एवं 65

(i) असंगत अभिवचन - 'पूर्वजों के माध्यम से स्वामित्व के अर्जन' के साथ 'प्रतिकूल आधिपत्य द्वारा स्वामित्व के अर्जन' का अभिवाक् - अभिनिर्धारित, अनुज्ञेय नहीं है।

(ii) विरोधी आधिपत्य के आधार पर घोषणात्मक अनुतोष की पोषणीयता - वादी विरोधी आधिपत्य के आधार पर अनुतोष की मांग नहीं कर सकता - यह प्रतिवादी द्वारा ढाल के रूप में लिया जाने वाला मात्र एक बचाव है। (***गुरूद्वारा साहिब विरूद्ध ग्राम पंचायत विलेज सिरथला, 2014 (3) एम.पी.एल.जे. 36,*** अवलंबित)

Ajad Khan v. Vaheed Khan and another

Judgment dated 08.01.2019 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in SA No. 118 of 2017, reported in AIR 2019 MP 69

•

199. N.D.P.S. ACT, 1985 – Sections 8, 15, 42, 50 and 57

APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Compliance of section 50 – When required? – Held, Section 50 of the Act does not apply when recovery of contraband does not involve personal search.

(ii) Testimony of police officials; Evidentiary value of – Principles reiterated – A case cannot fail because the testifying witnesses are police officials – Testimony of a police officer cannot be thrown overboard only on the ground that he is a police officer – If his testimony is trustworthy and free from material contradictions and anomalies, it may form ground for conviction.

(iii) Recovery from premises – Contraband was recovered from *verandah* annexed with houses – Revenue records show that house belongs to accused – Secretary of Gram Panchayat also proved that *verandah* is annexed with house and is in possession of accused – Cross-examination of witness remain intact – Held, contraband was recovered from exclusive and conscious possession of accused.

स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धाराएं 8, 15, 42, 50 एवं 57

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) धारा 50 का अननुपालन - कब आवश्यक है? - अभिनिर्धारित, अधिनियम की धारा 50 तब लागू नहीं होती है जब निषिद्ध वस्तु की जप्ती में व्यक्तिगत तलाशी शामिल नहीं होती है।

(ii) पुलिस अधिकारियों की साक्ष्य का साक्ष्यिक मूल्य - सिद्धांत दोहराए गए - कोई मामला इस आधार पर विफल नहीं हो सकता है कि साक्षीगण पुलिस अधिकारी हैं - एक पुलिस अधिकारी की साक्ष्य मात्र इस आधार पर अस्वीकार नहीं की जा सकती है कि वह एक पुलिस अधिकारी है - यदि उसकी साक्ष्य भरोसेमंद है और तात्विक विरोधाभासों और विसंगतियों से मुक्त है, तो वह दोषसिद्धि का आधार हो सकती है।

(iii) परिसर से जप्ती - घर के साथ लगे बरामदे से निषिद्ध वस्तु जप्त की गई थी - राजस्व अभिलेख दर्शित करते हैं कि घर अभियुक्त का है - ग्राम पंचायत के सचिव ने यह भी साबित किया कि बरामदा घर से लगा हुआ है जो अभियुक्त के आधिपत्य में है - साक्षी का प्रतिपरीक्षण अक्षुण्ण रहा - अभिनिर्धारित, निषिद्ध वस्तु अभियुक्त के अनन्य और सजग आधिपत्य से प्राप्त की गई थी।

Badrisingh v. State of M.P.

Judgment dated 23.06.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in Criminal Appeal No. 24 of 2008, reported in ILR 2017 MP 1952

Relevant extracts from the judgment:

As regards compliance of Section 50 of 'the Act', in ***Megh Singh v. State of Punjab, 2004 1 EFR 26 SC,*** the apex Court has summed up the legal position as under:

> "A bare reading of Section 50 shows that it only applies in case of personal search of a person. It does not extend to search of a vehicle or a container or a bag, or premises. (See ***Kalema Tumba v. State of Maharashtra and anr., 1999 8 JT 293(SC), State of Punjab v. Baldev Singh, 1999 4 JT 595(SC), Gurbax Singh v. State of Haryana, (2001) 3 SCC 28.***) The language of Section 50 is implicitly clear that the search has to be in relation to a person as contrasted to search of premises, vehicles or articles. This position was settled beyond doubt by the Constitution Bench in ***Baldev Singh's*** case. Above being the position, the contention regarding non-compliance of Section 50 of 'the Act' is also without any substance."

Considering that the contraband allegedly, was recovered from 35 polythene bags lying in the "Dhalia" (verandah) of the house of the appellant and did not involve personal search of the appellant, it can well be said that

Section 50 of 'the Act' was squarely not applicable in the present case, therefore, grievance with regard to non compliance thereof cannot be entertained.

x x x

Though, it is contended by learned counsel for the appellant that Rodulal (P.W.2) and Vikram Singh (P.W.1) said to be "Panch" witnesses of search and seizure have not supported the same, hence, the testimony of Doulatram Jogawat (P.W.5) cannot be accepted. As regards testimony of police officer in the matter of ***Anil alias Andya Sadashiv Nandoskar v. State of Maharashtra, (1996) 2 SCC 589,*** the apex Court has held that -

> "there is no rule of law that the evidence of police officials has to be discarded unless it suffers from some inherent infirmity. Prudence, however, requires that the evidence of the police officials, who are interested in the outcome of the result of the case, needs to be carefully scrutinized and independently appreciated. The police officials do not suffer from any disability to give evidence and the mere fact that they are police officials does not by itself give rise to any doubt about their creditworthiness."

Thus the law is well settled that the testimony of a police officer cannot be thrown overboard only on the ground that he is a police officer. If the testimony of a police officer, on due appreciation, is found to be trustworthy and free from material contradictions and anomalies, nothing prevents in law in recording conviction on the basis of such evidence. In ***P.P. Beeran v. State of Kerala, AIR 2001 SC 2420***, a case under the NDPS Act, the apex Court has held as under:

> ''Indeed all the 5 prosecution witnesses who have been examined in support of search and seizure were members of the raiding party. They are all police officials. There is, however, no rule of law that the evidence of police officials has to be discarded or that it suffers from some inherent infirmity. Prudence, however, requires that the evidence of the police officials, who are interested in the outcome of the result of the case, needs to be carefully scrutinized and independently appreciated. The police officials do not suffer from any disability to give evidence and the mere fact that they are police officials does not by itself give rise to any doubt about their credit worthiness placed reliance on the uncorroborated testimony of the Police Inspector in the case of possession of drug of small quantity.''

Therefore, from the testimony of Doulatram Jogawat (P.W.5), who stands corroborated by the testimony of Ramchandra (P.W.3), a member of the trap party, it is well established that 450 kg of opium poppy straw kept in 35 plastic

bags was recovered from "Dhalia" (corridor) of the house where the appellant was residing.

As regards exclusive and conscious possession, the testimony of Shankarlal (P.W.9) and Anil Chouhan (P.W.10) is pertinent. Shankarlal (P.W.9) has clearly testified that the house of the appellant is situated in survey No. 857 which is recorded in his name as per B/1 "Khatoni" (Ex.P/35). Apart this, Anil Chouhan (P.W.10), who is the Secretary of Gram Panchayat, Dhodar has further stated on oath that House No.8 from where the contraband was recovered belongs to appellant and that he personally knows about the fact that the house in question including "Dhalia" (corridor) is in possession of the appellant. The testimony of this witness has remained intact, despite searching cross-examination, therefore, we do not have the slightest hesitation in holding that the contraband was recovered from the exclusive and conscious possession of the appellant.

•

***200.TRANSFER OF PROPERTY ACT, 1882 – Section 122**

Validity of gift deed – Mentioning of value of property for purpose of stamp duty and registration charges on first page of gift deed does not invalidate the same by saying that consideration has been received by donor for executing gift deed.

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 - धारा 122

दान विलेख की वैधता - दान विलेख के प्रथम पृष्ठ पर स्टाम्प शुल्क तथा पंजीयन प्रभारों के उद्देश्य से संपत्ति की कीमत का उल्लेख किया जाना दान विलेख को यह कहते हुए अमान्य नहीं करता है कि दान विलेख निष्पादित करने के लिये दाता द्वारा प्रतिफल प्राप्त किया जा चुका है।

Jagdish Chander v. Satish Chander and others

Judgment dated 27.02.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 2361 of 2019, reported in AIR 2019 SC 1154

•

Unsuccessful people make decesions based on their current situations. Successful people make decesions based on where they want to be.

– ANONYMOUS

PART - II A

GUIDELINES TO BE FOLLOWED BY MOTOR ACCIDENTS CLAIMS TRIBUNALS

Rehabilitation of the victims of road accidents, award of proper compensation to the surviving victims or kith and kins of the deceased victims have been a matter of judicial thought process over a considerable period of time. With an objective of fast tracking the disposal of cases by MACT's, Delhi High Court had formulated the Claims Tribunal Agreed Procedure in its judgment dated 16.12.2009, passed in FAO No. 843 of 2003, parties being ***Rajesh Tyagi v. Jaibir Singh.*** Supreme Court had also given its imprimatur to this Claims Tribunal Agreed Procedure in ***Jaiprakash v.National Insurance Co. Ltd. and Ors., (2010) 2 SCC 607***.

Delhi High Court further modified the Claims Tribunal Agreed Procedure by its order dated 12.12.2014 in the same case and Supreme Court by its order dated 06.11.2017 in ***Jaiprakash's*** case directed that this Modified Claims Tribunal Agreed Procedure needs to be followed at all India level.

This Modified Claims Tribunal Agreed Procedure (in brief MCTAP) was published in the JOTI Journal 2016 Part IIA at pages 606 to 620. However, in order to address the challenges in proper implementation of MCTAP, to streamline the complete process of dealing with motor accident claims for expeditious disposal, assessment of compensation and award of compensation in proper hands of claimants, Delhi High Court has further modified the MCTAP by its order dated 07.12.2018 passed in ***Rajesh Tyagi v. Jaibir Singh, 2019 ACJ 1245.*** Delhi High Court had also undertaken the herculean task of framing and implementation of Motor Accident Claims Annuity Deposit (MACAD) Scheme which has also been implemented in its jurisdiction by this judgment.

The Supreme Court have had the opportunity to consider the MACAD Scheme and MCTAP as framed by the Delhi High Court in its judgment dated 07.12.2018 in ***M.R. Krishna Murthi v. New India Assurance Co. Ltd. and others, 2019 ACJ 1291.*** The observations of the Supreme Court on the MACAD Scheme and MCTAP are worth mentioning, therefore, are reproduced below:

> ***"The Modified Claims Tribunal Agreed Procedure as approved by High Court of Delhi in its aforesaid order dated 7th December, 2018 has the propensity to ensure speedy disposal of MACT cases. Likewise, Operative Documents of 21 Banks which have implemented Annuity Deposit Scheme can ensure that compensation is delivered to the persons for whom it is meant. It has the element of annuity payments as well. There is, therefore, a need to implement the MACAD Scheme by the Claims Tribunals in the entire country. We direct accordingly. We also direct 21 banks to implement its operative documents on All India basis."***

It means the MACAD Scheme and MCTAP have been approved by the Supreme Court for implementation throughout the country. After approving the above scheme and procedure, Supreme Court further issued following directions/recommendations for their implementation :

(a) We impress upon the Government to also consider the feasibility of enacting Indian Mediation Act to take care of various aspects of mediation in general.

(b) The Government may examine the feasibility of setting up MAMA by making necessary amendments in the Motor Vehicles Act. For this purpose, it can consider the two flow charts given by the appellant.

(c) In the interregnum, NALSA is directed to set up Motor Accident Mediation Cell which can function independently under the aegis of NALSA or can be handed over to MCPC. Such a project should be prepared within a period of two months and it should start functioning immediately thereafter at various levels as suggested in this judgment. We reiterate the directions contained in order dated November 6, 2017 in ***Jai Prakash's*** case (supra) for implementation of the latest Modified Claims Tribunal Agreed Procedure. For ensuring such implementation, NALSA is directed to take up the same in coordination and cooperation with various High Courts. MACAD Scheme shall be implemented by all Claim Tribunals on All India basis. 21 Banks, Members of Indian Banks Association, who had taken decision to implement MACAD Scheme would do the same on All India basis.

(d) We impress upon the Government to look into the feasibility of framing necessary schemes and for the availability of annuity certificates. This exercise may be done within the period of six months and decision be taken thereupon.

(e) Likewise, we direct that there should be programmes from time to time, in all State Judicial Academies, for sensitizing the Presiding Officers of the Claims Tribunals, Senior Police Officers of the State Police as well as Insurance Company for the implementation of the said Procedure.

The MCTAP alongwith different forms is reproduced below for ready reference of Judges delaing cases under the Act.

MODIFIED CLAIMS TRIBUNAL AGREED PROCEDURE

[As approved by Delhi High Court vide order dated 07.12.2018 and the Supreme Court by judgment dated 05.03.2019]

S.No. CONTENTS

1. Investigation of road accident cases by the Police
2. Intimation of accident to the Claims Tribunal and Insurance Company within 48 hours
3. Documents to be collected by the Investigating Officer
4. Verification of the documents by the Investigating Officer

5. Duty of the registration authority to verify the documents within 15 days of the application
6. Duty of the hospital to issue MLC and Post-mortem Report within15 days of the accident
7. In case of un-insured vehicle, driver and owner of the offending vehicle to be prosecuted under Section 196 of Motor Vehicles Act, 1988
8. In case of fake driving licence, the driver and other persons involved to be prosecuted for holding a fake driving licence
9. Un-insured vehicle not to be released to the owner
10. Duty of the police to complete the investigation of the criminal case and file the chargesheet (Report under Section 173 Cr.P.C.) before the Metropolitan Magistrate and to file DAR along with copy of the chargesheet before the Claims Tribunal within 30 days
11. Copy of DAR to be furnished to claimant(s), owner/driver of the offending vehicle(s), Insurance Company and Delhi State Legal Services Authority
12. Extension of time to file DAR and Report under Section 173, Cr.P.C.
13. Investigating Officer to seek necessary directions from the Claims Tribunal
14. Examination of DAR by the Claims Tribunal
15. Duty of the Investigating Officer to produce the driver(s), owner(s), claimant(s) and eye witness(es) before the Claims Tribunal
16. Duties of Police shall be construed to be part of State Police Act
17. Claims Tribunal shall treat DAR as a claim petition for compensation under Section 166(4) of Motor Vehicles Act, 1988
18. Direction to the claimant(s) to open savings bank account near the place of their residence in a nationalized bank.
19. In cases of charge of rash and negligent driving, the Claims Tribunal shall register the case under Section 166 of Motor Vehicles Act, 1988
20. Duty of the Insurance Companies to appoint a Designated Officer within 10 days of the receipt of the copy of DAR
21. Duty of the Insurance Companies to appoint a Nodal Officer and intimate the Delhi Police.
22. Duty of the Insurance Companies to get DAR verified by their Surveyor/ Investigator
23. Duty of Insurance Companies to process DAR and submit an offer for settlement within 30 days

24. Consent award to be passed where claimant(s) accepts the offer of Insurance Company
25. Claimant(s) to respond to the offer of the Insurance Company within 30 days
26. Guidelines for assessment of functional disability of the claimant in Injury Cases
27. Duty of the Claims Tribunal to elicit the truth
28. In case of non-settlement, the Claims Tribunal shall conduct an enquiry and pass an award within 30 days
29. Examination of the claimant(s) before passing of the award
30. Deposit of the award amount
31. Disbursement of the award amount
32. Protection of the award amount
33. Claims Tribunal shall deal with the compliance of the provisions in the award
34. Claims Tribunal shall fix a date for reporting compliance
35. Copy of the DAR as well as the Award to be sent to the concerned Metropolitan Magistrate
36. Copy of the award to be sent to the Delhi State Legal Services Authority
37. Written Submissions to be filed by the parties before the Claims Tribunals
38. Record of awards of the Claims Tribunal

Form No.	**FORMS**
FORM - I	Intimation of the Road Accident by the Investigating Officer to the Claims Tribunal and the Insurance Company
FORM - II	Detailed Accident Report (DAR)
FORM - III	Report of the Designated officer of the Insurance Company
FORM - IVA	Summary of computation of award amount in death cases to be incorporated in the award
FORM - IVB	Summary of the computation of award amount in injury cases to be incorporated in the award
FORM - V	Compliance of the provisions of the MCTAP to be mentioned in the award
FORM - VIA	Format of written submissions to be filed by the parties in death cases

FORM - VIB	Format of written submissions to be filed by the parties in injury cases
FORM - VII	Format of record of awards to be maintained by the Claims Tribunal
FORM - VIIA	Format of monthly compliance report to be send by the Claims Tribunal in death cases
FORM - VIIB	Format of monthly compliance report to be send by the Claims Tribunal in injury cases
FORM - VIII	Motor Accident Claims Annuity Deposit (MACAD) SCHEME

1. Investigation of road accident cases by the Police

Immediately on receipt of the information of a road accident, the Investigating Officer of Police shall inspect the site of accident, take photographs of scene of the accident and the vehicle(s) involved in the accident and prepare a site plan, drawn to scale, as to indicate the layout and width, etc., of the road(s) or place (s), as the case may be, the position of vehicle(s), and person(s) involved, and such other facts as may be relevant. In injury cases, the Investigating Officer shall also take the photographs of the injured in the hospital. The Investigating Officer shall conduct spot enquiry by examining the eyewitnesses/bystanders.

2. Intimation of accident to the Claims Tribunal and Insurance Company within 48 hours

The Investigating Officer shall intimate the accident to the Claims Tribunal within 48 hours of the accident. If the particulars of insurance policy are available, the intimation of the accident shall also be given to the Nodal Officer of the concerned Insurance Company of the offending vehicle. The particulars of the accident shall also be uploaded on the website of Delhi Police. The intimation by the Investigating Officer shall be in ***FORM-I.***

3. Documents to be collected by the Investigating Officer

The Investigating Officer of Police shall collect the relevant evidence relating to the accident as well as for computation of compensation. The list of documents to be collected by the Investigating Officer are as under:

(i) First Information Report
(ii) Site plan
(iii) Photographs of the scene of accident from all angles.
(iv) Photographs of all the vehicles involved in the accident from all angles
(v) Photograph and specimen signature of the driver(s) of the offending vehicle(s)

(vi) Photograph and specimen signature of the owner(s) of the offending vehicle(s)
(vii) Mechanical Inspection Report in terms of Annexure-A
(viii) Driving license of the driver of the offending vehicle(s)
(ix) Proof of employment of the driver of offending vehicle(s) such as appointment letter, salary slips, duty register etc.
(x) Registration certificate of the offending vehicle(s)
(xi) In case of transfer of offending vehicle, sale documents, possession letter or any other document relating to transfer, if any
(xii) Insurance Policy of the offending vehicle(s)
(xiii) Permit (for commercial vehicle)
(xiv) Fitness Certificate (for commercial vehicle)
(xv) Report under Section 173 Cr.P.C.
(xvi) Statements of the witnesses recorded by the police
(xvii) Scientific report, if the driver(s) of the offending vehicle(s) was under the influence of alcohol/drugs
(xviii) In case of Death:
    (a) Post Mortem Report
    (b) Death certificate
    (c) Photograph and proof of the identity of the deceased
    (d) Proof of age of the deceased which may be in form of:
        - Birth certificate
        - School certificate
        - Certificate from Gram Panchayat (in case of illiterate)
    (e) Proof of Occupation and income of the deceased which may be in form of:
        - Pay slip/salary certificate for salaried employees.
        - Bank statements of the last six months.
        - Income Tax Returns
        - Balance Sheets
    (f) Proof of the legal representatives of the deceased
        - Names
        - Age
        - Address
        - Relationship

(g) Aadhaar card, PAN Card, Photographs and specimen signatures attested by the bank

(h) Bank Account details along with its IFSC Code of the legalrepresentatives of the deceased near the place of their permanent residence with name and address of the bank

(i) Medical treatment record, medical bills and other expenditure

(j) Any other relevant document(s)

(xix) In case of Injury:

(a) MLC

(b) Multi angle photographs of the injured

(c) Aadhaar card, PAN Card, Photographs and specimen signatures of the injured attested by the bank

(d) Bank Account details along with its IFSC Code of the injured near the place of his/her permanent residence with name and address of the bank

(e) Proof of age of the injured which may be in form of:

- Birth certificate
- School certificate
- Certificate from Gram Panchayat (in case of illiterate)

(f) Proof of occupational income of the injured at the time of the accident which may be in form of:

- Pay slip/salary certificate for salaried employees.
- Bank statements of the last six months of the injured.
- Income Tax Returns
- Balance Sheets

(g) Medical treatment record, medical bills and other expenditure - In case of continuous medical treatment, the SHO/IO shall also record the details so that the claimant may furnish documents before the Claims Tribunal.

(h) Disability Certificate

(i) Proof of absence from work where loss of income on account of injury is being claimed, which may be in the form of:

- Certificate from the employer
- Extracts from the attendance register

(j) Proof of reimbursement of medical expenses by employer or under a Mediclaim policy, if any

(k) Any other relevant document(s)

4. **Verification of the documents by the Investigating Officer**

The Investigating Officer shall verify the authenticity of the documents mentioned in Para 3 by obtaining confirmation in writing from the office or authority or person purporting to have issued the same or by such further investigation or verification as may be deemed necessary for arriving at a conclusion regarding the authenticity of the documents in question, including but not limited to verifying the license of the driver, permit and fitness of the offending vehicle(s), where applicable, from the registering authority.

5. **Duty of the registration authority to verify the documents within 15 days of the application**

The Registration authority shall verify the registration certificate, driving licence, fitness and permit in respect of the offending vehicle(s) within 15 days of the application being made by the Investigating Officer.

6. **Duty of the hospital to issue MLC and Post-mortem Report within 15 days of the accident**

The concerned hospital shall issue the MLC and Post-Mortem Report to the Investigating Officer within 15 days of the accident.

7. **In case of un-insured vehicle, driver and owner of the offending vehicle to be prosecuted under Section 196 of Motor VehiclesAct, 1988**

In case of un-insured offending vehicle, the Investigating Officer shall prosecute the person(s) liable for violation under Section 196 of the Motor Vehicles Act, including the driver and the person who caused or allowed the un-insured vehicle to be driven.

8. **In case of fake driving licence, the driver and other persons involved to be prosecuted for holding a fake driving licence**

If the driving licence of the driver is found to be fake, the Investigating Officer shall prosecute the driver for holding a fake driving licence and/or other persons involved in forging a fake driving licence.

9. **Un-insured vehicle not to be released to the owner**

If the offending vehicle is not covered by the policy of insurance against third party risks or the driver was not holding a valid driving licence or if the registered owner fails to furnish copy of the insurance policy or the driving licence of the driver, the vehicle involved in the accident resulting in death or bodily injury or damage to property shall not be released, unless and until the registered owner furnishes sufficient security to the satisfaction of the Court to pay compensation that may be awarded in a claim case arising out of such accident. On expiry of three months of the vehicle being taken in possession by the Investigating Officer, such vehicle shall be sold off in public auction by the Magistrate having jurisdiction over the area where accident occurred and proceeds thereof shall be deposited with the

concerned Claims Tribunal within 15 days for the purpose of satisfying the compensation that may have been awarded, or may be awarded in a claim case arising out of such accident.

10. **Duty of the police to complete the investigation of the criminal case and file the chargesheet (Report under Section 173 Cr.P.C.) before the Metropolitan Magistrate and to file DAR along with copy of the chargesheet before the Claims Tribunal within 30 days**

    The Investigating Officer shall complete the collection of the aforesaid documents and its verification as well as investigation of the criminal case within 30 days of the accident. The Investigating Officer shall file the report under Section 173 Cr.P.C. before the concerned Magistrate and Detailed Accidental Report (DAR) before the Claims Tribunal within 30 days of the accident. The DAR shall be properly indexed and page numbered at the time of filing with the Claims Tribunal. The DAR shall be accompanied with the requisite documents mentioned in Para 3 above. The DAR shall be in FORM-II.

11. **Copy of DAR to be furnished to claimant(s), owner/driver of the offending vehicle(s), Insurance Company and Delhi State Legal Services Authority**

    The Investigating Officer shall furnish the copy of the DAR tovictim(s)/claimant(s) of the accident, owner/driver of the offending vehicle and the Nodal Officer of the Insurance Company. Copy of the DAR sent to the Insurance Company and others shall be properly paginated and shall be accompanied by an index.

    The Investigating Officer of the Police shall also furnish a copy of Detailed Accident Report (DAR) along with complete documents to Secretary, Delhi State Legal Services Authority, Central Office, Pre-Fab Building, Patiala House Courts, New Delhi. Delhi State Legal Services Authority shall examine each case and assist the Claims Tribunal in determination of the just compensation payable to the claimant(s) in accordance with law.

12. **Extension of time to file DAR and Report under Section 173, Cr.P.C.**

    Where the Investigating Officer is unable to complete the investigation of the case within 30 days for reasons beyond his control, such as cases of hit and run accidents; cases where the parties reside outside the jurisdiction of the Court; where the driving licence is issued outside the jurisdiction of the Court, or where the victim(s) has suffered grievous injuries and is undergoing continuous treatment, the Investigating Officer shall approach the Claims Tribunal for extension of time to file DAR/Report under Section 173 Cr.P.C. whereupon the Claims Tribunal shall extend the time as it considers appropriate in the facts and circumstances of each case.

13. **Investigating Officer to seek necessary directions from the Claims Tribunal**
In the event of failure of the driver(s), owner(s), Insurance Company and/or claimant(s) to disclose any relevant information and documents necessary to complete the DAR, the Investigating Officer shall seek necessary directions from the Claims Tribunal (reference be made to Part X of FORM-II) whereupon the Claims Tribunal shall, in appropriate cases, direct the parties in default to disclose the relevant information on an affidavit along with the original documents within 15 days.

14. **Examination of DAR by the Claims Tribunal**
The Claims Tribunal shall examine whether the DAR is complete in all respects. If the DAR is complete in all respects, the Claims Tribunal shall fix a date for appearance of the driver(s), owner(s), claimant(s) and the eye witness(es) and the Investigating Officer shall produce them on the date so fixed. The Investigating Officer shall also intimate the date so fixed by the Claims Tribunal to the Nodal Officer of the Insurance Company and the Insurance Company shall enter appearance on the date so fixed. If the DAR is not complete, the Claims Tribunal shall direct the Investigating Officer to complete the same and shall fix a date for the said completion.

15. **Duty of the Investigating Officer to produce the driver(s), owner(s), claimant(s) and eye witness(es) before the Claims Tribunal**
The Investigating Officer shall produce the driver(s), owner(s), claimant(s) and the eye witness(es) before the Claims Tribunal, after the order of the Claims Tribunal that the DAR is complete in all respects. However, if the Investigating Officer is unable to produce the owner(s), driver(s), clamant(s) and eye-witness(es) before the Claims Tribunal on the date fixed by the Claims Tribunal for reasons beyond its control, the Claims Tribunal shall issue notice to them to be served through the Investigating Officer for a date for appearance not later than 30 days. The Investigating Officer shall give an advance notice to the Nodal Officer of the concerned Insurance Company about the date of filing of the DAR before the Claims Tribunal so that the nominated counsel for the Insurance Company can remain present on the first date of hearing before the Claims Tribunal.

16. **Duties of Police shall be construed to be part of State Police Act**
The duties of police enumerated above shall be construed as if they are included in the respective State Police Act and any breach thereof shall entail consequences envisaged in that law.

17. **Claims Tribunal shall treat DAR as a claim petition for compensation under Section 166(4) of Motor Vehicles Act, 1988**
The Claims Tribunal shall treat the DAR filed by the Investigating Officer as a claim petition under Section 166(4) of the Motor Vehicles Act, 1988.

However, where the Investigating Officer is unable to produce the claimant(s) on the first date of hearing, the Claims Tribunal shall initially register the DAR as a Miscellaneous Application which shall be registered as a claim petition after the appearance of the claimant(s). Where the claimant(s) have filed a separate claim petition, the DAR shall be tagged along with the claim petition. In cases where the charge sheet has not been filed at the time of filing of the DAR, the Claims Tribunal shall either await the filing of the charge sheet or record the statement of the eye witness(es) to satisfy itself with respect to the negligence before passing the award.

18. **Direction to the claimant(s) to open savings bank account near the place of their residence in a nationalized bank.**

The Claims Tribunal shall direct the claimant(s), on the very first date of their appearance, to open a savings bank account in a nationalized bank near the place of their residence and the concerned bank be directed to not issue any cheque book(s) and/or debit card(s) to the claimant(s) and if the same have already been issued, the bank be directed to cancel the same and make an endorsement on the passbook of the claimant(s) to the effect that no cheque book and/or debit card shall be issued to the claimant(s) without the permission of the Court. The claimant(s) be directed to produce the copy of the order passed by the Claims Tribunal before the concerned bank whereupon the bank be directed to make an endorsement on the passbook. The claimant(s) be directed to produce the passbook with the necessary endorsement as well as Aadhaar Card and PAN Card before the Claims Tribunal.

19. **In cases of charge of rash and negligent driving, the Claims Tribunal shall register the case under Section 166 of Motor Vehicles Act, 1988**

Where the Claims Tribunal finds that the DAR and in particular the report under Section 173 Cr.P.C. annexed to the DAR has brought a charge of rash and negligent driving, the Claims Tribunal shall register the claim case under Section 166 of the Motor Vehicles Act, 1988. However, in cases where the DAR does not bring a charge of negligence or the claimant(s) chose to claim compensation on No-fault basis despite the charge of negligence, the Claims Tribunal shall register the claim case under Section 163A of the Motor Vehicles Act, 1988.

20. **Duty of the Insurance Companies to appoint a Designated Officer within 10 days of the receipt of the copy of DAR**

Upon receipt of copy of the DAR, the Insurance Company shall appoint a Designated Officer for that case within 10 days of the receipt of the copy of DAR. The Designated Officer shall be responsible for dealing/processing of that case and to pass a reasoned decision in writing with respect to the compensation payable to the claimant(s) in accordance with law.

21. **Duty of the Insurance Companies to appoint a Nodal Officer and intimate the Delhi Police.**

All the insurance companies shall appoint a Nodal Officer and intimate the name, address, phone numbers/mobile numbers and e-mail address of their Nodal Officer to DCP/CRO, Police Headquarters, Delhi Police who shall instruct all the Investigating Officers of Delhi Police dealing with the investigation of motor accident claims to send the intimation of the road accident(s) in FORM-I and DAR in FORM-II of MCTAP by e-mail to the Nodal Officer of the concerned Insurance Company.

22. **Duty of the Insurance Companies to get DAR verified by their Surveyor/Investigator**

The Insurance Companies are duty bound to verify the correctness/genuineness of every claim. The Insurance Companies shall direct their own officer(s) or appoint an investigator or surveyor to verify the accident within 20 days of the receipt of the copy of the DAR from the Investigating Officer. For example, in cases where the Insurance Companies receive the information of an accident relating to death within 48 hours, of the accident, a prompt visit by the officer/investigator/surveyor of the Insurance Company at the place of occurrence, cremation and residence of the deceased to verify the relevant facts and examine the documents at that time, would leave no scope for manipulation of the evidence at a later stage. Similarly, in the Injury Cases, the Insurance Company's officer/surveyor/investigator visit to the hospital at the initial stage would be helpful to verify the relevant documents.

The Designated Officer shall submit the report of the surveyor/investigator supported by an affidavit before the Claims Tribunal. If the statements made in the DAR are found to be incorrect, the Designated Officer shall send the copy of the report of the surveyor/investigator to the DCP concerned.

23. **Duty of Insurance Companies to process DAR and submit an offer for settlement within 30 days**

The Insurance Company shall examine the DAR and take a decision as to the quantum of compensation payable to the claimant(s) in accordance with law within 30 days of the date of receipt of the copy of DAR from the Investigating Officer. The decision taken by the Designated Officer of the Insurance Company shall be in writing and it shall be a reasoned decision. The report of the Designated Officer of the Insurance Company shall be in FORM - III.

24. **Consent award to be passed where claimant(s) accepts the offer of Insurance Company**

The compensation assessed by the Designated Officer of the Insurance Company shall constitute a legal offer to the claimant(s) and if the said amount is fair and acceptable to the claimant(s), the Claims Tribunal shall pass a consent award and shall provide 30 days time to the Insurance

Company to make the payment of the award amount. However, before passing the consent award, the Claims Tribunal shall ensure that the claimant(s) are awarded just compensation in accordance with law. The Claims Tribunal shall also pass an order with respect to the disbursement of the shares of the claimant(s).

25. Claimant(s) to respond to the offer of the Insurance Company within 30 days

If the claimant(s) are not in a position to immediately respond to the offer of the Insurance Company, the Claims Tribunal shall grant them time not later than 30 days to respond to the said offer.

26. Guidelines for assessment of functional disability of the claimant in Injury Cases

26.1. All injuries or permanent disability arising from injuries do not result in loss of earning capacity.

26.2. The percentage of permanent disability with reference to the whole body of a person should not be mechanically assumed to be equal to the percentage of loss of earning capacity. The percentage of loss of earning capacity is not the same as the percentage of permanent disability (except in cases, where the Tribunal on the basis of evidence, concludes that percentage of loss of earning capacity is the same as percentage of permanent disability).

26.3. The doctor, who treated or examined the injured-claimant and subsequently assessed the permanent disability, can give evidence of his medical opinion with regard to the extent of permanent disability. However, the percentage of loss of earning capacity is to be assessed by the Claims Tribunal taking in consideration various other factors as mentioned below.

26.4. The same percentage of permanent disability may result in different percentage of loss of earning capacity in different persons, depending upon the nature of profession, occupation or job, age, education and other relevant factors.

26.5. Ascertainment of the effect of the percentage of permanent disability on the actual earning capacity (percentage of loss of earning capacity) involves three steps:

(i) The Tribunal has to first ascertain what activities the claimant could carry on in spite of the permanent disability and what he could not do as a result of the permanent disability (this is also relevant for awarding compensation under the head of loss of amenities of life).

(ii) The second step is to ascertain his avocation, profession and nature of work before the accident, as also his age.

(iii) The third step is to find out whether:
   a) The claimant is totally disabled from earning any kind of livelihood, or
   b) Whether in spite of the permanent disability, the claimant could still effectively carry on the activities and functions, which he was earlier carrying on, or
   c) Whether he was prevented or restricted from discharging his previous activities and functions, but could carry on some other or lesser scale of activities and functions so that he continues to earn or can continue to earn his livelihood.

26.6. The Claims Tribunal may consider co-opting or taking the opinion of a medical expert from any Government Hospital for taking assistance in assessing the functional disability. However, cases in which medical expert is co-opted, should be taken up by a Claims Tribunal at a designated time so that the doctor is not made to wait. The proceedings for assessment of the functional disability of the claimant with the assistance of a medical expert should preferably be conducted in camera and counsel for insurance company and authorised representative of the insurance company be permitted to remain present.

26.7. The photographs of the injured portion should be taken on record in every injury case and a reasoned finding should be recorded in respect of the functional disability in terms of the principles laid down by the Supreme Court in Raj Kumar v. Ajay Kumar, (2011) 1 SCC 343.

26.8. The photographs of the injured portion of the claimant should be annexed to the award to enable the Appellate Court to peruse the same in the event of the award being challenged. However, the photographs should not be uploaded on the website of the Court.

26.9. In MAC. APP. 1134/2017, this Court formed a Committee to frame guidelines for fixing the cost of artificial limbs for the victims of motor accidents. On 07th September, 2018 a list of cost of prosthetic limbs was prepared by the Committee was submitted to this Court which has been circulated to the Claims Tribunals vide order dated 07th September, 2018. The Claims Tribunal shall consider the same while awarding the cost of prosthetic limbs.

27. Duty of the Claims Tribunal to elicit the truth

Before passing the award on the basis of the DAR, the Claims Tribunal shall satisfy itself that the statements made in the DAR are true. DAR is merely an opinion of the Investigating Officer and is not to be treated as legal evidence. The DAR has to be considered like a charge sheet under Section 173 Cr.P.C. and the Claims Tribunal is duty bound to examine the DAR and satisfy itself with respect to the genuineness of the claim as well

as all the relevant facts. For example, in death case(s), the Claims Tribunal shall direct the claimant(s) to produce the original documents relating to age, occupation and income of the deceased from the legal representatives and an appropriate award shall be passed after the satisfaction of Claims Tribunal with respect to all the relevant facts. Similarly, in an injury case(s), the Claims Tribunal shall examine the injured and the relevant medical records to satisfy itself with respect to the nature of the injuries and percentage of the functional disability of the injured. The Claims Tribunal may also consider examining the parties under Section 165 of the Evidence Act. Reference be made to the judgement of this Court Ved Prakash Kharbanda v. Vimal Bindal, 198 (2013) DLT 555 for scope of Section 165 of the Evidence Act.

28. In case of non-settlement, the Claims Tribunal shall conduct an enquiry and pass an award within 30 days

If the offer of the Insurance Company is not fair or is not acceptable to the claimant(s) or if the Insurance Company has any defence available to it under law, the Claims Tribunal shall proceed to conduct an inquiry under Sections 168 and 169 of the Motor Vehicles Act, 1988 and shall pass an award within a period of 30 days thereafter. The Claims Tribunal shall follow the principles laid down in Mayur Arora v. Amit, 2011 (1) TAC 878.

29. Examination of the claimant(s) before passing of the award

(i) The Claims Tribunal shall, before or at the time of passing of the award, examine the claimant(s) to ascertain their financial condition/needs, mode of disbursement and amount to be kept in fixed deposits.

(ii) The Claims Tribunal shall take on record the following documents from the claimant(s):
   (a) Aadhaar Card and PAN Card;
   (b) Details of the Bank Account(s) of the Claimant(s) near the place of their residence; and
   (c) Two sets of photographs and specimen signatures of the claimant(s).

(iii) Before disbursement of the award amount, the Claims Tribunal shall satisfy that the savings bank account(s) of the claimant(s) is near the place of their permanent residence and an endorsement has been made by the bank on the passbook of the claimant(s) to the effect that no cheque book(s) and/or debit card(s) shall be issued to the claimant(s) without prior permission of the Claims Tribunal. If the claimant(s) bank account is not near the place of their permanent residence, the Claims Tribunal shall defer the disbursement of award amount till passbook(s) of savings bank account(s) of the claimant(s) in a nationalized bank near the place of their permanent residence is not produced along with necessary endorsement.

30. Deposit of the award amount

In the award, the Claims Tribunal shall specifically direct the Insurance Company and/or the owner/driver, as the case may be, to deposit the award amount or transfer the same by RTGS/NEFT/IMPS directly to the bank account of the Claims Tribunal.

The respondent held liable to pay compensation by the Claims Tribunal shall give notice of deposit of the compensation amount to the claimant(s) and shall file a compliance report with the Claims Tribunal with respect to the deposit of the compensation amount within 15 days of the deposit with the interest upto the date of notice of deposit to the claimant(s) with a copy to their counsel within 30 days of the award. The names and addresses of the claimant(s) and their counsel for issuance of notice of deposit shall be mentioned in the award.

At the time of passing of the award, the Claims Tribunal shall examine whether the claimant(s) are entitled to exemption of deduction of TDS and if so, the claimant(s) shall submit Form 15G or Form 15H (for senior citizen) to the Insurance Company so that no TDS is deducted. The Claims Tribunal shall record a finding on this aspect at the time of passing of the award.

31. Disbursement of the award amount

The Claims Tribunal shall disburse the award amount through Motor Accident Claims Tribunal Annuity Deposit (MACAD) Scheme formulated by this Court vide order dated 01st May, 2018 in FAO 842/2003. Copy of the Motor Accident Claims Tribunal Annuity Deposit (MACAD) Scheme is FORM - VIII. The following 21 Banks are implementing the MACAD Scheme. The names of the Bank implementing MACAD Scheme are as under:—

1. State Bank of India
2. Punjab National Bank
3. UCO Bank
4. Bank of Baroda
5. Allahabad Bank
6. Oriental Bank of Commerce
7. IDBI Bank
8. Indian Overseas Bank
9. Andhra Bank
10. Bank of India
11. Punjab & Sind Bank
12. Bank of Maharashtra
13. Canara Bank

14. Central Bank of India
15. Syndicate Bank
16. Corporation Bank
17. Dena Bank
18. Union Bank of India
19. United Bank of India
20. Indian Bank
21. Vijaya Bank

List of Banks along with the name of their Nodal Officer and their email address shall be submitted by Indian Bank Association to the Registrar General of this Court within four weeks whereupon the Registrar General shall circulate the same to all the Claims Tribunals.

32. Protection of the award amount

The Claims Tribunal shall, depending upon the financial status and financial need of the claimant(s), release such amount as may be considered necessary and direct the remaining amount to be kept in fixed deposits in a phased manner (for example, if a sum of Rs. 5,50,000/- has been awarded to the claimant(s), Rs. 50,000/- may be released immediately and the remaining amount of Rs. 5,00,000/- may be kept in 50 fixed deposits of Rs. 10,000/- each, in the name of the claimant(s), for the period of one month to 50 months respectively, with cumulative interest). The Claims Tribunal shall impose the following conditions with respect to the fixed deposits:—

(a) The Bank shall not permit any joint name(s) to be added in the savings bank account or fixed deposit accounts of the claimant(s) i.e. the savings bank account(s) of the claimant(s) shall be an individual savings bank account(s) and not a joint account(s).

(b) The original fixed deposit shall be retained by the bank in safe custody. However, the statement containing FDR number, FDR amount, date of maturity and maturity amount shall be furnished by bank to the claimant(s).

(c) The monthly interest be credited by Electronic Clearing System (ECS) in the savings bank account of the claimant(s) near the place of their residence.

(d) The maturity amounts of the FDR(s) be credited by Electronic Clearing System (ECS) in the savings bank account of the claimant(s) near the place of their residence.

(e) No loan, advance, withdrawal or pre-mature discharge be allowed on the fixed deposits without permission of the Court.

(f) The concerned bank shall not to issue any cheque book and/or debit card to claimant(s). However, in case the debit card and/or cheque book have already been issued, bank shall cancel the same before the disbursement of the award amount. The bank shall debit card(s) freeze the account of the claimant(s) so that no debit card be issued in respect of the account of the claimant(s) from any other branch of the bank.

(g) The bank shall make an endorsement on the passbook of the claimant(s) to the effect that no cheque book and/or debit card have been issued and shall not be issued without the permission of the Court and claimant(s) shall produce the passbook with the necessary endorsement before the Court on the next date fixed for compliance.

(h) It is clarified that the endorsement made by the bank along with the duly signed and stamped by the bank official on the passbook(s) of the claimant(s) is sufficient compliance of clause (g) above.

33. Claims Tribunal shall deal with the compliance of the provisions in the award

(i) The Claims Tribunal shall incorporate the summary of computation of compensation in ***FORM - IVA*** in the award of death cases and summary of computation of compensation in ***FORM - IVB*** in the award of injury cases.

(ii) In order to implement the new provisions for payment of compensation to the victim of the road accident within 90 days to 120 days of the accident, in true letter and spirit, the Claims Tribunal shall deal with the compliance of the new provisions in the award, especially as to whether there has been any delay or deficiency on the part of the Investigating Officer of the Police and/or the Designated Officer of the Insurance Company. In the event of any delay or deficiency on the part of the Investigating Officer of the Police, the Claims Tribunal may consider recommending adverse entry to be made in the service record of the concerned officer. In case of delay or deficiency on the part of the Designated Officer of the Insurance Company, the Claims Tribunal may consider recommending adverse entry to be made in the service record of the concerned officer or impose cost/penal interest to be recovered from the salary of the officer in default. The Claims Tribunal shall incorporate the compliance of the provisions of the Modified Claims Tribunal Agreed Procedure in the award in ***FORM-V.***

34. Claims Tribunal shall fix a date for reporting compliance

(i) The Claims Tribunal shall fix a date for reporting compliance in the award itself. The Claims Tribunal shall also direct the Insurance Company and/or driver or owner to place on record the proof of deposit of the compensation amount with upto date interest, the notice of deposit and the calculation of interest on the date so fixed. Upon

such proof being filed, the Claims Tribunal shall ensure that the interest upto the date of notice of deposit has been deposited by the party concerned.

(ii) If the award amount is not deposited within the stipulated period, the Claims Tribunal shall attach the bank account of the Insurance Company after 90 days of the award in terms of principles laid down in New India Assurance Company Ltd. v. Kashmiri Lal, (2005) 125 DLT 571.

(iii) If the award of the Claims Tribunal is stayed by the High Court in appeal, the Claims Tribunal shall close the matter with liberty to the claimant(s) to revive it after the decision of the appeal.

35. Copy of the DAR as well as the Award to be sent to the concerned Metropolitan Magistrate

(i) The Investigating Officer shall submit a copy of the DAR before the concerned Metropolitan Magistrate within one week of submitting the same before the Claims Tribunal. The Investigating Officer shall also submit the copy of the award passed by the Claims Tribunal before the concerned Metropolitan Magistrate within one week of the passing of the award.

(ii) The Claims Tribunal shall also send a certified copy of the award passed by the Claims Tribunal to the concerned Metropolitan Magistrate.

36. Copy of the award to be sent to the Delhi State Legal Services Authority

The Claims Tribunal shall send a certified copy of the award to the Delhi State Legal Services Authority. In the event of delay in passing of the award caused due to delay or deficiency on the part of the Investigating Officer or the Designated Officer of the Insurance Company, the Delhi State Legal Services Authority shall take up the matter with the Police and/or Insurance Company, as the case may be.

37. Written submissions to be filed by the parties before the Claims Tribunals

The formats of the written submissions to be filed by the parties before the Claims Tribunals are attached to Modified Claims Tribunal Agreed Procedure as FORM-VIA or FORM-VIB, as the case may be.

38. Record of awards of the Claims Tribunal

The record of the awards passed by the Claims Tribunals shall be maintained in a chronological order according to the date of the award in such a manner that it is easy for the litigants/lawyers to ascertain whether the compensation has been received or not. The format of the record of the awards shall be in FORM-VII. The Claims Tribunals shall send the monthly compliance report to the Registrar General of this Court in FORM-VIIA and FORM-VIIB.

FORMS
FORM-I
INTIMATION OF THE ROAD ACCIDENT BY THE INVESTIGATING OFFICER TO THE CLAIMS TRIBUNAL AND THE INSURANCE COMPANY

1.	FIR No., date and under Section	
2.	Name of the Police Station	
3.	Date, time and place of the accident	
4.	Source of Information (Name, Address & Tel. No.) (a) Driver/Owner (b) Victim (c) Witness (d) Hospital/Medical Facility	
5.	Nature of the accident: (a) Whether resulted in death or injury or both? (b) Number of persons injured/died (c) In case of Injuries, whether simple or grevious?	
6.	Name and address of the injured/deceased	
7.	Details of the hospital where the victim(s) has been taken	
8.	Registration of the vehicle(s) involved in the accident	
9.	Name, address and contact no. of the owner of the offending vehicle(s)	
10.	Name, address and contact no. of the driver of the offending vehicle(s)	
11.	Insurance Policy Number of the offending vehicle(s)	
12.	Period of Insurance Policy of the offending vehicle(s)	
13.	Name and address of the Insurance Company of the offending vehicle(s)	
14.	Name and contact no. of the Investigating Officer	

S.H.O./I.O. .....
P.S. .....
Date.....

Enclosed- Copy of the FIR

FORM-II
DETAILED ACCIDENT REPORT (DAR)
PART - I
PARTICULARS OF THE ACCIDENT

1.	FIR No., date and under Section	
2.	Name of the Police Station	
3.	Offences as per report under Section 173 CrPC	
4.	Date, time and place of accident	
5.	Who reported the accident to the Police?(Give name, address & contact no.) (a) Driver/Owner (b) Victim (c) Witness (d) Hospital/Medical facility	
6.	Name of the person who took the victim to the hospital, name of the hospital and at what time	
7.	Whether any hospital denied treatment to the victim?	
8.	Nature of the accident: (a) Whether resulted in death or injury or both? (b) Number of persons injured/died	
9.	Particulars of the offending vehicle(s)	
10.	Number of persons in the offending vehicle(s)	
11.	Whether the victim was: (a) Pedestrian/bystander (b) Cyclist (c) Scooterist (d) Travelling in a vehicle If so whether at driving seat, back seat, front seat, side car, travelling at rear guard cargo area, etc. (e) Victim's vehicle no. (f) No. of persons in the victim's vehicle	

12.	Name and contact no. of the Investigating Officer	
13.	Names of witness(es) of the accident	
14.	Brief description of the accident	
15.	Date of preparation of the site plan	
16.	**Site Plan shall indicate:** (i) Place of accident (ii) Position of vehicle(s) (iii) Position of victim(s) (iv) Skid marks (v) Road - Whether one way or two way (vi) Lane in which the accident took place (vii) Permissible speed limit on the road at the site of the accident (viii) Whether presence of police officer, road markings, warning sign, stop sign were there? (ix) Location of zebra crossing or pedestrian zone (x) Whether near traffic lights? If so, whether functional? (xi) Distance of speed breakers, if any, from the spot of accident (xii) Width and type of road - national highway/city road/expressway/rural road, etc. (xiii) Direction of the vehicle(s): (a) Same direction (rear end) (b) Same direction (side swipe) (c) Right angle (d) Opposite direction (angular) (e) Opposite direction side swipe (f) Struck parked vehicle (g) Left turn (h) U-turn reversing.	

	(xiv) Directions of movement of the vehicle(s) (a) North (b) East (c) South (d) West (xv) Road Divided by (a) Barrier Median (b) Curbed Median (c) Grass Median (d) Painted Median (e) None (xvi) Light Condition (a) Daylight (b) Dusk (c) Dark (No Street Lights) (d) Dark (Street Lights On, Spot) (e) Dawn (f) Dark (Street Lights Off) (g) Dark (Street Lights On, Continuous) (xvii) Visibility/Environmental Condition (a) Clear (b) Fog/Smog/Smoke (c) Snow (d) Severe Crosswinds (e) Rain (f) Blowing Sand or Dirt (g) Sun Glare (xviii) Road Character (a) Straight and Level (b) Straight and Grade	

	(c) Straight and Hillcrest (d) Curve and Level (e) Curve and Grade (f) Curve and Hillcrest (g) Under construction/maintenance (xix) Road Surface Type (a) Concrete (b) Blacktop (c) Gravel (d) Steel Grid (e) Dirt (f) Pot Holes (g) Cave in (h) Construction Material on Road (xx) Road Surface Condition (a) Dry (b) Wet (c) Snowy (d) Water (standing/moving) (e) Sand, mud, dirt (f) Oil (xxi) Airbag Deployment (a) Front (b) Side (c) Multiple (d) None (xxii) Ejection from Vehicle (a) Not ejected (b) Ejected (c) Partial Ejection (d) Trapped	

	(xxiii) Temporary Traffic Zone (a) None (b) Construction zone (c) Maintenance Zone (d) Utility Zone(e) Incident Zone (xxiv) Total Number of entities involved in the crash Crash Type: With other motor vehicle as first event: (a) Same Direction (Rear End) (b) Same Direction (Slide Sweep) (c) Right Angle (d) Opposite Direction (Hereon, Angular) (e) Opposite Direction (Slide Sweep) (f) Struck Parked Vehicle (g) Left Turn/U Turn(h) Backing (i) Encroachment With below as first event: (a) Overturn (b) Fixed Object (c) Animal (d) Pedestrian (e) Pedal Cyclist (f) Non-fixed Object (g) Railcar Vehicle	

PART - III
PARTICULARS OF THE DRIVER(S)
(In case of more than one driver, submit separate Part III for each driver)

17.	Name, address and contact no. of the driver	
18.	Age	
19.	Gender	
20.	Education	
21.	Occupation	

22.	Family	
23.	Income (monthly)	
24.	Account No. with name and address of the Bank in which the driver is maintaining his account	
25.	Driving licence: (a) Driving Licence No. (b) Whether learner licence? (c) Period of validity (d) Issued by (e) Class of vehicle (f) Whether licence suspended or cancelled?	
26.	In case of learner's licence: (a) Whether driving under supervision (b) Whether driving with lapsed learner licence	
27.	Whether driver is the owner/paid driver/otherwise?	
28.	Whether driving with the knowledge/consent of the owner?	
29.	Whether driving under influence of alcohol/drugs? Whether finding based on scientific report?	
30.	(a) Whether the driver reported the accident to the police/family of the victim? (b) Whether the driver took the victim to the hospital? (c) Whether the driver visited the victim at the hospital? (d) Whether the driver remained at the spot till arrival of the police? (e) Whether the driver removed the offending vehicle from the spot till the arrival of the police? (f) Whether the driver paid compensation/medical compensation to the victim/his family? (g) Whether the driver co-operated in investigation? (h) Whether the driver suffered injuries in the accident? (i) Whether the driver discharged duty under Section 132 & 134of the MV Act, 1988? If not, whether the driver has been prosecuted under Section 187 MV Act, 1988?	
31.	Whether the driver fled from the spot? If so, the date on which he appeared before the police/Court or was arrested?	
32.	Any other relevant information relating to the driver	

PART - IV
PARTICULARS OF THE OFFENDING VEHICLE (S)

(In case of more than one driver, submit separate Part III for each driver)

33.	(a) Registration No. (b) Colour (c) Make (d) Model (e) Year (f) Engine No. (g) Chasis No. (h) Address of the Registering Authority (i) Private or Commercial (public service vehicle, goods carriage/educational institution bus)	
34.	Name, address, occupation and contact number of the owner: (a) In case of company, person in charge in terms of Section 199 of the MV Act, 1988 (b) In case of sale of the vehicle, give particulars of the purchaser and date of transfer	
35.	In case of commercial vehicle: (a) Particulars of fitness (b) Particulars of permit	
36.	Whether driver employed on monthly or daily basis? Attach the proof of employment of driver such as appointment letter, salary slip, duty register or other relevant documents	
37.	In case the driver fled from the spot, did the owner produce the driver before the police? If so, when? Attach the copy of the notice under Section 133 MV Act, 1988 and its reply.	
38.	Whether the owner reported the accident to the Insurance Company? If so, when?	
39.	Whether the owner co-operated in the investigation?	
40.	(a) Whether the owner discharged his duties under Section 133 and 134 MV Act, 1988? If not, whether the owner prosecuted under Section 187 MV Act, 1988?	

41.	In the case of un-insured vehicle: (a) Whether the owner/driver/person who caused or allowed the un-insured vehicle to be driven prosecuted under Section 196 of the MV Act, 1988? (b) Whether the owner/driver paid any amount to the victim or his family? Give particulars, if available.	

PART -V
PARTICULARS OF THE INSURANCE OF THE VEHICLE(S)

42.	Policy Number	
43.	Issued by (give name and address of the Insurance Company)	
44.	Nature of policy i.e. Third party or comprehensive	
45.	Name, address and contact number of the Designated Officer of the Insurance Company	
46.	Name, address and contact number of the Designated Officer of the Insurance Company	
47.	Date of intimation of the accident by the Investigating Officer to the Insurance Company	
48.	Date of appointment of the Designated Officer by the Insurance Company	
49.	Account no. with name and address of the Bank in which the Insurance company is having its account	

PART - VI
MECHANICAL INSPECTION OF ALL VEHICLES INVOLVED IN THE ACCIDENT

50.	Name and qualification of the Mechanical Officer	
51.	Date of mechanical inspection of the Vehicle(s)	
52	Date of mechanical inspection report(s)	
53.	Whether the mechanical inspection report is in terms of Annexure-A? If not, give reasons thereof.	
54.	Whether any delay in mechanical inspection or submitting report? If yes, give reasons thereof.	

PART - VII
IMPACT OF THE ACCIDENT ON THE VICTIM(S)
(In case of more than one victim, submit separate Part VII for each victim)

	Death Cases: (a) Name and address of the deceased (b) Age (c) Gender (d) Education (e) Occupation (f) Income (monthly) (g) Legal heirs/Guardian: (i) Name (ii) Relationship (iii) Age (iv) Address (v) Contact No.	
	Injury Cases: (a) Name and address of injured (b) Age (c) Gender (d) Education (e) Occupation (f) Income (monthly) (g) Details of family/dependents of the victim. (h) MLC No. (i) Nature of injuries (j) Name of hospital(s) where injured treated? (k) Whether victim refused medical treatment (l) Period of hospitalization(m) Period of treatment (n) Whether treatment continuing (o) Name, address and contact number of the doctor(s) who treated the injured (p) Whether injured underwent any surgery(s)? If so, give particulars. (q) Whether suffered any permanent disability? If yes, give details.	

	(r) Expenditure incurred on treatment, conveyance, special diet, attendant etc. Give details. (s) Whether the injured got reimbursement of medical expenses from his employer or under a mediclaim policy. If yes, give details. (t) Whether the injured provided cashless treatment by the Insurance Company? If yes, give details.	
57.	Any other relevant information	

PART - VIII
APPARENT CONTRIBUTING CIRCUMSTANCES

58.	Driving without valid driving licence	
59.	Driving while disqualified	
60.	Learner driving without supervision	
61.	Vehicle not insured	
62.	Driving a stolen vehicle	
63.	Vehicle taken out without the consent of the owner	
64.	Driving dangerously or at excessive speed	
65.	Under the influence of alcohol or drugs. If yes, give quantity/ parameters/ recovery	
66.	Dangerously loaded vehicle	
67.	Parking on the wrong side of the road	
68.	Parking at prohibited places	
69.	Non-observance of traffic rules	
70.	Poorly maintained vehicle	
71.	Fake/forged driving license	
72.	Previous conviction(s)/past history	
73.	**Driving Aggressively:** a. Jumped red light b. Abrupt braking. c. Neglected to keep to the left of the road	

	d. Driving criss-cross e. Driving too close to the vehicle in front f. Persistent inappropriate attempts to overtake g. Cutting in after overtaking h. Racing/competitive driving i. Crossing speed limit j. Disregarding any warnings k. Driving on the wrong side l. Overtaking where prohibited m. (m)Driving with loud music n. Improper reversing o. Improper passing p. Improper turning q. Driving in no entry hours r. Not slowing down at crossing/road junction s. Turning without indication t. Not respecting stop sign on road surface u. Not respecting right of way to pedestrian v. Using mobile phone while driving	
74.	**<u>Irresponsible behaviour:</u>** (a) Failing to stop after accident (b) Ran away from the spot after leaving the vehicle (c) Destruction or attempt to destroy the evidence. (d) Falsely claiming that one of the victims was responsible for the accident (e) Trying to throw the victim off the bonnet of the vehicle by swerving in order to escape (f) Causing death/injury in the course of dangerous driving post commission of crime or chased by police in an attempt to avoid detection or apprehension. (g) Offence committed while the offender was on bail.	

	(h) Misled the investigation (i) Post accident road rage behaviour. If yes, give details.	
75.	Any other contributing factor	

PART - IX
OTHER OFFENCES COMMITTED AT THE SAME TIME

76.	(a) Sections 3/181-Driving without licence (b) Sections 4/181-Driving by minor (c) Sections 5/181-Allowing unauthorized person to drive (d) Sections 56/192-Without fitness (e) Sections 66(1)/192A - Without permit (f) Sections 112/183(1)- Over speed (g) Sections 113/194-Over loading (h) Sections 119/177-Jumping red light (i) Sections 119/277-Violation of mandatory signs (One way, No right turn, No left turn) (j) Sections 122/177-Improper obstructive parking (k) Sections 146/196 Without insurance (l) Section 177/RRR17(1)- Violation of “One way” (m) Section 177/RRR29-Carrying High/Long Load (n) Section 177/CMVR 138(3) - Not using seat belt (o) Section 177/RRR6-Violation of “No overtaking” (p) Section 177/CMVR 105-Without light after sunset (q) Section 179-Misbehavior with police officer (r) Section 184-Driving dangerously (s) Section 184-Uing mobile phone while driving (t) Section 185-Drunken driving/under influence of drugs (u) Section 187-Violation of Sections 132(1)(c), 133 and 134 (v)Any other offence	

PART - X
DIRECTIONS REQUIRED FROM CLAIMS TRIBUNAL

77.	The driver(s) involved in the accident has not furnished information mentioned in Serial No. ---------- [Serial Nos. 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30 and 41(b) of Part III of FORM-II] and the documents mentioned in Serial No. ---------- [Serial Nos. 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97 of Part XI of FORM-II].The driver(s) may be directed to furnish the requisite information on affidavit along with the original documents before the Claims Tribunal. (Copy of the letter demanding the information/ documents be attached)	
78.	The owner(s) of the vehicles involved in the accident has not furnished the information mentioned in Serial No. -------- [Serial Nos. 34, 35, 36, 38, 40 and 41(b) of Part IV of FORM-II] and has not produced the documents mentioned in Serial No. -------- [Serial Nos. 92, 93, 94, 95, 96 and 97 of Part XI of FORM-II.]The owner(s) may be directed to furnish the requisite information on an affidavit along with the original documents before the Claims Tribunal. (Copy of the letter demanding the information/documents be attached)	
79.	The Insurance Company has failed to disclose information in Serial No. ---------- [Serial Nos. 46, 47, 48, 49 of Part V of FORM-II.]The Insurance Company may be directed to furnish the requisite information on an affidavit along with the original documents before the Claims Tribunal. (Copy of the letter demanding the information/documents be attached)	
80.	The claimant(s) have failed to disclose the information mentioned in Serial No.[Serial Nos. 55 and 56 of Part VII of FORM-II] and furnish the documents mentioned in Serial No.[Serial Nos. 101 and 102 of Part XI of FORM-II.]The claimant(s) may be directed to disclose the requisite information on an affidavit along with the original documents before the Claims Tribunal. (Copy of the letter demanding the information/documents be attached)	
81.	The registration authority have failed to verify documents (registration certificate, driving licence, fitness and permit) within 15 days of the application in terms of Clause 5 of the Modified Claims Tribunal Agreed Procedure and, therefore, necessary directions be issued to the registration authority to produce the same before the Claims Tribunal. (Copy of the letter demanding the information/documents be attached)	

82.	---------- Hospital has failed to issue (MLC/Post Mortem Report) within 15 days of the accident in terms of Clause 6 of the MCTAP and, therefore, the necessary directions be issued to the Hospital to produce the same before the Claims Tribunal. (Copy of the letter demanding the information/documents be attached)	
83.	Specify any other direction that may be necessary.	

PART - XI
RELEVANT DOCUMENTS TO BE ATTACHED

84.	First Information Report	
85.	Site plan in terms of [Serial No. 16 of Part II of FORM-II]	
86.	Photographs of the scene of accident from all angles.	
87.	Photographs of all the vehicles involved in the accident from all angles	
88.	Photograph and admitted signature of the driver(s) of the offending vehicle(s)	
89.	Photograph and specimen signature of the owner(s) of the offending vehicle(s)	
90.	Mechanical Inspection Report in format of Annexure A.	
91.	Driving license of the driver of offending vehicle(s)	
92.	Proof of employment of driver such as appointment letter, salary slips, duty register etc.	
93.	Registration certificate of the offending vehicle(s)	
94.	In case of transfer of vehicle, sale documents, possession letter or any other document relating to transfer, if any	
95.	Insurance Policy of the offending vehicle(s)	
96.	Permit (for commercial vehicle)	
97.	Fitness Certificate (for commercial vehicle)	
98.	Report under Section 173 Cr.P.C.	
99.	Statements of the witnesses recorded by the police	
100.	Scientific report, if the driver was under the influence of liquor/drugs	
101.	**In case of Death** (a) Post Mortem Report (b) Death certificate (c) Photograph and proof of the identity of the deceased (d) Proof of age of the deceased which may be in form of: (i) Birth certificate	

	(ii) School certificate (iii) Certificate from Gram Panchayat (in case of illiterate) (e) Proof of Occupation and income of the deceased which may be in form of: (i) Pay slip/salary certificate for salaried employees (ii) Bank statements of the last six months. (iii) Income Tax Returns (iv) Balance Sheets (f) Proof of the legal representatives of the deceased (i) Names (ii) Age (iii) Address (iv) Relationship (v) Contact no. (g) Photographs, specimen signatures attested by the bank and identity proof of the legal representatives of the deceased (h) Treatment record, medical bills and other expenditure (i) Bank Account no. of the legal representatives of the deceased with name and address of the bank	
102.	**<u>In case of Injury</u>** (a) MLC (b) Multi angle photographs of the injured (c) Photographs, specimen signatures attested by the bank and identity proof of the injured (d) Proof of age of the injured which may be in form of: (i) Birth certificate (ii) School certificate (iii) Certificate from Gram Panchayat (in case of illiterate) (e) Proof of occupational income of the injured at the time of the accident which may be in form of: (i) Pay slip/salary certificate for salaried employees. (ii) Bank statements of the last six months of the deceased. (iii) Income Tax Returns (iv) Balance Sheets	

	(f) Treatment record, medical bills and other expenditure - In case of long term treatment, the SHO/IO shall also record the details so that the claimant may furnish documents before the Claims Tribunal. (g) Disability certificate (h) Proof of absence from work where loss of income on account of injury is being claimed, which may be in the form of: (i) Certificate from the employer (ii) Extracts from the attendance register (i) Proof of reimbursement of medical expenses by employer or under a Mediclaim policy, if taken	
103.	Copy of the letter of the Investigating Officer demanding the relevant information/documents from the driver as mentioned in Serial No. 77 above	
104.	Copy of the letter of the Investigating Officer demanding the relevant information/documents from the owner as mentioned in Serial No. 78 above	
105.	Copy of the letter of the Investigating Officer demanding the relevant information/documents from the Insurance Company as mentioned in Serial No. 79 above	
106.	Copy of the letter of the Investigating Officer demanding the relevant information/documents from the claimant(s) as mentioned in Serial No. 80 above	
107.	Copy of the letter of the Investigating Officer demanding the relevant information/documentsfrom the registration authorities as mentioned in Serial No. 81 above	
108.	Copy of the letter of the Investigating Officer demanding the relevant information/documents from the hospital as mentioned in Serial No. 82 above	
109.	Any other relevant document(s)	

VERIFICATION

Verified at ---------- on this ---------- of ----------, that the contents of the above report are true and correct as per information and documents gathered during investigation.

Station House Officer
(Name and Stamp)
Assistant Commissioner of Police
(Name and Stamp)

ANNEXURE 'A' TO DETAILED ACCIDENT REPORT (DAR)
FORMAT OF THE MECHANICAL INSPECTION REPORT
(Submit separate Mechanical Inspection Report for each vehicle)

	1. Case FIR No. 2. Under Section 3. Police Station 4. Registration No. of the vehicle 5. Make, Model Name, Colour & Type of Vehicle 6. In case of HTV/MGV/LGV (a) Whether Lateral Under Run Protective Device (LUPD) & Rear Under Run Protective Device (RUPD) installed? (For vehicle weighing 3.5 ton or more) (b) Whether speed governor installed & functional or otherwise? 7. In case of commercial vehicle: (a) Particulars of fitness (b) Particulars of permit 8. Point of impact and damage 9. Mechanical condition of the vehicle 10. Paint marks (if any) 11. Condition of braking System i.e. working or not? 12. Whether the vehicle fitted with Anti-lock Braking System (ABS)? (a) If yes, whether it is functioning or not? (b) Whether trials regarding skid marks of ABS fitted vehicle have been carried out to estimate the speed of the vehicle	

	13. Whether vehicle modified by (a) Installing CNG/LPG Kit (b) Change of vehicle body 14. Condition of tyres - whether original or retreaded? 15. Whether horn was installed and functional? 16. Whether the brake lights & other lights functional? 17. Condition of safety bags in the vehicle 18. Whether the vehicle properly maintained 19. Whether the vehicle had faulty number plate? 20. Whether the vehicle had tinted glasses? 21. If the vehicle was educational institution bus, whether the vehicle was fitted with the doors that can be shut and whether the vehicle had a suitable inscription to indicate that they are in the duty of an educational institute, as per the guidelines laid down in ***M.C. Mehta v. Union of India, (1998) 1 SCC 676 and M.C. Mehta v. Union of India, (1999) 1 SCC 413?*** 22. Details of damage on the vehicle Mechanical Officer (Name & Stamp) SHO (Name Date & Stamp)	

FORM-III
REPORT OF THE DESIGNATED OFFICER OF THE INSURANCE COMPANY

(To be filed within 30 days of the receipt of the copy of the DAR from the Investigating Officer)

PART-I
DETAILS OF THE CASE

1.	Date of the accident	
2.	Date of intimation of the accident by the Investigating Officer to the Insurance Company	
3.	Date of receipt of DAR from the Investigating Officer	
4.	Date of appointment of the Designated Officer by the Insurance Company	
5.	Name and particulars of the Designated Officer	
6.	Date of appointment of the Surveyor/Investigator by the Insurance Company	
7.	Name and particulars of the Surveyor/Investigator	
8.	Date of report of the Surveyor/Investigator	
9.	Date of decision of the Designated Officer	
10.	Date of submission of the report of the Designated Officer before the Claims Tribunal	
11.	Whether the report has been filed within 30 days of the receipt of DAR? If no, give reasons.	

PART-II
COMPUTATION OF COMPENSATION IN DEATH CASES

12.	Name of the deceased	
13.	Age of the deceased	
14.	Occupation of the deceased	
15.	Income of the deceased	
16.	Name, age and relationship of legal representatives of deceased	

17.	Documents considered	
	(i) Proof of age	
	(ii) Proof of occupation and income	
	(iii) Proof of age of legal representative	
	(iv) Other relevant documents	
18.	Computation of compensation	
	(i) Income of the deceased (A)	
	(ii) Add-Future Prospects (B)	
	(iii) Less-Personal expenses of the deceased (C)	
	(iv) Monthly loss of dependency [(A+B) - C = D]	
	(v) Annual loss of dependency (D × 12)	
	(vi) Multiplier (E)	
	(vii) Total loss of dependency (D × 12 × E = F)	
	(ix) Compensation for loss of consortium (G)	
	(x) Compensation for loss of estate (H)	
	(xi) Compensation towards funeral expenses (I)	
	TOTAL COMPENSATION (G + H + I)	

PART-III

COMPUTATION OF COMPENSATION IN INJURY CASES

19.	Name of the victim	
20.	Age of the victim	
21.	Occupation of the victim	
22.	Income of the victim	
23.	Nature of injury	
24.	Medical treatment taken by the victim	
25.	Whether any permanent disability? If yes, give details.	
26.	Computation of compensation	

	Pecuniary Loss:	
	(i) Expenditure on treatment	
	(ii) Expenditure on conveyance	
	(iii) Expenditure on special diet	
	(iv) Cost of nursing/attendant	
	(v) Loss of earning capacity	
	(vi) Loss of income	
	(vii) Any other loss which may require any special treatment or aid to theinjured for the rest of his life	
	Non-Pecuniary Loss:	
	Compensation for mental and physical shock	
	Pain and suffering	
	Loss of amenities of life	
	Disfiguration	
	Loss of marriage prospects	
	(xiii) Loss of earning, inconvenience, hardships, disappointment, frustration, mental stress, dejectment and unhappiness in future life etc.	
	TOTAL COMPENSATION	

VERIFICATION

Verified at ---------- on this ---------- day of ---------- that the contents of the above report are true and correct. I am well conversant with the principles of computation of compensation and have applied the same to compute the compensation.

DESIGNATED OFFICER

FORM - IVA
SUMMARY OF COMPUTATION OF AWARD AMOUNT IN DEATH CASES TO BE INCORPORATED IN THE AWARD

1.	Date of accident		
2.	Name of the deceased		
3.	Age of the deceased		
4.	Occupation of the deceased		
5.	Income of the deceased		
6.	Name, age and relationship of legal representatives of deceased:		
S.No.	Name	Age	Relation
(i)			
(ii)			
(iii)			
(iv)			
	Computation of Compensation		
7.	Income of the deceased **(A)**		
8.	Add-Future Prospects **(B)**		
9.	Less-Personal expenses of the deceased **(C)**		
10.	Monthly loss of dependency **[(A+B) - C = D]**		
11.	Annual loss of dependency **(D × 12)**		
12.	Multiplier **(E)**		
13.	Total loss of dependency **(D × 12 × E = F)**		
14.	Medical Expenses **(G)**		
15.	Compensation for loss of consortium **(H)**		
16.	Compensation for loss of estate **(I)**		
17.	Compensation towards funeral expenses **(J)**		
18.	**TOTAL COMPENSATION (F + G + H + I + J =K)**		
19.	**RATE OF INTEREST AWARDED**		
20.	Interest amount up to the date of award **(L)**		
21.	Total amount including interest **(K+L)**		
22.	Award amount released		
23.	Award amount kept in FDRs		
24.	Mode of disbursement of the award amount to the claimant(s).		
25.	Next Date for compliance of the award.		

FORM-IV
BSUMMARY OF THE COMPUTATION OF AWARD AMOUNT IN INJURY CASES TO BE INCORPORATED IN THE AWARD

1.	Date of accident	
2.	Name of the injured	
3.	Age of the injured	
4.	Occupation of the injured	
5.	Income of the injured	
6.	Nature of injury	
7.	Medical treatment taken by the injured	
8.	Period of hospitalization	
9.	Whether any permanent disability? If yes, give details	
10.	**Computation of Compensation**	
11.	**Pecuniary Loss:**	
	(i) Expenditure on treatment	
	(ii) Expenditure on conveyance	
	(iii) Expenditure on special diet	
	(iv) Cost of nursing/attendant	
	(v) Loss of earning capacity	
	(vi) Loss of income	
	(vii) Any other loss which may require any special treatment or aid to the injured for the rest of his life	
12.	**Non-Pecuniary Loss:**	
	(i) Compensation for mental and physical shock	
	(ii) Pain and suffering	

	(iii) Loss of amenities of life	
	(iv) Disfiguration	
	(v) Loss of marriage prospects	
	(vi) Loss of earning, inconvenience, hardships, disappointment, frustration, mental stress, dejectment and unhappiness in future life etc	
13.	**Disability resulting in loss of earning capacity:**	
	(i) Percentage of disability assessed and nature of disability as permanent or temporary	
	(ii) Loss of amenities or loss of expectation of life span on account of disability	
	(iii) Percentage of loss of earning capacity in relation to disability	
	(iv) Loss of future Income - (Income × % Earning Capacity × Multiplier)	
14.	**TOTAL COMPENSATION**	
15.	**INTEREST AWARDED**	
16.	Interest amount up to the date of award	
17.	Total amount including interest	
18.	Award amount released	
19.	Award amount kept in FDRs	
20.	Mode of disbursement of the award amount to the claimant(s).	
21.	Next Date for compliance of the award.	

FORM - V
COMPLIANCE OF THE PROVISIONS OF THE MODIFIED CLAIMS TRIBUNAL AGREED PROCEDURE TO BEMENTIONED IN THE AWARD

1.	Date of the accident	
2.	Date of intimation of the accident by the Investigating Officer to the Claims Tribunal.	
3.	Date of intimation of the accident by the Investigating Officer to the Insurance Company.	
4.	Date of filing of Report under Section 173 Cr.P.C. before the Metropolitan Magistrate.	
5.	Date of filing of Detailed Accident Information Report (DAR) by the Investigating Officer before Claims Tribunal.	
6.	Date of service of DAR on the Insurance Company.	
7.	Date of service of DAR on the claimant(s).	
8.	Whether DAR was complete in all respects?	
9.	If not, whether deficiencies in the DAR removed later on?	
10.	Whether the police has verified the documents filed with DAR?	
11.	Whether there was any delay or deficiency on the part of the Investigating Officer? If so, whether any action/direction warranted?	
12.	Date ofappointmentoftheDesignatedOfficerbytheInsurance Company.	
13.	Name, address and contact number of the Designated Officer of the Insurance Company.	
14.	Whether the Designated Officer of the Insurance Company submitted his report within 30 days of the DAR? (Clause 22)	
15.	Whether the Insurance Company admitted the liability? If so, whether the Designated Officer of the Insurance Company fairly computed the compensation in accordance with law.	

16.	Whether there was any delay or deficiency on the part of the Designated Officer of the Insurance Company? If so, whether any action/direction warranted?	
17.	Date ofresponseof the claimant(s) to the offer of the Insurance Company.	
18.	Date of the award.	
19.	Whether the award was passed with the consent of the parties?	
20.	Whether the claimant(s) were directed to open savings bank account(s) near their place of residence?	
21.	Date of order by which claimant(s) were directed to open savings bank account(s) near his place of residence and produce PAN Card and Aadhaar Card and the direction to the bank not issue any chequebook/debit card to the claimant(s) and make an endorsement to this effect on the passbook.	
22.	Date on which the claimant(s) produced the passbook of their savings bank account near the place of their residence along with the endorsement, PAN Card and Adhaar Card?	
23.	Permanent Residential Address of the claimant(s).	
24.	Details of savings bank account(s) of the claimant(s) and the address of the bank with IFSC Code.	
25.	Whether the claimant(s) savings bank account(s) is near his place of residence?	
26.	Whether the claimant(s) were examined at the time of passing of the award to ascertain his/their financial condition?	
27.	Account number, MICR number, IFSC Code, name and branch of the bank of the Claims Tribunal in which the award amount is to be deposited/transferred.	

FORM - VIA

BEFORE THE MOTOR ACCIDENT CLAIMS TRIBUNAL

…… Petitioners(s)

VERSUS

……Respondent(s)

FORMAT OF WRITTEN SUBMISSIONS TO BE FILED BY THE PARTIES IN DEATH CASES

1.	Date of accident		
2.	Name of the deceased		
3.	Age of the deceased		
4.	Occupation of the deceased		
5.	Income of the deceased		
6.	Name, age and relationship of legal representatives of deceased:		
S.No.	Name	Age	tion
(i)			
(ii)			
(iii)			
(iv)			
(v)			
	Computation of Compensation		
S.No.	Heads	Claim of Petitioners(s)	Response of Respondent(s)
7.	Income of the deceased (A)		
8.	Add-Future Prospects (B)		
9.	Less-Personal expenses of the deceased (C)		
10.	Monthly loss of dependency [(A + B) - C = D]		
11.	Annual loss of dependency (D × 12)		
12.	Multiplier (E)		
13.	Total loss of dependency (D × 12 × E = F)		
14.	Medical Expenses (G)		
15.	Compensation for loss of consortium (H)		
16.	Compensation for loss of estate (I)		
17.	Compensation towards funeral expenses (J)		
	TOTAL COMPENSATION		
	(F + G + H + I + J =K)		
	INTEREST		

FORM - VIB

BEFORE THE MOTOR ACCIDENT CLAIMS TRIBUNAL

…… Petitioners(s)

VERSUS

……Respondent(s)

FORMAT OF WRITTEN SUBMISSIONS TO BE FILED BY THE PARTIES IN INJURY CASES

1.	Date of accident		
2.	Name of the injured		
3.	Age of the injured		
4.	Occupation of the injured		
5.	Income of the injured		
6.	Nature of injury		
7.	Medical treatment taken by the injured		
8.	Period of hospitalization		
9.	Whether any permanent disability? If yes, give details		
10.	Photographs of the injured and the injuries		
11.	**Computation of Compensation**		
S.No.	**Heads**	**Claim of Petitioners(s)**	**Response of Respondent(s)**
12.	**Pecuniary Loss:**		
	(i) Expenditure on treatment		
	(ii) Expenditure on conveyance		
	(iii) Expenditure on special diet		
	(iv) Cost of nursing/attendant		
	(v) Loss of income		
	(vi) Cost of artificial limb (if applicable)		
	(vii) Any other loss/expenditure		
13.	**Non-Pecuniary Loss:**		
	(i) Compensation for mental and physical shock		

	(ii) Pain and suffering		
	(iii) Loss of amenities of life		
	(iv) Disfiguration		
	(v) Loss of marriage prospects		
	(vi) Loss of earning, inconvenience, hardships, disappointment, frustration, mental stress, ejectment and unhappiness in future life etc.		
14.	**Disability resulting in loss of earning capacity:**		
	(i) Percentage of disability assessed and natureofdisability as permanent or temporary		
	(ii) Loss of amenities or loss ofexpectationof life span on account of disability		
	(ii) Percentage of loss of earning capacity inrelationto disability		
	(iv) Loss of future Income - (Income × %Earning Capacity× Multiplier)		
TOTAL COMPENSATION			
INTEREST			

FORM - VII
FORMAT OF RECORD OF AWARDS TO BE MAINTAINED BY THE CLAIMS TRIBUNAL

DATE	**Page No. of the Register**	
S.NO.	**PARTICULARS**	
1.	Date of Award	
2.	Case number	
3.	Title of the case	
4.	Award amount	
5.	Date of notice of deposit by the depositor to the Claimant(s)	
6.	Date of notice of deposit by the Tribunal to the Claimant(s)	
7.	Amount of interest upto date of notice of deposit	
8.	Amount deposited along with date of deposit	
9.	Amount of interest upto date of notice of deposit	
10.	Whether entire award amount and interest deposited. If no, balance outstanding award amount/interest	
11.	Action taken to recover the balance award interest	
12.	Date of release of the award amount to the Claimant(s)	
13.	Mode of release of the award amount:(Give the details of endorsement made on the cheques)	
14.	Remarks	

FORM - VIIA
FORMAT OF MONTHLY COMPLIANCE REPORT TO BE SEND BY THE CLAIMS TRIBUNAL IN DEATH CASES

Name of The Presiding Officer of Motor Accident Claims Tribunal :						
S.No.	**CASE NO.**	**DATE OF AWARD**	**AGE (yrs)**	**OCCUPATION**	**INCOME (per month)**	**AWARD AMOUNT**
1.						
2.						
3.						
4.						
5.						
6.						
7.						
8.						
9.						
10.						

FORM - VIIB

FORMAT OF MONTHLY COMPLIANCE REPORT TO BE SEND BY THE CLAIMS TRIBUNAL IN INJURY CASES

Name of The Presiding Officer of Motor Accident Claims Tribunal :						
S.No.	**CASE NO.**	**DATE OF AWARD**	**AGE (yrs)**	**OCCUPATION**	**INCOME (per month)**	**AWARD AMOUNT**
1.						
2.						
3.						
4.						
5.						
6.						
7.						
8.						
9.						
10.						

FORM - VIII
MOTOR ACCIDENT CLAIMS ANNUITY DEPOSIT (MACAD) SCHEME

S.No.	Scheme Features	Particulars/Details
1.	Purpose	One time lump sum amount, as decided by the Court/Tribunal, deposited to receive the same in Equated Monthly Instalments (EMIs), comprising a part of the principal amount as well as interest.
2.	Eligibility	Individuals including Minors through guardian in single name.
3.	Mode of Holding	Singly
4.	Type of account	Motor Accident Claims Annuity (Term) Deposit Account (MACAD)
5.	Deposit Amount	(i) Maximum: No Limitii Minimum - Based on minimum monthly annuity Rs. 1,000/- for the relevant period.
6.	Tenure	(ii) 36 to 120 monthsii. In case the period is less than 36 months, normal FD will be opened.iii. MACAD for longer period (more than 120 months) will be looked as per direction of the Court.
7.	Rate of interest	Prevailing rate of interest as per Tenure.
8.		(i) No Receipts will be issued to depositors. (ii) Passbook will be issued for MACAD
9.	Loan	Facility No loan or advances shall be allowed.
10.	Nomination facility	(i) Available.ii. MACAD shall be duly nominated as directed by the court.
11.	Premature Payment	(i) Premature closure or part lump sum payment of MACAD during the life of the claimant will be made with permission of the court. However, if permitted, the annuity part will be reissued for balance tenure and amount, if any, with change in annuity amount.ii. Premature closure penalty will not be charged.iii. In case of death of the claimant, payment to be given to the nominee. The nominee has an option to continue with the annuity or seek pre-closure.

12.	Tax deduction at source	(i) Interest payment is subject to TDS as per Income Tax Rules. Form 15G/15H can be submitted by the Depositor to get exemption from the Tax deduction. (ii) The annuity amount on monthly basis net of TDS, will be credited to the MACT Savings Bank account.

MACT CLAIMS SB ACCOUNT	
Features	**Particulars/Details**
Eligibility	Individuals including Minors (through guardian) in single name.
Minimum/MaximumBalanceRequirement	Not applicable
Cheque book/Debit Card/ATM Card/Welcome Kit/Internet Banking/Mobile Banking facility	i. By default, these facilities are not available in this product. ii. However,in casethese facilitieshavealready been issued, thecourt shall directthe bank to cancel thesame before thedisbursement of the award amount. iii. Thebank shallmakeanendorsement on thepassbookof theclaimant(s) to theeffect that no chequebook and/or debitcardhave been issuedand shall not beissuedwithoutthe permission of the Court.
Operations in the account	i. Only single operation. ii. In case of Minor accounts, the operation will be through guardian.
Withdrawals	Only through Withdrawal Forms or throughBio-Metric authentication.
Product change	Not permitted
Place of Opening	Only at the Branch near to the place ofresidence of Claimant (as directed by the Court).
Account Transfer	Not allowed
Nomination	Available
Passbook	Available
Rate of Interest	As applicable to Regular SB accounts
Statement by e-mail	Available
P.S.:– Any other terms and conditions of SB account in Bank are applicable.	

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर

मध्य प्रदेश राज्य न्यायिक अकादमी

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर - 482 007